RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2019-2021

AISECT GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group
CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

AJEE
AISECT GROUP OF UNIVERSITIES JOINT ENTRANCE EXAM

#UnlockingPotential

AISECT Group of Universities is India's leading higher education group that provides world-class and affordable universities. The AISECT group has over three decades of unmatched experience in skill development and job placement.

Prominent Features

- Huge in-house funding to Promote Research
- 9 Advanced Research Centres of excellence
- Prestigious Atal Incubation Centre- supported by NITI Aayog established at RNTU
- High End Courses like Cyber Security, Artificial Intelligence, ML delivered through industry giants like Microsoft and HP
- 8 Registered Patents in 2018
- Exclusive campus Radio Channel - Radio Raman

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY
MADHYA PRADESH, BHOPAL AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, MP PARAMEDICAL COUNCIL, DEB (UGC) | Recognized by : UGC | Member of : AIU, ACU

CVRU DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh | Madhya Pradesh | Bihar AN AISECT GROUP UNIVERSITY

AISECT UNIVERSITY
JHARKHAND, HAZARIBAG AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC

RNTU is in the Rank Band 151-200 in University Category in nirf 2019

AISECT Group of Universities Headquarters : RNTU Campus, Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph. : 0755-2700400, 2700413, E-mail : aisect@aisect.org, Web : www.aisect.org

For more information, call : RNTU, Bhopal - 09993006401, CVRU, Bilaspur- 06261900581, CVRU, Vaishali - 09993233374, AU, Jharkhand - 08252299990, CVRU, Khandwa - 09907337693

प्रेषक : मुकेश वर्मा, प्रधान संपादक
'समावर्तन' हिन्दी मासिक
माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन-456010

पुस्त–प्रेष्य

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

तेरह वर्षों से अनवरत प्रकाशित 151 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन®

मासिक पत्रिका

वर्ष 13 ■ अंक 07 ■ पूर्णांक 151 ■ अक्टूबर–2020 ■ ₹ 150/–

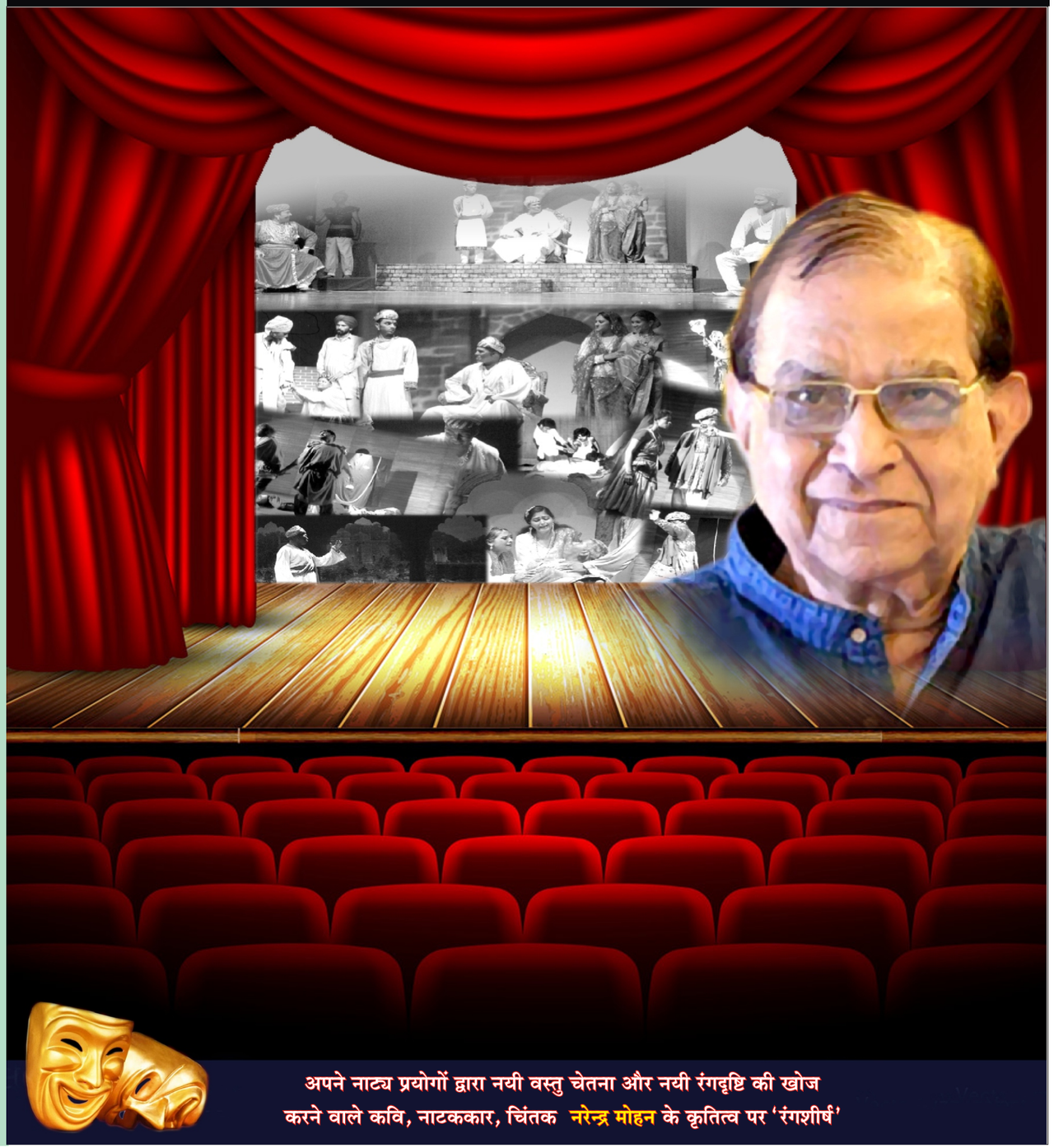

अपने नाट्य प्रयोगों द्वारा नयी वस्तु चेतना और नयी रंगदृष्टि की खोज करने वाले कवि, नाटककार, चिंतक नरेन्द्र मोहन के कृतित्व पर 'रंगशीर्ष'

वर्ष 13 ■ अंक 07 ■ पूर्णांक 151 ■ अक्टूबर 2020 ■ रू. 150/-

ISSN - 2348-8638

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

समावर्तन®

मासिक पत्रिका

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

मुख्य सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

सम्पादक
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

कार्यकारी सम्पादक
हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
मो. 94254 81195

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260 69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे शर्मा, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''अक्षय-माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

संरक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई), सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल), उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

समावर्तन का मूल्य
सदस्यता प्रति अंक : 150 रु. मासिक वार्षिक - 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100 $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.) 456010

वार्षिक सदस्यता हेतु डिजिटल भुगतान
बैंक का नाम - आयडीबीआई
ब्रांच का नाम - फ्रीगंज, उज्जैन
खाता क्रमांक - 0088102000031620
खातेदार का नाम - समावर्तन
आयएफएससी नं. - आय.बी.के.एल 0000088

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

विशेष सम्पादक- वक्रोक्ति
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर मो. 98938 10050

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली, मो.98116 21626

विशेष परामर्शी - घरोंदे
प्रतापसिंह सोढ़ी, इन्दौर, मो.89302 35285

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन, मो. 97700 78000

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी, उज्जैन, मो. 94250 91114

विशेष सम्पादक- साहित्य विचार
शैलेन्द्रकुमार शर्मा, उज्जैन मो. 98260 47765

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

मुद्रणालय : आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

समावर्तन®

अक्टूबर -2020

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : अगस्त्य-लोपामुद्रा संवाद : मुरलीधर चाँदनीवाला : 05

अभिमुख : जीवन में भाषा और भाषा में जीवन : रमेश दवे : 06

मेरा नमन : 150वें अंक का केरल में लोकार्पण : प्रभातकुमार भट्टाचार्य : 07

रंगशीर्ष : नरेन्द्र मोहन

परिचय : नरेन्द्र मोहन : 08

आत्मकथ्य : मैं और मेरा हमजाद : नरेन्द्र मोहन : 09

मेरी रंग नाट्य प्रक्रिया : नरेन्द्र मोहन : 11

नरेन्द्र मोहन की कविताएँ : 15

नाटक मलिक अंबर (संक्षिप्त रूप) : नरेन्द्र मोहन : 16

नाटककार नरेन्द्र मोहन और.... : गिरीश रस्तोगी : 27

साक्षात्कार : नरेन्द्र मोहन के साथ

तरसेम गुजराल की बातचीत : 31

नाट्य निर्देशकों/समीक्षकों के अभिमत : 32

साहस और डर के बीच (डायरी) : 33

रेखांकित : अच्युतानंद मिश्र की कविताएँ : चयन : निरंजन श्रोत्रिय : 39

समकालःकथाकाल : राकेश मिश्र की कहानी : शह और मात : चयन- मुकेश वर्मा : 45

लोकराग-41

(समावर्तन के अधबीच लोक संस्कृति केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तंभ : 51-46)

लोकभूमि : श्रीराम दवे

रमेश यादव, सुमन चौरे तथा दया दीक्षित के आलेख

घरोंदे-16

(लघुकथा केन्द्रित द्वैमासिक स्तंभ)

मृणाल आशुतोष की लघुकथाएँ : 65

चयन : वाणी दवे शर्मा

कविताएँ : रमेश दवे, सूर्यप्रकाश मिश्र : 60

कहानी : दो ध्रुवों के बीच की आस : गरिमा संजय दुबे : 62

वीक्षा : हँसी के पीछे का दर्द : सूर्यकांत नागर : 68

साहित्यिक हलचल : 69, अनंतिम : मुकेश वर्मा : 70

*रेखांकन : रोहित प्रसाद पथिक * अक्षर विन्यास तथा आवरण एवं लेआउट डिजाइनिंग : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे*

प्रथम पृष्ठ

अगस्त्य-लोपामुद्रा संवाद

ऋग्वेद के प्रथम मंडल का यह सूक्त अनुपम है। इस सूक्त में लोपामुद्रा और अगस्त्य के बीच संक्षिप्त सा संवाद है, किन्तु अनूठा। शुरू की दो ऋचाओं में लोपामुद्रा अगस्त्य के सामने दाम्पत्य जीवन के समुचित निर्वाह को लेकर गंभीर प्रश्न खड़े करती है, और बाद की चार ऋचाओं में ऋषि अगस्त्य लोपामुद्रा का मान रखते हुए भी दाम्पत्य जीवन के उच्चतम लक्ष्य की ओर ध्यान आकृष्ट करने में सफल होते हैं। इस सूक्त में दाम्पत्य के प्रचलित अर्थ का उन्नयन है। यह उन्नयन ही वेद है। पति-पत्नी का यह आपसी वार्तालाप भारतीय साहित्य में अप्रतिम माना जाता है।

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः
प्रजामपत्यं बलमिच्छमान।
उभौ वर्णावृषिरूग्रः पुपोष
सत्या देवेष्वाशिषो जगाम।।

ऋग्वेद.1.179.6

कितने वर्ष बीत गये,
दिन-रात उठाती रही घर का बोझ,
शरम करते-करते बूढ़ी हुई इच्छाएँ,
अरे अगस्त्य। सुंदरता छिन गई
आयु बीतने के साथ,
इस पर भी नहीं निभा पा रहे वे वचन
जो दिये थे सप्तपदी में तुमने कभी ।।1।।

तब से अब तक
तुम खड़े हो अपने ब्रह्मचर्य में,
ज्ञानियों के बीच उठे-बैठे।
ज्ञान का कोई अंत नहीं, अगस्त्।
जीवन का अंत तो सामने है,
क्या अब भी मैं निराश होऊँ।।2।।

तुम अनृत नहीं बोल रही, लोपामुद्रा!
तुमने श्रम किया है तो तुम ही
देवों से रक्षित हुई, मैं नहीं।
श्रम से जीत लिया तुमने यह संसार।
सौ वर्ष जियेंगे हम दोनों
और भोगेंगे वे सुख निश्चिन्त होकर,
जो हमारी कामना हैं ।।3।।

किन्तु यह काम
केवल जन्म-मृत्यु के लिये नहीं,
दाम्पत्य केवल भोग के लिये नहीं,
लोपामुद्रा! अधीर मत होओ,
धैर्य से उठो ऊपर,
छूने का यत्न करो उसे
जो हम दोनों का साध्य है ।।4।।

आओ, लोपामुद्रा!
हम दोनों अपने हृदय अमृत से भर लें,
मनुष्य तो कामनाओं का दास है,
नीचे गिरना बहुत सरल है,
ऊपर उठना ही दम्पति की चरितार्थता ।।5।।

मैं खोद रहा हूँ, कुदाल से
देवपुत्रों की चेतन ऊर्जा को।
सत्य की किरणों से हम बनाएंगे घर,
जहाँ हम होंगे, लोपामुद्रा!
और जीवन को अर्थ देंगे।।6।।

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम (म.प्र.)
मो.9424869460

जीवन में भाषा और भाषा में जीवन

रमेश दवे

प्राचीनतम सभ्यता से लेकर आधुनिकतम या उत्तर आधुनिकतम विचार को लेकर यदि यह प्रश्न किया जाए कि क्या मनुष्य का भाषा-रहित जीवन संभव है तो उत्तर संभवतः यह होगा कि संभव तो हो सकता है लेकिन मनुष्य की तरह न होकर पशुओं की तरह होगा। गूँगा मनुष्य जी सकता है अपने गूँगेपन के शाश्वत दुःख और क्षोम के साथ। भाषा मनुष्य की वाणी है, मनुष्य का मनुष्य होना है और भाषा के साथ जीना, मरना, सुख-दुख भोगना, ज्ञान-विज्ञान की दुनिया से संवाद करना, नई खोजें, नए-नए आविष्कार करना आदि संभव करता है। वैज्ञानिक कह सकते हैं कि उन्होंने ऐसी तकनीक खोज ली है कि एक गूंगा या मूक मनुष्य क्या सोचता है, उसे एक चिप के द्वारा भाषा में रूपांतरित कर लिया जाए और उसके विचारों को लिपिबद्ध कर प्रत्यक्ष किया जाए। यह आविष्कार अद्भुत है, अपूर्व है लेकिन प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य की वाचिकता का यह संपूर्ण या समग्र विकल्प है? चिप का प्रयोग स्टीफन हाकिंग की वाणी चली जाने पर किया गया था और सफतलापूर्वक उसकी खोज का अनुलेखन किया गया, लेकिन क्या वाणीयुक्त एडीसन, न्यूटन एवं आइंस्टीन की तरह जी सका, संवाद कर सका? इतना अवश्य है कि जन्मना अनेक प्रकार की शारीरिक कमियों के बावजूद विज्ञान ने जीना संभव कर दिया है लेकिन एक मनुष्य से पूछा जाए कि उसकी सबसे गहन, सबसे दुःखद पीड़ा क्या है तो संभवतया लिखकर या चिप के द्वारा वह यही उत्तर देगा कि उसके पास भाषा या वाणी का मुखर माध्यम न होना।

भारत गर्व कर सकता है कि भारतीय मनीषियों ने भाषा खोज कर संस्कृत या तामिल को विश्व की प्रथम भाषा सिद्ध कर दिया था। ग्रीक, लेटिन भाषाओं को भी प्राचीन भाषा मानकर संस्कृत के समानांतर विकास की भाषा यूरोप के भाषाविद् मानते हैं लेकिन चीन की मंदारिन (चीनी) अरब की अरबी का उल्लेख उस प्रकार नहीं करते जिस प्रकार ग्रीक-लेटिन से लेकर विकास की यात्रा में इण्डो-आर्यन या यूरोपीय भाषाओं का जिक्र किया करते हैं। भाषाओं के विकास से सभ्यता का सम्बन्ध तो स्थापित होता है लेकिन सभ्यता ने अनेक भाषाओं को निगल लिया है।

भाषा को राष्ट्र-भाषा का गौरव देकर हम प्रसन्न तो होते हैं लेकिन भाषाएँ तो समूची मनुष्य और उसकी संस्कृति का गौरव है। आज दुनिया की कोई भी सभ्यता या कोई भी देश भाषा-विहीन नहीं है। हर देश के पास अपने भाषाई संस्कार, भाषाई संवाद, भाषायुक्त ज्ञान-विज्ञान और भाषा में सृजन और साहित्य है। जब भाषा में ज्ञान, विज्ञान, साहित्य और कलाओं को रचा या अभिव्यक्त किया जाता है तो न केवल भाषा सार्थक होती है, बल्कि मनुष्य का मनुष्य होना भी सार्थक हो जाता है।

यदि साहित्य पर विचार किया जाए तो भारत यदि अपने वाङ्मय पर गर्व करता है, वेद, उपनिषद, पुराण, इतिहास, महाकाव्य, नाटक या नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि को अपनी भाषाई सभ्यता का विकास मानता है तो यह भी सोचना होगा कि भाषाई विकास वहीं नहीं थमा था, बल्कि आदिम मनुष्य से आधुनिक मनुष्य तक हज़ारों भाषाएँ भारत में जन्मीं भी, मरी भी, प्रचलन में भी रहीं, लुप्त भी हो गई। आधुनिकता और तकनीकी विकास की दौड़ में अनेक भाषाएँ कुचल दी गई और अब तो यह कहा जाने लगा है कि प्रतिवर्ष लगभग 300 भाषाएँ लुप्त हो रही हैं। सभ्यता के विकास का एक पक्ष हिंसा भी रहा है। हिंसक मनुष्य के अपने शक्ति-दंभ से न केवल मनुष्य को मारा बल्कि अनेक भाषाओं की भी हत्या कर दी। जिस प्रकार स्पेनिश का भाषाई साम्राज्यवाद पैदा किया, अफ्रीका की भाषाओं को मिटाकर अंग्रेजी, फ्रेंच, डच, पूर्वगाली, स्पेनिका आदि भाषाओं का कुटिल और हिंसक उपनिवेशवाद रचा, जिस प्रकार एशिया और पूर्व, पश्चिम, दक्षिण एशिया के देशों पर उपनिवेशवादी भाषाएँ थोंपी उससे यह लगता है कि शक्तिशाली देशों ने अपने वर्चस्व की स्थापना में सर्वप्रथम भाषाओं को ही नष्ट किया और अपने आर्थिक एवं साम्राज्यवादी एकतंत्र से कई देशों की मूल सभ्यता को भी मिटा दिया। ऐसा ही तो आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड ने अपने एबओरिजन (आदिवासियों) के साथ किया, अमेरिका ने तो रेड इंडियन्स की लगभग चार सौ लोक-भाषाओं को मिटा दिया।

अब पुनः आदिम या आदिवासी एवं लुप्त भाषाओं की समाज शास्त्रीय खोज की जा रही है। भारत में कहा जाता है कि लगभग तेरह हजार मूल भाषाएँ थीं जो घटते घटते अब केवल आठ हजार रह गई हैं। संस्कृत को देववाणी या पूजापाठ की भाषा मानकर निरस्त किया जा रहा है जबकि भाषाविद् मानते हैं कि संरचना की दृष्टि से कम्प्यूटरों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भाषा तो संस्कृत है। अब तो हमारे क्षेत्रीय भाषा वाले राज्य भारत की कोई राष्ट्रभाषा भी स्वीकारना नहीं चाहते। हिन्दी का विरोध इसी भाषाई क्षेत्रवाद का परिणाम है।

स्वामी दयानंद, विवेकानंद, राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, सुभाषचन्द्र बोस, बाल गंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू आदि सभी दिग्गज नेता अहिन्दी भाषी थे लेकिन उन्होंने हिन्दी में स्वतंत्रता का संघर्ष किया और हिन्दी को राष्ट्रभाषा की सर्वाधिक समर्थ भाषा भी माना। चक्रवर्ती राज गोपालाचारी ने तमिलनाडु में हिन्दी प्रचार किया और गाँधी ने देवदास गाँधी को भी इसीलिए भेजा था। इसी प्रकार बंगाल में सुनीति कुमार चटर्जी जैसे भाषाविद ने भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा माना था। तमिल कवि सुब्रमण्यम भारती तो कहते थे कि हिन्दी ने जिस प्रकार तुलसीदास जैसा कवि पैदा किया, हमें अफसोस है कि दक्षिण भारत में हम कोई तुलसीदास पैदा नहीं कर सके।

आज तो स्थिति यह है कि हिन्दी को बढ़ाने के बजाय उसे बचाने के प्रयत्न करने पड़ रहे हैं। भारत के पढ़े लिखे बौद्धिकों, प्रशासकों, तकनीकी एवं अन्य ज्ञान-विषयों की शिक्षा प्राप्त लोगों की मानसिक दृष्टि और भाषा अंग्रेजी हो गई है और हो सकता है कि एक दिन ऐसा भी आ जाए जब अंग्रेजी ही देश की राष्ट्र भाषा बन जाए, संपर्क भाषा तो मान ही ली गई है और हिन्दी को जनभाषा के स्तर से भी निरस्त कर दिया जाए! आज सबसे बड़ी चुनौती है अपनी भाषाओं की रक्षा करना। सत्ता-तंत्र भाषाओं की परवाह नहीं करता वह तो अपनी राजनीतिक शक्ति की स्थापना और सुरक्षा की अधिक परवाह करता है। ऐसे में क्या किया जाए, कैसे किया जाए ताकि भारत अपनी भाषाई अस्मिता और अस्तित्व को बचा सके। स

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071, 94076733348

समावर्तन का ऐतिहासिक 150वाँ अंक और इसका लोकार्पण

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'

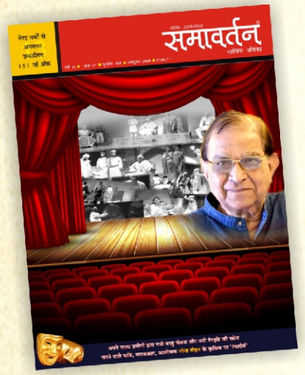

वैसे तो यह 151वाँ अंक चर्चित नाटककार श्री नरेन्द्र मोहन जी के कृतित्व पर रंगशीर्ष के रूप में संयोजित है जो समावर्तन परिवार और पाठकों के लिए उपलब्धि ही है। तथापि मुझे यहाँ समावर्तन के 150वें ऐतिहासिक अंक के केरल के महाकवि तथा वर्ष 2019 के ज्ञानपीठ सम्मान से सम्मानित श्री अक्कितम द्वारा उनके निवास कुमारनल्लूर (जिला-पालक्काड केरल) में हुए लोकार्पण के बारे में बताते हुए गर्व हो रहा है। गर्व इसलिए भी कि यह अंक मलयालम और हिन्दी के बीच एक सेतु बना है अर्थात इसमें मलयालम के दो दिग्गज सर्जक सर्वश्री **कविवर अक्कितम** तथा ख्यात अनुवादक **डॉ.आरसु (आर.सुरेन्द्रन)** के कृतित्व व्यक्तित्व पर क्रमशः 'एकाग्र' तथा 'सरोकार' स्तम्भ संयोजित हुए हैं।

दिनांक 19 सितम्बर को हुए इस अंक के लोकार्पण में आन लाइन रूप से जहाँ वर्ष 2005 के ज्ञानपीठ सम्मान से सम्मानित विद्वान संस्कृतज्ञ **डॉ.सत्यव्रत शास्त्री** (नई-दिल्ली) का प्रमुख सानिध्य रहा तथा उन्होंने श्री अक्कितम के कवित्व की आत्मीय और शास्त्रीय व्याख्या की वहीं समावर्तन के संपादक श्री श्रीराम दवे जी ने अतिथियों और उपस्थित महानुभावों के सम्मान में स्वागत वक्तव्य देते हुए समावर्तन की गौरवमयी यात्रा तथा भट्टाचार्य परिवार की विनम्र सेवाओं को रेखांकित भी किया।

इस ऐतिहासिक अंक के केरल में लोकार्पण से निश्चित ही एक नई राह सामने आयी है। यह अलग बात है कि समावर्तन के पहले अंक का लोकार्पण नईदिल्ली में ख्यात कवि **कुँवर नारायणजी** द्वारा तो 75वें अंक का लोकार्पण सूरत में गुजरात के वरिष्ठ कवि **भगवतीकुमार शर्मा** द्वारा तथा 100वें अंक का लोकार्पण उज्जैन में वरिष्ठ कवि तथा साहित्य अकादमी भारत के अध्यक्ष **विश्वनाथ प्रसाद तिवारी** द्वारा किया गया था और अब यह 150वें अंक का लोकार्पण मलयालम के महाकवि श्री अक्कितम द्वारा उनके गाँव कुमारनल्लूर में।

कोरोना महामारी और यात्रा में कठिनाइयों के चलते समावर्तन परिवार के लोग भले ही वहाँ उपस्थित नहीं थे किन्तु मन से वे सब उस क्षण वहाँ उपस्थित रहे और मलयालम तथा हिन्दी के मिलन के साक्षी बनें।

मैं नतमस्तक हूँ कविश्रेष्ठ श्री अक्कितम जी तथा डॉ.आरसु के प्रति जो गंभीर बीमार होने के बावजूद इस आयोजन में उपस्थित रहे। हमारा आभार आचार्य सत्यव्रत शास्त्री जी की वरद उपस्थिति के प्रति तो है ही समावर्तन के प्रतिनिधि के तौर पर आयोजन के सूत्र संभाल रही हिन्दी की लेखिका डॉ.श्रीजा प्रमोद के प्रति भी हैं जिन्होंने मेरे बाबा (समावर्तन के संस्थापक सम्पादन समन्वयक) डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य द्वारा संकल्पित इस अंक के संयोजन और लोकार्पण तक की यात्रा में संपादक श्रीराम दवे जी को सहयोग दिया है। इस अवसर पर उपस्थित केरल के साहित्यजन, पत्रकार और मीडिया के साथियों सहित श्री अक्कितम तथा डॉ.आरसु के परिजनों को भी हमारा नमन... स

संपर्क : 239- डी, एम.आई.जी. फ्लैट्स
राजौरी गार्डन, नईदिल्ली-110027
फोन निवास - 011-25446902
मोबाइल - 9818749321

नरेन्द्र मोहन

जन्म : 31 जुलाई 1935, लाहौर। प्रारंभिक शिक्षा लाहौर में, स्वाधीनता और विभाजन के बाद पंजाब में स्थानांतरित। उच्च शिक्षा- एम.ए., पी.एचडी. पंजाब यूनिवर्सिटी चण्डीगढ़ से। विभिन्न कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में प्राध्यापन के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से सेवानिवृत्त। भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला, बाबा साहब आंबेडकर यूनिवर्सिटी, औरंगाबाद तथा गोवा यूनिवर्सिटी में विजिटिंग प्रोफेसर के तौर पर विभिन्न विषयों पर विशेष व्याख्यान। सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय योगदान। कई वर्षों तक भारतीय लेखक संगठन के महासचिव एवं अध्यक्ष तथा 'संचेतना' और 'उत्तरा' का संपादन।

नरेन्द्र मोहन की कविताएँ, नाटक, डायरी रचना, आत्मकथाएं 'कमबख्त' निंदर और 'क्या हाल सुनावाँ' संस्मरण और आलोचनात्मक कृतियाँ विभिन्न प्रकार के विमर्शों का केन्द्र रही हैं। उनके कविता संग्रहों- इस हादसे में (1975), सामना होने पर (1979), एक अग्निकांड जगहें बदलता (1983), हथेली पर अंगारे की तरह (1990), संकट दृश्य का नहीं (1993), एक सुलगती खामोशी (1979), एक खिड़की खुली है अभी (2005), नीले घोड़े का सवार (2008), रंग आकाश में शब्द (2008), शर्मिला इरोम तथा अन्य कविताएँ (2014) रंग दे शब्द (2015), नृत्य से कविता (2016), कविता समग्र भाग एक, दो (2017) द्वारा वे कविता और अन्य कलाओं (नृत्य और चित्र) को अन्तर्संबद्ध करते हुए कविता को नये अर्थों में परिकल्पित करते रहे हैं तथा नयी संवेदना, विचार और प्रश्नाकुलता को विकसित करने में उनकी कविताओं की विशेष भूमिका रही है।

नरेन्द्र मोहन ने अपने नाटकों : कहे कबीर सुनो भाई साधो (1994), सींगधारी (1988), कलंदर (1991), नो मैंस लैण्ड (1994), अभंगगाथा (2000), मि.जिन्ना (2005), मंच अंधेरे में (2016) हद हो गयी यारों (2012), मलिक अंबर (2012), मेरे रंगनायक (भाग एक-दो) वे हर बार नये और ताजा कथ्य को नये रंग-शिल्प में ढालते रहे हैं। देश के विभिन्न रंग केन्द्रों, राष्ट्रीय नाट्य समारोहों और भारत रंग महोत्सव में प्रसिद्ध निर्देशकों द्वारा उनके नाटक खेले जाकर व्यापक चर्चा का विषय बने हैं। नयी रंग में ढली उनकी डायरी रचना 'साथ-साथ मेरा साया' 'साए से अलग' और 'साहस और डर के बीच' ने इस विधा को नये मायने दिए हैं तथा नए चिंतन को उकसाया है। उनके साहित्य के विभिन्न पक्ष, एक दस्तावेज के रूप में बारह खंडो में 'नरेन्द्र मोहन रचनावली' के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। मंटो पर उनकी जीवनी (मंटो ज़िन्दा है 2012) चर्चा के केन्द्र में है।

नरेन्द्र मोहन ने अपनी आलोचना पुस्तकों और संपादन कार्यों द्वारा जो विमर्श खड़े किये हैं, उनसे सृजन और चिंतन की नयी दिशाओं और नये आधारों की खोज संभव हुई है। इससे नवीन काव्य-माध्यम (विचार कविता, लम्बी कविता), नये परिप्रेक्ष्य बिन्दु (विभाजन और साहित्य, विद्रोह और साहित्य) भी रेखांकित हुए हैं। 'मंटों की कहानियाँ और मंटो के नाटक, विभाजन : भारतीय कहानियाँ (खण्ड एक, दो) उनकी संपादन प्रतिभा के परिचायक हैं।

उनके नाटक और कविताएँ विभिन्न भारतीय भाषाओं, मराठी, कन्नड़, तेलगू, बांग्ला, पंजाबी, उर्दू और अंग्रेजी में अनुदित हो चुकी है। वे अनेक राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक पुरस्कारों (पंजाब का सर्वोच्च सम्मान- शिरोमणि साहित्यकार, उत्तरप्रदेश का साहित्य भूषण सम्मान, दिल्ली का साहित्यकार सम्मान) से सम्मानित साहित्यकार हैं। नाट्य सम्राट का सर्वश्रेष्ठ नाटककार सम्मान, आजीवन साहित्य साधना राष्ट्रीय सम्मान आदि।

मैं और मेरा हमजाद

नरेन्द्र मोहन

नरेन्द्र मोहन और निंदर में अजब-सा रिश्ता है। कभी निंदर पर मुझे बेहद लाड़ आता है तो कभी बेइंतहा गुस्सा। उसका भी मेरे प्रति कुछ ऐसा ही रवैया है। एक तरफ वह मुझे प्यार करता है, दूसरी तरफ इंकार करता है और मुझे जोखिम के कामों की तरफ धकेलता रहता है। अगर वह जिद पकड़ ले तो बस तौऽबा। उसकी जिद में कुछ ऐसी मासूमियत होती है कि उसकी बात माननी ही पड़ती है। वह कभी बरजते हुए, कभी डराते-सहलाते हुए, कभी हँसते-हँसते, कभी सहलाते-मनाते हुए अपनी बात कबूल करवा ही लेता है। हाँ, यह सही है कि हम दोनों एक तरह की तनातनी और घमासान में घिरे रहते हैं। कमाल यह है कि न उसकी पीठ लगती है, न मेरी और हम धूल झाड़ते हुए एक-दूसरे के सामने आ खड़े होते हैं। कई बार लड़ते-झगड़ते हुए हम दोनों इस कदर गुत्थमगुत्था हो जाते हैं कि एक को दूसरे से अलगाना मुश्किल हो जाता है। दोनों की पहचानें एक-दूसरे में इस कदर घुलने लगती हैं कि कौन जीता, कौन हारा का फैसला बेमानी हो जाता है। उसकी जिद यानी धुन के सामने मेरी तरकीबें छोटी और हल्की पड़ जाती हैं। दुनिया भर में मैं अपना झण्डा चाहे कितना ऊँचा फहरा लूँ, मैं देखता हूँ सच की डोर वही थामे है। ऐसा पहले भी हुआ है, आज भी होता है, आने वाले कल की कौन जाने ?

निंदर के बजाय नरेन्द्र मोहन के बारे में लोगों की याददाश्त ज्यादा तेज है। हो भी क्यों न, सामने तो वही पड़ता है न। निंदर मुझे कोंचता-छीलता रहता है, मगर कटघरे में तो नरेन्द्र मोहन को ही खड़े होना पड़ता है उन अपराधों के लिए जो उसने कभी नहीं किये होते। जब उसे सजा दी जा रही होती है तो निंदर की रूह फड़फड़ाती रहती है कि कहीं न कहीं कसूरवार तो वह भी है, लेकिन दूसरे ही पल वह मुस्कराता हुआ सोचता है, ''बच्चू, अब तुझे आएगा मजा!''

कई लोग मेरे यानी नरेन्द्र मोहन के बारे में कुछ ज्यादा ही जानते हैं, इतना ज्यादा कि मैं हैरान-परेशान सा उनकी तरफ देखता रह जाता हूँ- सोचता हुआ, इतना सब तो वह भी नहीं जानता अपने बारे में। ऐसा करते हुए उन्हें मेरे खिलाफ निराधार बातें बनाने में सहूलियत हो जाती है। उन लोगों के बारे में क्या कहूँ जो नरेन्द्र मोहन के बारे में खबरें तो खूब रखते हैं, लेकिन जतलाते यों हैं कि कुछ नहीं जानते। जानने, न जानने, मालूम होने न होने की राजनीति अब हर जगह फल-फूल रही है। नोटिस भी लिया जाता है तो नाप-तौल कर। बातचीत चल रही है नरेन्द्र मोहन की तो बता ही दूँ कि कभी उसका ज्यादा नोटिस लिया गया है तो कभी बिल्कुल नहीं, कहीं यों ही चलते-चलते तो कहीं खास तौर पर उसके लेखन के कसीदें पढ़ने वाले अच्छी-खासी गिनती में है तो निन्दा करने वाले भी कम नहीं हैं। उसे आसमान में चढ़ा देने वाले हैं तो पाताल में गिरा देने वाले भी हैं। कोई उसे आसमान पर चढ़ा रहा हो तो उसका खुश होना स्वाभाविक है, मगर दूसरे ही पल वह आशंकित-सा सोचने लगता है कि अगर उसे आसमान से सीधे नीचे पटक दिया गया तो उसकी हड्डी-पसली ढूँढ़े न मिलेगी और उसका लेखकीय गुमान चकनाचूर पड़ा मिलेगा। उससे छिपा नहीं है कि कई साथी लेखक उससे जलते हैं कि उसने इतना काम क्यों किया है और किया है तो उनसे पूछ कर क्यों नहीं? ये वही लोग हैं जो उसे काटने का कोई मौका नही छोड़ते। वह भी सोचता है जलते हैं तो जलें, नजरअन्दाज करते हैं तो करें, कमतर आँकते हैं तो आँके, उसकी बला से।

वैसे देखा जाए तो मैं खुद को यानी नरेन्द्र मोहन को कितना जानता हूँ? एक कुआँ है जिसमें मैं झाँकता हूँ और देखता हूँ कि वहाँ कई रंगों की रेल-पेल है, यह भी कि रंगों के पीछे आग है/और रेखाएँ चुप नहीं हैं। वहाँ से मैं तल-अतल का स्पर्श किये बिना अपनी ही आवाजों की अनुगूँजों के साथ लौट आता हूँ। मुझे लगता है उनमें एक अनुगूँज मेरी है, लेकिन बाकी अनुगूँजें कहाँ से आ रही हैं उन अनुगूँजों के बारे में क्या कहूँ जो अँधेरे से आछन्न हैं, लेकिन गूँजों-अनुगूँजों के बीच एक अनुगूँज है - मेरी अपनी-सी जिसे मैं जानता तो हूँ मगर पूरी तरह से पहचानता नहीं हूँ। अजब गोरख धंधा है यह। उसके और मेरे बीच कितनी बार इतनी तरह के लोग आ खड़े हुए हैं कि मेरे लिए अपनी पहचान धुँधली ही नहीं, दुर्लभ भी होती गयी है। बीच के लोगों की करामात ही कहिए कि अपने साथ मेरे संवाद में कसर रह ही जाती है। यही हाल नरेन्द्र मोहन और निंदर का है। दरअसल, मैं दोनों के बीच द्वन्द्वग्रस्त पड़ा हुआ हूँ। यों तो दोनों जन्म से ही साथ-साथ हैं, यह बात अलग है कि निंदर कभी परदे की आड़ से, कभी सामने आकर सारे काम करता है और नरेन्द्र मोहन को मंच पर सबके सामने अपना किरदार निभाना पड़ता है। दोनों में यकीनन कशमकश रहती है। मगर लोगों के लिए यह एक पहेली-सी पैदा कर देता है। जब मैं कुछ कह रहा होता हूँ तो लोग समझते हैं कि निंदर कह रहा है और जब मुझे पीछे ठेल निंदर बोल रहा होता है तो कई बार लोग इस भ्रम में आ जाते हैं कि मैं कह रहा हूँ। यह स्थिति खत्म होने में नहीं आ रही और इससे मैं रोचक और एब्सर्ड अवस्थाओं में फँसता रहा हूँ और बुरी तरह ठगा जाता रहा हूँ।

निंदर को मेरे हर मामले में दखलन्दाजी करने का ही नहीं, पीछा करने की भी आदत है और नरेन्द्र मोहन इसी बात को लेकर उससे चिढ़ता है कि वह क्यों उसके पीछे अड़ा रहता है और परछाई बना चलता है। कई बार मुझे लगता है कि कहीं वह उसका 'हमजाद' न हो। वह मेरी एक-एक चीज पर नजर रखता है। उन संदूकों में झाँकने से भी बाज नहीं आता जिन पर मैंने ताले जड़े होते हैं। घर के अन्दर-बाहर यों दाखिल हो जाता है गोया यह उसी का घर हो। और तो और कई बार वह मेरे अन्दर दूर तक कूद जाता है और मजे ले-लेकर मुझे उधेड़ने लगता है और मेरे झूठ और फरेब को प्याज के छिलकों की तरह छीलने लगता है। ऐसा करते हुए वह जरा भी हिचकिचाता नहीं, बल्कि बड़ी शान से अपने कद को कुछ ज्यादा ही ऊँचा दिखाने लगता है और मुझे तुच्छता और अदनेपन का बोध करा जाता है। बात यह है कि पहले वह मुझे इधर-उधर के चक्करों में डालता है, जिनमें लिखने का भी चक्कर है और जब मैं उन चक्करों में घूमने लगता हूँ तो वह बेखटके बाँसुरी बजाने लगता है या गहरी नींद सो जाता है।

वह खुद अड़ियल है मगर अड़ियल होने का आरोप मुझ पर दागता रहता है। बच्चा होने की वजह से (जबकि वह बड़ा हो रहा है) उस का अड़ियलपन वक्त के साथ निभता रहा और मैं भी उसकी लपेट में आता गया। कई बार मुझे लगा कि मैं उसकी वजह से ही ऐसा बना हूँ। अड़ जाने पर मैं किसी की नहीं सुनता। एक बार जो ठान लेता हूँ, वही करता हूँ, टस से मस नहीं होता। इस बारे में मैंने कहीं लिखा भी है कि मुण्डन संस्कार के वक्त सिर पर मोटी-सी चोटी बनने लगी तो मैं भाग खड़ा हुआ था और चोटी नहीं बनने दी। यज्ञोपवीत के धागे को आँखे ऊपर चढ़ा कर, तोड़-मरोड़ दिया था। आगे चलकर जब लेखन से जुड़ा तो जाना कि लिखना भी एक तरह की जिद ही है, मिसाल के तौर पर विचार कविता और लंबी कविता की मेरी पैरवी में जिद के आसार देखे जा सकते हैं, नही तो कौन नहीं जानता कि कविता तो कविता ही है, वह विचार केन्द्रित हो या भाव संवलित, लंबी हो या छोटी। सृजनात्मकता से खाली हुई तो बेकार। खैर, जिद कहिए या कुछ कर गुजरने की धुन है तो यह निंदर की देन, हालाँकि मैं इसके लिए उससे बार-बार खफा होता रहता हूँ। वह ठीक ही कहता है कि ऐसा करते हुए कई बार खरी और सच्ची चीजें

रेखांकित हो जाती हैं। उसकी बात मैं समझने लगा हूँ कि लिखने की धुन भी एक जिद ही है जो लेखक का ध्यान चारों तरफ से हटा कर रचना पर केन्द्रित कर देती है और उसे अर्जुन की तरह मछली की आँख के सिवा कुछ नहीं दिखता। देखिए जिद को मैं कहाँ से कहाँ ले आया- लेखक की जिद से मछली की आँख तक। लेखक हूँ न, कहाँ से कहाँ पहुँच जाता हूँ। और यह छोटा फर्क नहीं है मुझमें और निदंर में। सीधी सी बात है मेरे हाथ में कलम है जबकि निंदर के हाथ में कलम नहीं है। इसे लेकर मैं अक्सर उसका मजाक उड़ता हूँ, इतराता हूँ। कलम के रौब तले उसे दबाता हुआ मैं वक्त-बेवक्त उससे कह बैठता हूँ तुम्हें आता ही क्या है - कभी एक लफ्ज लिख कर दिखा।दूसरे ही पल मैं अपनी ही नजरों में गिर जाता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि किताबें बेशक मैंने सैकडों पढ़-लिख ली हों, सहज ज्ञान का प्रकाश और अन्तहीन संवेदना की ऊष्मा उसी में है जो उसकी बातचीत में, मुझे प्रेरित करने में या मेरे प्रति उसकी चिंताओं में प्रकट होती रहती है।

जो भी कहो, निंदर है निराला ही। खुद फँसता है, मुझे भी फँसाता है। वह मुझे उन कामों को करने के लिए उकसाता है जिनको करने का मुझमें साहस नहीं होता। मुश्किलों में घिर जाने पर मैं कई बार दब्बू-सा बना भीतर सिकुड़ जाता हूँ, तब वही है जो मेरे अन्दर के कायर को खदेड़ता है, मुझे बाहर निकालता है और मेरी हिम्मत बँधाता है। वह मुझे अच्छा लगता है, लेकिन मैं उससे घबराता भी हूँ। डरता हूँ, उससे प्यार भी करता हूँ। कई बार वह इस कदर मेरे पीछे पड़ जाता है कि उसके सुझाए रास्ते के अलावा मुझे कोई और रास्ता नहीं सूझता और मैं न, न, न करता हुआ भी वही करने लगता हूँ जो वह कहता है। आपको ताज्जुब होगा मगर यह सच है कि मैंने ज्यादातर नाटक उसके बार-बार कोंचने पर लिखे हैं। वह मंद-मंद मुस्कराने लगता है, मुझे अपनी निर्देशित दिशा की तरफ बढ़ता देख, क्योंकि वह जानता है कि अब मैं पीछे नहीं मुडूँगा - मेरी रचना-जिद मुझसे काम पूरा करवा ही लेगी।

मेरे भीतर असाधारण या अपूर्व बनने या दिखने की प्रवृत्ति कम ही है। शायद वैसा बनने की तीव्र आकांक्षा भी नहीं है। हो सकता है यह इसलिए हो कि असाधारण बनने वालों की असलियत मैं जानता हूँ। इसलिए हर सूरत में अपनी साधारणता बरकरार रखना चाहता हूँ, हालाँकि तीव्र संवेदनशीलता और प्रखर विचारों के झोंके मुझे सतह से एक-डेढ़इंच ऊपर ही ले जाते हैं। मेरा हमजाद निंदर इन क्षणों की ताक में रहता है और मुझे उत्साहित करता रहता है कि बुलन्दी की सीढ़ियाँ चढ़ता जाऊँ। मुझे भी गुमान हो जाता है कि मैं कुछ भी कर सकता हूँ। उस वक्त मैं साधारण-असाधारणता के बीच झूलने लगता हूँ और मुझे चक्कर आने लगते हैं। मैं गिरने को होता हूँ। मैं गिरने को होता हूँ। मुझे चोट लगेगी तो क्या वह बच पाएगा? हो सकता है उसकी चोट बाहर से न दिखे, लेकिन अंदर की चोटों और बाहरी खरोचों से वह भी कहाँ बच पाएगा? निंदर यह क्यों नहीं समझता कि वैसा साहस और जोखिम उठाने का माद्दा मुझमें नहीं है जैसा वह मुझमें देखना चाहता है। ऐसे में वह कमबख्त निंदर क्यों मुझे पहाड़ की चोटी की नोक पर ले जाने की जिद करता है, जबकि मुझे ऊँचाई से डर लगता है। यह कहना झूठ होगा कि लंबी जिन्दगी में लड़कियों या महिलाओं के निकट संपर्क में मैं नहीं आया। रागात्मक सम्बन्धों से गुजरते हुए मैंने प्रेम और पोथी के द्वन्द्व को कई बार झेला है। यहाँ भी निंदर मुझसे बाजी मार ले गया। नरेन्द्र मोहन रह गया पोथी पंडित और प्रेम के ढ़ाई आखर पढ़ता रहा। पोथी बाँचता मैं जी-जी कर मरता रहा और प्रेमालाप में निमग्न वह मर-मर कर जीता रहा। प्रेम के क्षेत्र में मुझे निंदर ने ही नहीं, पत्नी ने भी करारी मात दी। उसकी कला लाजवाब थी। मेरी तरफ आकर्षित लड़कियों या महिलाओं को वह इस कदर अपना दोस्त और परिवार का हिस्सा बना लेती कि मैं देखता रह जाता। यह दो तरफा हार ही नहीं, मार भी थी। परास्त मनःस्थिति में मुझे लगा लेखन एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ मैं दोनों से बदला ले सकता हूँ। आहिस्ता-आहिस्ता पूरी पुख्तगी से लेखन को मैंने अपना पहला प्यार बना लिया, नम्बर वनं बाकी सब कुछ नम्बर दो पर खिसकता गया। इस ट्रिक से निंदर चारों खाने चित्त हो गया और पत्नी? एक प्यार भला दूसरे प्यार को कैसे बर्दाश्त कर सकता है? पत्नी ने बेमन से मेरे पहले प्यार को सौतिन के रूप में कुछ इस तरह कबूल किया गोया यह उसी के प्यार का एक्सटेंशन हो। इस तरह नम्बर वन और नम्बर दो में सह-अस्तित्व स्थापित हो गया। नम्बर दो शुरू -शुरू में नम्बर -वन से खीझती रही, लेकिन बाद में नम्बर वन का उसने जितना ध्यान रखा उतना कोई नहीं रख सकेगा।

इसमें सन्देह नहीं कि कई संगत-विसंगत स्थितियों में पत्नी ने मुझे भरपूर सहयोग दिया। उसने मुझे समझा ही नहीं, संभाला भी। मैं उससे झगड़ता भी रहा, प्यार भी करता रहा। मगर यहाँ भी निंदर अपनी नाक घुसेड़ ही देता। मेरी तरफ से जरा भी असावधानी हुई नहीं कि वह पत्नी से जा मिलता और मेरी सारी कलई खोल देता। एक आध बार मुझे शक हुआ कि मेरी खोज खबर के लिए कहीं वह पत्नी द्वारा तैनात मुखबिर तो नहीं। मैं हैरान होता कि जो मैं छिपे तौर पर करता रहता, उसकी भनक पत्नी को कैसे मिल जाती और वह मुझे मुस्कराती हुई यों मिलती गोया उसे मेरी एक-एक हरकत का पता हो। उसे अपने पर गजब का विश्वास था। मजाक-मजाक में किसी के उकसाने पर कहती 'अजी, जाएँगे कहाँ? रोशनी की एक बारीक-सी डोरी है, उसी से खिंचे चले आएँगे, जनाब!

यह बयान करना मुश्किल ही है कि मैं लेखक क्यों और कैसा बना? बहुत कुछ ऐसा होता है जो लेखक के बस में नहीं होता, हो ही जाता है। पता ही नहीं चलता कि कौन-सी लहर उसके अवचेतन-अचेतन अँधेरे से उठती है और उसके भीतर सर्जनात्मक उद्वेलन की उजली लकीरें खिंच जाती हैं। शब्द-पूर्व से, रचना-प्रक्रिया में शब्द की बंदिशों तक यह सिलसिला अपना शिखर रचता जाता है और रचना एक मुकम्मिल रूप ग्रहण करती जाती है। सृजन प्रक्रिया बचपन की स्मृतियों से कैसे तय होती है,इस बारे में काफी कुछ कहा जा चुका है। अपने संदर्भ में इतना ही कहूँगा कि मेरे बचपन में निंदर बैठा हुआ है। मैं चाहूँ न चाहूँ, वह मुझसे आ ही जुड़ता है। कई बार वह मुझे भनक भी पड़ने नहीं देता और मेरे अन्दर खलबली मचा देता है। बचपन में कई महीनों के गूँगेपन ने उसे चुप्पी की जो स्पेस दी, उस पर अपनी इबारत लिखने से मैं खुद को रोक नहीं पाता जबकि वह घूरता हुआ जतलाता है कि मैं उसकी जगह को घेर रहा हूँ। रचना-कर्म की तल्लीनता में कौन सा पल आखिरी होगा, मैं नहीं जानता। मेरा हमसाया निंदर आखिरी लम्हों में मेरे साथ होगा कि नहीं मुझे नहीं मालूम। हाँ, मेरे बाद वह कमबख्त रहेगा तो भी उसके साथ एक अंश तक रहूँगा ही, मेरी रचनाएँ भी रहेंगी, क्योंकि एक वही तो है उनमें साँस लेता हुआ।

मेरी रंग नाट्य प्रक्रिया

नरेन्द्र मोहन

नाट्यालेख को लेकर शब्द और रंग के मिले-जुले, खट्टे-मीठे, मायूसी और उम्मीद के जिन अनुभवों से मैं गुजरा हूँ, उन्हें बताने से पहले इस सम्बन्ध में कुछ सामान्य बातें आपके सामने रखना चाहता हूँ।

पहली बात, हर विधा में सर्जनात्मकता का एक निजी रूप और प्रक्रिया होती है, अभिव्यक्ति या प्रस्तुति के ढ़ंग भी अलग-अलग होते हैं, लेकिन यह कहना कि कविता, कहानी और उपन्यास से श्रेष्ठ है या नाटक कविता और कथा दोनों से उत्कृष्ट है या नाटक तात्कालिक और क्षणजीवी है और अन्य विधाएँ चिरस्थायी और शाश्वत, सही नहीं है। नाटक वैसा ही सर्जनात्मक कोटि का लेखन है जैसा कविता, कहानी, उपन्यास। हाँ अपनी प्रकृति में नाट्यालेख कुछ अधिक गुँथा हुआ, सघन और अन्य कलाओं को अपने में जज्ब करने वाला माध्यम है। कविता और कथा दोनों का उपयोग नाट्य-रचना में हो सकता है पर नाट्य का हिस्सा बनते ही उनका कायाकल्प हो जाता है। नाटक में संगीत, नृत्य, वेशभूषा और अभिनय की एक भाषा रहती है जिससे साधारण से दिखने वाले शब्द और प्रसंग नये अर्थ देने लगते हैं।

दूसरी बात, हर विधा और माध्यम की अपनी विशिष्टता और पहचान है। कथा और नाटक में समाज सीधे-सीधे आता है। कथा में पूरे विवरणों के साथ, नाटक में दृश्य और गति के संयोजनों में जबकि मुख्यतः बिम्बात्मक होने के कारण कविता में समाज उतना सीधे-सीधे नहीं आता, कई बार तो आता ही नहीं। प्रेक्षक, सामाजिक, दर्शक और पाठक की उपस्थिति जिस तरह नाटक में रहती है,उस तरह न कविता में न कथा में। कविता में जितने अर्थ-स्तर ऊपरी सतह पर दिखते हैं, उससे कहीं ज्यादा भीतर छिपे होते हैं। कविता, कथा, नाटक तीनों एक-दूसरे में आते-जाते रहते हैं, पर तीनों के शब्द ऊपर से एक से दिखने पर भी, एक से नहीं होते। उनका माध्यम उन्हें अपनी तरह से बदलता रहता है। कथा के शब्द में जहाँ कहने की प्रवृत्ति का महत्त्व है, वहीं नाटक के शब्द में देखना मुख्य हो जाता है और इसे देखने में स्थितियों, घटनाओं, संदर्भों और चरित्रों की एक बड़ी रेंज छिपी रहती है। नाटककार के देखे हुए को निर्देशक अभिनेताओं के खेल के जरिए दर्शकों को दिखाता है और दर्शक नाटककार के देखे हुए को अभिनेताओं के खेल में देखते हैं। नाटककार, निर्देशक, अभिनेता और दर्शक किसी भी तरफ से देखें, शब्दों में इस तरह 'देखना' नाटक या नाट्यालेख है। देखने और खेलने की यह नाट्य-प्रक्रिया, निश्चय ही, काव्य-प्रक्रिया और कथा-प्रक्रिया से भिन्न है। नाटक लिखना अगर कहानी, उपन्यास और कविता लिखने जैसा होता है तो मैं रंगकर्म की परवाह क्यों करता? परवाह करता हूँ तो इसलिए कि नाटक लिखता हूँ जो नाट्य के घेरे में आता है, उससे बाहर नहीं है और नाट्य है तो रंगकर्म से कैसा परहेज।

जाहिर है शब्द और रंग के साथ मैं एक साथ जूझता हूँ। नाटक में शब्द एक-दूसरे से अलग हैं भी नहीं। वे साथ-साथ होते हैं। यह नाटककार की नियति है। इस बात को ध्यान में रखते हुए हर नाटक लिखने के बाद मैंने चाहा कि वह पहले मंचित हो और बाद में प्रकाशित। अपने लिखे हुए शब्द को अभिनेताओं द्वारा अभिनीत होता देखकर तथा प्रस्तुति के अन्य रूपों को लक्षित कर मैं बेहद असंतुष्ट हो सकता हूँ। प्रकाशन से पूर्व इसीलिए, रंग प्रस्तुति का कायल हूँ, यह बात अलग है कि उसका मौका मिले न मिले। नाट्य-प्रक्रिया के अंतिम रंग-क्षण (जिसका ब्यौरा इस लेख में आगे चलकर दे रहा हूँ) पर मैं इसलिए जोर देता हूँ, क्योंकि मैंने पाया है कि नाटक का शब्द रंग-प्रक्रिया से गुजरते हुए ही सधता है। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि जिस नाटक में शब्द और रंग की जितनी अन्तरंग और गहरी अन्विति होगी, उतना ही वह नाटक पाठकों और प्रेक्षकों को एक साथ आकर्षित कर सकेगा।

आइए, अब सीधे-सीधे अपने नाट्यालेखन पर बात करूँ। विगत पच्चीस वर्षों में मैंने नौ नाटक लिखे हैं- 'सींगधारी', 'कहै कबीर सुनौ भाई साधो', 'कलंदर', 'नो मैंस लेण्ड', 'अभंग-गाथा', 'मि. जिन्ना', 'मंच अँधेरे में', 'हद हो गयी यारो' और 'मलिक अंबर'। ये नाटक अपने कथ्य और रूप में एक-दूसरे से अलग हैं। अक्सर मुझसे पूछा जाता है कि लम्बे समय से कविताएँ लिखते हुए मैं नाट्य लेखन में क्यों प्रवृत्त हो गया? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका ठीक-ठीक उत्तर देना मेरे लिए मुश्किल रहा है। बहुत पहले कई मित्रों और आलोचकों को मेरी कविताओं में नाटक के से संवाद, दृश्य और गति की भंगिमाएँ दिखाई दी थीं। हो सकता है उनमें गुम्फित नाटक मुझे नाट्यालेखन की तरफ ले गया हो। यह भी संभव है कि मेरे अवचेतन में ऐसी कुछ ध्वनियाँ, बिम्ब, दृश्य, एक-दूसरे को काटती-पीटती आवाजें, कोलाज शैली में दबी पड़ी रही हों और उन सबने मुझे नाट्यालेखन की तरफ धकेल दिया हो। यह तो है ही कि स्मृतियों ने मेरा पीछा कभी नहीं छोड़ा और स्मृतियाँ यदि इतिहास की हों तो उनके घेराव से बचना सम्भव नहीं है। हो सकता है बहुआवर्तों में उलझी गुथी, इतिहास में फैली ये स्मृतियाँ मुझे नाटक की ओर ले आई हों। कुछ तो होगा ही जो जाने-अनजाने मेरा पीछा करता रहा होगा और मुझे तीव्रता से एहसास दिलाता रहा होगा कि कविता के अलावा और भी रास्ते हैं अभिव्यक्ति के। नाट्य-रचना की तरफ आते हुए नाटक को अपने सरोकार का विषय बनाते हुए मुझे लगा कि मैं अपने से जूझने लगा हूँ। अपने भीतर जमी काई को खरोंचने लगा हूँ। कविता की जो परतें वर्षों से मेरे रचना-मन में पड़ी हुई थीं, उन्हें हटाना संभव नहीं था। मेरे लिए समस्या यह थी कि उनकी शक्ति का नाट्य रचना में उपयोग कैसे करूँ? पहला नाटक 'सींगधारी' लिखते हुए मैंने बड़ी शिद्दत से महसूस किया था कि कविता के शब्द को नाटक के शब्द में ढालने की चुनौती मेरे लिए बड़ी विकट है।

नाट्य-लेखन के दौरान कुछ मुद्दे बहुत बेचैन करते रहे हैं- विभाजन और इतिहास के मुद्दे ऐसे ही हैं जो बार-बार किसी न किसी रूप में कभी वस्तु-विधान के प्रकम्पन और चरित्रों में, कभी संवादों और भाषाई अनुगूँजों में तो कभी ध्वनियों के प्रकम्पन में, मेरे सामने आते ही रहे हैं। दरअसल, वर्तमान की

विभीषिकाओं और त्रासदियों से मैं पूरी तरह झुलसा और संत्रस्त हुआ हूँ। मौजूदा संकट मुझे इतिहास में ले जाता है। कभी कबीर के पास पन्द्रहवीं सदी में, कभी कलन्दरों के पास तेरहवीं सदी में, कभी तुकाराम के पास सत्रहवीं सदी में तो कभी मंटों के पास बीसवीं सदी में। विभाजन मेरे लिए आधुनिक इतिहास का जलता हुआ सन्दर्भ ही नहीं है, आज की मेरी स्मृतियों में भी रचा-बसा है। ये स्मृतियाँ इतिहास की हैं जिनके पंख मुझे अक्सर झुलसे हुए दिखते हैं। मैं इतिहास को स्मृति से अलग नहीं कर पाता। 'मिस्टर जिन्ना' नाटक में मैंने इन दोनों के घात-प्रतिघात और अन्तःसंयोग द्वारा उस सच को जानना चाहा है जो न व्यक्ति की साइकी के विरोध में जाता है, न ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाओं को झुठलाता है। इस तरह नाट्य-रचना करता हुआ मैं वर्तमान से इतिहास में और पुनः इतिहास से वर्तमान में लौटता रहा हूँ और आज के संकटों के सामने आ खड़ा होता हूँ।

उर्दू के मशहूर अफसानानिगार सआदत हसन मंटो की कहानियों, खासतौर से विभाजन सम्बन्धी कहानियों से मैं बेहद प्रभावित रहा हूँ। उनकी कहानी 'टोबा टेकसिंह' को आधार बनाकर जिन दिनों में 'नो मैंस लैण्ड' का पहला ड्राफ्ट उन्हें तुरन्त भेज दिया इस नोट के साथ कि नाटक का फिलहाल यह पहला ड्राफ्ट तैयार कर रहा था, उन्हीं दिनों श्री नेमिचन्द्र जैन का पत्र मुझे मिला था कि अगर मैं कोई नाटक लिख रहा हूँ या किसी विचार या थीम के गिर्द नाटक लिखने के बारे में सोच रहा हूँ तो उसकी एक रूपरेखा उन्हें विचारार्थ भेज दूँ। मैंने नाटक का उक्त ड्राफ्ट उन्हें भेज दिया। नाटक पढ़ने पर नेमिजी ने मुझे नाटककार कार्यशाला में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। यह कार्यशाला 15अगस्त, 1991 को प्रारम्भ हुई और चार दिनों तक चली। नाटककारों की शिरकत के साथ-साथ इसमें गोविन्द देशपाण्डे, नेमिजी, राजेन्द्रनाथ और कृष्णकान्त जैसे निर्देशक और समीक्षक शामिल हुए थे। कार्यशाला में आलेखों पर जमकर चर्चा हुई और उन्हें विभिन्न कोणों से देखा-पड़ताला गया। नाटककारों, समीक्षकों और निर्देशकों के बीच तनातनी के मौके भी आए जो स्वाभाविक ही था। मैंने दूसरे दिन नाटक पढ़ा जिस पर उपस्थित रंगकर्मियों ने नाट्य-कृति और रंगकर्म के संयुक्त मुद्दों पर बातचीत की। कुछ दिनों बाद मुझे पता चला कि नाटक के मंचन/निर्देशन का दायित्व 'साक्षी कलामंच' के निर्देशक श्री कृष्णकान्त को सौंपा गया है। इस नाटक की प्रथम प्रस्तुति जो 23 फरवरी, 1992 को हुई, को देखते हुए नाट्यालेखन के ढ़ाँचे में और प्रस्तुति के ढ़ाँचें में फर्क का एहसास मुझे हो गया था। हालाँकि नाटकीय आशय की लेखकीय और निर्देशकीय व्याख्या में मुझे कोई खास अन्तर महसूस नहीं हुआ था।

नाट्यालेख को तैयार करने की पहले से कोई निश्चित रूपरेखा मेरे सामने कभी नहीं रही है। वह बनते-बनते रहा है- कई प्रारूपों से गुजरते हुए यह एहसास भी रहा ही है कि यह आलेख खेले जाने के लिए है। नाट्य लेखन के प्राचीन रूप और संस्कृत नाटक भी बनते-बनते ही बने होंगे। अपने समय के रंगकर्म के सन्दर्भ में। पहला नाटक कैसा रहा होगा, इसका कोई लिखित तथ्य हमारे सामने नहीं है। हाँ, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि खेल-खेल में विकसित हुआ होगा या किसी चौपाल में बातों-बातों में बना होगा या किसी लोककथा में से अनायास फूटा होगा। 'हद हो गयी, यारो', इसी तरह मेरे जहन में कौंधा होगा। मि. जिन्ना के बैन हो जाने के बाद मैं बहुत खिन्न रहा और राज्य-सत्ता और बाजार के दबावों तले दम तोड़ती कलाओं की हैसियत के बारे में सोचता रहा। उस मनःस्थिति में मैंने पंचतंत्र की एक कथा पढ़ी जो तीर-सी मेरे भीतर उतर गयी। मुझे तत्काल लगा मेरे हाथ वह कथासूत्र लग गया जिसके आधार पर मैं एक नाटक लिख सकता हूँ। पहली उत्प्रेरणा और मैं एक नाटक की खोज में निकल पड़ा और मिल गया। यह नाटक लिखते हुए ही नहीं, हर नाटक की रचना के दौरान मुझे लगा है कि नाट्यलेखन सदियों पहले और हमारे वक्त में भी एक बहुआवर्ती, बहुस्तरीय रंग-प्रक्रिया है, पहले से कहीं ज्यादा हालाँकि यह सच है कि हर लेखक की सृजनात्मक मानसिकता के फलस्वरूप इन आवर्तों और स्तरों से जुड़े अर्थ और ब्यौरे बदल जाते हैं।

हर अच्छी और बड़ी रचना के एक से अधिक प्रारूप बनते ही हैं- कविता हो, कथा हो या नाटक। उन लेखकों के बारे में क्या कहें जो प्रारूप विरोधी हैं और एक ही सिटिंग में रचना को पूरा कर लेने का दावा करते हैं। कहने वाले आज भी कहते हैं कि उनकी रचनाएँ अन्तःप्रेरणा के आवेग में झरने की तरह फूटती है। आप ही बताइए ऐसे लेखकों का बलिहारी क्यों न हुआ जाए जो अपनी कृतियों के कई ड्राफ्ट बनाते हैं और उन्हें छिपाते हैं कि कहीं उन्हें प्रतिभाहीन करार न दिया जाए। खैर, कविता और अन्य विधाओं की बात छोड़िए, नाट्य-लेखन में निरन्तर काँट-छाँट, संशोधन-परिवर्तन करना ही पड़ता है। 'अभंग गाथा' के लेखन के दौरान मेरा पाला तथाकथित बड़े और माने हुए निर्देशकों से भी पड़ा, जिन्हें नाट्य-प्रक्रिया की प्रारम्भिक जानकारी भी नहीं है, जो नाटक का पहला ड्राफ्ट पढ़/सुनकर ही नाक भौं सिकोड़ लेते हैं और संवादविमुख हो जाते हैं। गोया पूरी नाट्य प्रक्रिया उस एक ड्राफ्ट के साथ ही खत्म हो गयी हो। ऐसे निर्देशकों से नाटककार-निर्देशक सम्बन्धों में तालमेल या शब्द और रंग की सह-स्थिति की क्या उम्मीद की जा सकती है? प्रस्तुति तक नाटक के लिखे जाने और उसके बनने की प्रक्रिया (अन्तिम रंग क्षण तक) के प्रति इनकी नासमझी भरी टिप्पणियों ने भी कम गजब नहीं ढाए हैं।

नाट्य-लेखन में एक के बाद दूसरा, तीसरा ड्राफ्ट एक सिलसिले में रहते हैं, रंग-प्रक्रिया के हिस्से के तौर पर। मंचन और प्रकाशन से पहले का ड्राफ्ट भी अस्थायी ही होता है। नाटक लिखते हुए मैं एक के बाद एक कम से कम तीन-चार ड्राफ्टों को बनाने की प्रक्रिया से गुजरता ही हूँ। 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' नाटक के उदाहरण द्वारा इस बात को स्पष्ट करना चाहता हूँ। इस नाटक का पहला ड्राफ्ट जब देवेन्द्र राज अंकुर ने सुना तो उनकी टिप्पणी थी 'यह नाटक मेरे सामने दृश्यों और गतियों में घूमने लगा है।' दूसरे और तीसरे ड्राफ्ट सुनने के बाद उन्होंने यह निर्णय लिया कि वे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा आयोजित रंग शिविर पटना में 14-15 नवम्बर, 86 को इसका मंचन करेंगे। यह भी तय हुआ कि पूर्वाभ्यासों के दौरान पटना के रंग-शिविर में मैं उनके साथ पूरी तरह से रहूँ। रिहर्सल के दौरान मैं वहाँ पहुँच गया था। मेरे लिए यह अलग ही तरह का अनुभव था। एक बड़ी टीम के साथ अंकुरजी को मैंने नाटक के हर पक्ष पर कार्य करते हुए देखा। मैंने देखा कि हर छोटी-बड़ी स्थिति और मोड़ को वे मात्र जानते ही नहीं है, उसके एक से अधिक अर्थों को

पहचानते भी हैं और अभिनेताओं तक पहुँचा भी रहे हैं। मैंने यह भी मार्क किया कि अभिनेताओं को उनके रोल और अभिनय सम्बन्धी मुख्य निर्देश देने के बाद वे उन्हें अभिनय की बारीकियाँ भी बताते जाते। इस नाटक को लेकर संगीत भी एक समस्या थी। कबीर की साखियाँ को, उनके गायन को क्या रूप दिया जाए? अन्ततः मैंने देखा कि इसके लिए भी अंकुरजी ने कबीर की साखियों और गायन को व्याख्यात्मक टिप्पणी के तौर पर रंग-कर्म का हिस्सा बनाकर एक अपना ही रास्ता निकाल लिया। शायद इसे ही कारन्तजी व्याख्यात्मक रंग-संगीत कहते हैं।

इसी दौर के एक और अनुभव को मैं यहाँ दर्ज करना चाहता हूँ। रिहर्सल के आखिरी चरण में एक दिन अंकुरजी ने मुझसे कहा, 'आपको नाटक के लिए एक दृश्य लिखना होगा।' मैं पलभर उनकी तरफ देखता रह गया। उन्होंने हल्की-सी मुस्कान के साथ कहा, 'रिहर्सलों के दौरान मुझे लगा कि कबीर की घर-गृहस्थी के कई प्रसंग और कोने ऐसे हैं जिन्हें नाटक उलांघ करके आगे बढ़जाता है। इससे गैप्स नजर आते हैं। मंच पर ये गैप्स क्यों दिखें? क्यों न इन्हें एक नया दृश्य लिखकर पाट दिया जाए? मुझे उनकी बात समझ में आने लगी कि नाटक के ढ़ाँचे को बरकरार रखते हुए इस तरह का दृश्य कैसे रचूँ? अचानक मेरे सामने कौंधा कि क्यों न गायक-गायिका के जरिए (जिनका उपयोग मैं नाटक के प्रारम्भ में कर चुका हूँ) गैप्स भरने का यह काम करूँ। रात के वक्त तीन-चार घण्टों में मैंने यह दृश्य लिख लिया। अभिनेताओं के साथ विचार-विनिमय करते हुए नाट्यालेख कैसे समृद्ध होता है और नाटककार-निर्देशक के बीच एक अर्थपूर्ण सह-सम्बन्ध कैसे बनता है, इसे मैंने बहुत करीब से जाना।

नाट्यालेखन के लिए कब कौन-सी बात प्रेरक बिन्दु बन जाए, कहना कठिन है। मंटो की कहानी 'टोबा टेकसिंह' के टोबा टेकसिंह की ऊलजलूल बड़बड़ाहट 'ओ पड दी गिड़-गिड़दी एक्स दी बेध्याना दी, मूंग दी दाल ऑफ दी हिन्दुस्तान एण्ड पाकिस्तान ऑफ दी दुर फिट्टे मुंह' - कभी मुझे 'नो मैंस लैण्ड' लिखने की तरफ ले गयी थी। बचपन में देखें, कलंदर से मिलते-जुलते, विस्मृत हुए एक चेहरे ने अचानक मेरे सामने फ्लैश करके मुझसे 'कलंदर' नाटक लिखवा लिया था और 'राजा के सिर सींग' वाली एक लोककथा के बोल और धुन को यों ही चलते-चलते सुनकर मैं नेता के सिर पर सींगों के बारे में सोचने लगा था और उसके नाटकीय अभिप्रायों में उलझता गया था। इस तरह 'सींगधारी' में लोककथा और वास्तविकता झीनी-सी फेंटेसी के धागों में तनते गए थे। यह लोककथा कब मेरे रचना-मन में कुंडली मारकर बैठ गयी और इस नाटक के लिए उत्प्रेरक बन गयी, मुझे नहीं मालूम। नाटक के बीचोंबीच इस लोककथा के विन्यास ने आधुनिक समाज और राजनीति के विद्रूप और विसंगति को उभारने में मेरी बड़ी मदद की है। लोककथा का 'राजा के सिर सींग' नाटक में 'नेता के सिर सींग' के नए मैटॉफर को ग्रहण करता गया है और दो समानान्तर कथाओं का शिल्प अनायास उभरता गया है, साथ ही भीतरी लय के समतुल्य बाहरी लय निर्मित होती गई है।

'सींगधारी' नाटक के बारे में एक बात और। इसका पहला ड्राफ्ट नुक्कड़ नाटक के रूप में हैं। इस फॉर्म में ही उन दिनों यह नाटक चण्डीगढ़, अमृतसरऔर रोहतक में खेला गया था, लेकिन लोककथा और समकालीन राजनीतिक-सामाजिक स्थितियों के सन्दर्भ मेरे भीतर कुछऐसी हलचल मचाए हुए थे कि मुझे लगा नुक्कड़ नाटक का माध्यम उसके लिए पर्याप्त नहीं है। मुझे लगा नाटक को उस हदबन्दी से बाहर लाना और उसे एक सम्पूर्ण रंगमंचीय नाटक का रूप देना जरूरी है। एक तरह की फार्म को दूसरी फार्म में ढालना, निश्चय ही, कठिन काम है, लेकिन जैसे-जैसे मैं यह काम करता गया, दिक्कतें दूर होती गईं और एक रंगमंचीय नाटक का प्रारूप सामने आता गया। तभी अचानक अरुण माथुर और विनय से मुलाकात हो गई। मैंने उन्हें इस बारे में बताया तो वे उत्साहित होकर इस नाटक के मंचन में जुट गए। 6मार्च, 1988 को श्रीराम सेंटर में इसका प्रदर्शन हुआ। इस प्रदर्शन को लेकर निर्देशक के साथ मेरी असहमति के कई बिन्दु थे तो भी नाट्यालेख के शब्दों को पात्रों की हरकतों, गतियों और भावानुकृतियों में देखना मेरे लिए एक दिलचस्प अनुभव था। प्रदर्शन से मैंने कविता के शब्द की सीमाओं को पहचाना और पुनः काम करने में जुट गया जो आगे चलकर मेरे लिए एक लाभकारी अनुभव बना।

नाटक और रंगमंच और अँधेरा तीनों की नियति एक-दूसरे से जुड़ी-बँधी है। तीनों को एक-दूसरे के संदर्भ में और एक साथ देखते रहने की जरूरत है। तीनों का पाठ-पुनर्पाठ करते रहना चाहिए, यह मैंने 'मंच अँधेरे में' नाटक लिखते हुए खासतौर पर महसूस किया। इस नाटक ने मुझे अँधेरे के तमाम रंगों को देखने की दृष्टि दी। नाटक चूँकि रंगकर्मियों के संकटों-संतापों से जुड़ा है, नाट्य-प्रक्रिया और रंग-प्रक्रिया स्वतः एक-दूसरे में ढलती गयी हैं।

नाट्य रचना के क्षणों के बारे में सोचता हूँ तो मुझे मुक्तिबोध के रचना के तीन क्षणों की याद आती है। ये तीन क्षण हैं : कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक् हो जाना और एक ऐसी फैंटेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह फैंटेसी आँखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अन्तिम क्षण है इस फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्ण अवस्था तक 'गतिमानता'। कला और कविता के सन्दर्भ में मुक्तिबोध द्वारा बताए गए ये तीन क्षण माने जा सकते है? मुझे लगता है कि मुक्तिबोध की रचना-प्रक्रिया के तीन क्षण कमोबेश ठीक ही हैं, हालाँकि हर रचनाकार अपनी रचना-प्रक्रिया के दौरान अलग-अलग तरह से इनमें से गुजरता है। मैं सोचता हूँ कि क्या मुक्तिबोध के इन रचना क्षणों को नाट्यालेखन के भी तीन क्षण नाट्यालेखन पर हू-ब-हू नहीं उतार सकते। नाट्यालेखन की प्रक्रिया में तीन-चार अवस्थाएँ एक सिलसिले में जुड़ी रहती है। नाट्य-रचना का पहला क्षण है जीवन के किसी गहरे उद्वेलन (जिसे मुक्तिबोध उत्कट अनुभव कहते हैं) के भीतर से किसी नए विचार, किसी दहकते हुए बिंब या विविध अर्थों में कुंडलीबद्ध किसी प्रतीक का कई सन्दर्भों से जुड़कर सूझना और कौंधना, उदाहरण के लिए 'सींगधारी' नाटक में इधर की राजनीति की क्रूरता और सामाजिक विद्रूप को देखने के मेरे अनुभव का राजा और नाई की कथा से अचानक कई संदर्भों में आ जुड़ना और तनना, पंजाब में आतंकवाद के हौलनाक अनुभव से मथे जाते हुए 'कलन्दर' नाटक

में तेरहवीं सदी के कलन्दर से मेरी मुठभेड़ और कलन्दरों के जमावड़े में बुद्धू का आ जाना या अभंग पोथियों को नदी में डुबो दिए जाने पर तुकाराम के संताप का, मेरी आज की मनःस्थिति से बिंध जाना और भीमसेन जोशी द्वारा गाए गए अभंग की लय-तालसे मेरा 'अभंग-गाथा' लिखने के प्रथम कम्पन को महसूस करना। यही नाटककार प्रारम्भिक स्फूर्ति का संयोजन स्थितियों, घटनाओं और चरित्रों में भी करने लगता है। नाट्य-रचना का दूसरा क्षण है कथाक्रम या घटनाक्रम के भीतर से निकले विचारों और भावों का चरित्रों में मूर्तन और उनके अनुरूप नाटकीय शब्द और संवादों की रचना जैसे 'अभंग-गाथा' की परिचित वस्तु में से उद्वेलनकारी वस्तु का उभरना और वैसी ही संवाद-रचना। लक्षणा और व्यंजना के झमेले में पड़े बिना यहाँ ठेठ अभिधा को ध्वनिगर्भित बना दिया जाता है। नाट्यलेखन का तीसरा रंग-क्षण वह है जब नाटककार निर्देशक के साथ रंग-मंडली के पूर्वाभ्यासों में शिरकत करता है और अभिनेता द्वारा शब्द के बोले जाने से लेकर उसे अंतिम अंजाम देने तक की प्रक्रिया को देखता हुआ अपने नाटक के चरित्रों और शब्द के भीतर छिपे दृश्यत्व की जाँच करता है। 'कहै कबीर सुनो भाई साधौ' के पूर्वाभ्यासों को देखते हुए यह जाँच मेरे भीतर चलती रही। नाटक लिखते हुए कबीर जब मेरे सामने अपने सभी रूपों और आयामों में प्रकट हुआ तो मैंने उसके समतुल्य अभिनेता की कल्पना की थी। दिल्ली में 'संभव' द्वारा 'कहै कबीर...' की प्रस्तुति में कबीर की भूमिका में अश्विनी शास्त्री कबीर की मेरी उस कल्पना के बहुत करीब उतरा था जो मैंने आलेख लिखते हुए की थी। यह सही है कि पहले प्रदर्शन के मौके पर मैं बड़ी दुविधा में था और आशंकित भी कि पता नहीं मंचन में मेरी कृति के साथ कैसा सलूक हो, लेकिन प्रदर्शन देखने के बाद मुझे एक अपूर्व-सी अनुभूति हुई। मुझे महसूस हुआ कि जो नाटक मेरे सामने हो रहा है, वह मेरा है भी और नहीं भी। आलेख में कहीं कोई परिवर्तन नहीं किया गया था, तो भी दृश्य और गति की कुछ ऐसी बंदिशें थीं, अभिनय और संगीत का एक ऐसा गुण था या स्टेज की सेटिंग कुछ ऐसी थी कि सभी कुछ मिलकर जुड़ते-तनते गए और प्रभाव गहराता गया। नाट्य-लेखन का यही चरम और निर्णायक क्षण है जब मैं पुनः नाटक में लौटता हूँ। ऐसा मैंने हर नाटक के साथ किया है। रिहर्सल देखते हुए कई विचार मेरे जेहन में कौंधते हैं जो आलेख को अंतिम रूप देते हुए मेरे काम आते हैं।

मैंने महसूस किया है कि नाट्य-लेखन इकहरी प्रक्रिया नहीं है, दोहरी-तिहरी प्रक्रिया है, जो किसी दूसरी विधा में नहीं मिलेगी। कविता की अपनी स्वायत्तता है। उसें दूसरी किसी कला का हस्तक्षेप नहीं है। कहानी और उपन्यास के कला-रूप तो सर्वमान्य ही हैं, लेकिन नाटक को रंग-कर्म में ढलना ही है। इस अर्थ में नाटक बहुआवर्ती कला-रूप है। दरअसल, नाटक ही वह कला है जिसमें आप दूसरी कलाओं के प्रवेश को रोक नहीं सकते। दूसरे और तीसरे की उपस्थिति वहाँ जरूरी है। एक पत्नीव्रत या एक पतिव्रत धारण, एक के प्रति एकांत समर्पण की गुंजाइश यहाँ बिल्कुल नहीं है, यह मैंने अपने अनुभव से नाटक लिखते हुए जाना है।

नाटक जहाँ निर्देशक, अभिनेता और पार्श्व में काम कर रहे रंगकर्मियों से जुड़ा है, वैसे ही दर्शक से भी। उसके बिना मंच की परिकल्पना नहीं की जा सकती। इस दर्शक के सैकड़ों रूप हैं, जो नाटककार के साथ बार-बार और कई तरह से जुड़ते हैं और उसे घेरते हैं। नाट्य समीक्षक भी एक तरह का दर्शक ही है, मगर दर्शक की बात निराली है। वह सीधे-सीधे दो टूक, कभी-कभी मौन रहकर भी, अपनी प्रतिक्रिया देता हैं अपने नाटकों के हर प्रदर्शन के बाद दर्शकों से मेरा संवाद हुआ है। दूसरी भाषाओं में जब ये नाटक खेले गए और दर्शकों की जो प्रतिक्रियाएँ मुझे मिलीं उनसे मुझे तीव्रता से यह एहसास हुआ कि रंग-शब्द में अभिनेता ही नहीं दर्शक और पाठक दूर तक झाँकता है, उसका रसास्वादन करता है और बेझिझक अपनी प्रतिक्रियाएँ देता है। मुझे ऐसे दर्शक पाठक मिलते रहे हैं जिनकी नाट्य सौन्दर्य-वृत्ति पर मैं भरोसा कर सकता हूँ। नाट्यकृति, निर्देशक, अभिनेता और दर्शक-पाठक मिलकर ही नाटक को मुकम्मिल बनाते हैं।

नाट्य रचना के क्षणों के बारे में सोचता हूँ तो मुझे मुक्तिबोध के रचना के तीन क्षणों की याद आती है। ये तीन क्षण हैं : कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक् हो जाना और एक ऐसी फैंटेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह फैंटेसी आँखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अन्तिम क्षण है इस फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्ण अवस्था तक 'गतिमानता'। कला और कविता के सन्दर्भ में मुक्तिबोध द्वारा बताए गए ये तीन क्षण माने जा सकते है। मुझे लगता है कि मुक्तिबोध की रचना-प्रक्रिया के तीन क्षण कमोबेश ठीक ही हैं, हालाँकि हर रचनाकार अपनी रचना-प्रक्रिया के दौरान अलग-अलग तरह से इनमें से गुजरता है।

नरेन्द्र मोहन की कविताएँ

कविता मुझे बचा लो!

कविता मुझे बचा लो
मेरे भीतर अपनी बेचैनियाँ भर दो!

झूठ बोलने में, बकबक में माहिर हो चुका हूँ
वाक-छल में अव्वल
जोखिम के अंदेसे-भर से घबराने लगा हूँ
एक अँधेरे से दूसरे में जाते हुए
लानत-मलामत हुई इस तरह कि
सच से दूर जा पड़ा हूँ
सच की चौखट तक उजाले में ले आओ
कविता मुझे बचा लो!

कौन है जो विचार के भाल को ताबड़तोड़ फोड़ रहा
बुजदिली के आलम में भय से मैं ठिठुर रहा
अंदर से पोला-पिलपिला
उठने के लालच में बेहद गिर गया
गिरते-गिरते देखो न, शिखर पर चढ़ गया
सिरफिरों को गाली देने लगा, सूली पर चढ़ाने लगा
इतना विकास हुआ मेरा कि मैं शांति-पाठ करता
अमानवीय हो गया
मेरे कोहराम को सृजन में ढाल दो
कविता मुझे बचा लो!

कविता का रूतबा सबसे बड़ा, कहता था मैं
अब वैसा कहने से कतराने लगा हूँ
पाबंदी में बंदगी में मस्तकों को झुकते-लुढ़कते देख
लज्जित-पराजित हूँ
अपनी ही परछाई से डरने लगा हूँ
मुझे स्वाधीनता की राह पर बेखौफ चलना सिखा दो
कविता मुझे बचा लो!

शब्द के कुंवे में झाँकता था दूर तक
उड़ता था अनन्त में
उतरता था शब्द-संग समुद्र में
चमकीला वह शब्दनाद अब कहाँ संभव
सनसनाती पत्तियों में एक खंज़र और चीत्कारों का
भयावह सिलसिला यहाँ से वहाँ,
पता नहीं कहाँ-कहाँ

कँपकँपाती रूह कल्पना काठ
कविता मुझे बचा लो
मेरे भीतर अपनी बेचैनियाँ भर दो!

परिंदा

चुपके से आ बैठा डाल पर एक परिंदा
एक हिलोर में रोमांचित डाल
उड़ने लगी आसमान में परिंदे के साथ

डाल में परिंदा कि परिंदे में डाल
पता ही न चला और मैं
लौट आया अंत से
आरंभ में डाल पर परिंदे की तरह
और उड़ता चला गया अनन्त में!

रचना-क्षण

सोए हुए रंग को जैसे ही तुमने हल्के से
ब्रश की नोक से छुआ
वह अलसाया-सा जाग उठा और सोचने लगा

किसने उसे जगाया? किसने उसे छुआ?
कौन उसे महका गया?

अजीब था वह रचना-क्षण
रंग और ब्रश आमने-सामने थे

क्या रंग-संकेत थे या संकेतों के रंग कि
ब्रश रंग से खेलने लगा
रंग की भीतरी दुनिया में दाखिल हो गया

रंग उड़ने लगे, फैलने लगे,
नये-नये वितान तनने लगे

कभी चले जाते वे समुद्र की गहराइयों में
नापने लगते कभी आसमान
पहाड़ों को अपने आगोश में ले लेते,
गुफाओं में घरौंदा बना लेते
वात्याचक्र में घुमड़ने लगते
कभी सरोवर की शांति में डूब जाते

एक अनन्त प्रवाह में
रंगों के रंग समाते जा रहे थे और
ब्रश का कहीं अता-पता न था...

किरदार निभाते हुए!

यह क्या... मैं ही था क्या
साइक्लोन की हजारों तरंगों के
घात-प्रतिघात को झेलता
अपनी चेतना के रू-ब-रू
देह और आत्मा के बीच की खाई के
निविड़ एकांत में खुद को देखता
किरदार में उतरता
जैसे कोई गोताखोर समुद्र की
अतल गहराइयों में उतरे
साथ ही देखता चले खुद को
हिलोरें लेती मछली हाथ में लिये बाहर आता

और मुझे लगे तोड़ता-फोड़ता कोई
पसर रहा रग-रग में
अजानी-सी ध्वनियों के साथ मुझे लाँघता पार जाता

मैं देखने लगा- खामोशी की आँच में पिघलते-बदलते
स्वयं को कई रूपों में

और सुनने लगा गहन निस्तब्धता में
बेआवाज़-सी एक डुबकी
'छप' की आवाज़ और पहचान के रेशे-रेशे में
घुलती-गुनगुनाती शिलाएँ
एक सपने में जैसे मैं हूँ, मैं नहीं हूँ
किरदार निभाते हुए!

एक सवाल

'एक सवाल' 'हाँ, बस एक सवाल'
मृत्यु की आँखों में आँखें डालते हुए मैंने कहा-
'क्या है वह जो तुम्हारा हो जाने के बाद भी
अमर बनाता है?'

'अरे, वही जो डरता नहीं देता है मुझे चुनौती
मुझसे रू-ब-रू मेरी आँखों में
बेख़ौफ झाँकता है
मेरी तरफ देख हँसता है
और भगतसिंह हो जाता है'

मैंने देखा- कहीं नहीं है
डर के साये
मौत ज़िंदगी-सी मोहक है
और मैं उसके आर-पार
झाँक रहा हूँ!

नाटक 'मलिक अंबर' (संक्षिप्त रूप)

नरेन्द्र मोहन

यह नाटक 17वीं सदी के इतिहास-पुरूष मलिक अंबर पर केंद्रित है जिसका जन्म इथोपिया के एक शहर अलहर्रा से सटे एक गाँव के हब्शी कबीले में 1549 में हुआ था। आर्थिक तंगी की वजह से माँ-बाप को उसे बचपन में बगदाद की मंडी में कासिम बगदादी को बेचना पड़ा। बगदादी ने उसे तालीम दी, हुनर भी सिखाए, मगर रहा तो वह गुलाम ही। 16-17 साल की उम्र में वह हब्शियों के काफिले के साथ अहमदनगर (महाराष्ट्र) पहुँचा और धीरे-धीरे सरदार, सेनापति के पदों पर आसीन होकर अंततः अहमदशाही का वजीरेआलम बना। दक्कन में उस वक्त अहमदशाही के साथ आदिलशाही (बीजापुर) और कुतुबशाही (गोलकोण्डा) का भी दबदबा था। मलिक अंबर ने तीनों को एक सूत्र में पिरोकर 17वीं सदी में अपनी छापामार पद्धति (गोरिल्ला वॉरफेयर) द्वारा जबरदस्त टक्कर दी।

मलिक अंबर जनता के दुख-दर्द से गहरे में जुड़ा हुआ शासक था। कास्तकारों और किसानों के लिए उसने कई क्रांतिकारी कदम उठाए। उसके लिए हिंदु-मुसलमान, मराठा, गैर-मराठा, हब्शी, गैर-हब्शी, छोटे-बड़े की कोई अहमियत नहीं थी। कई लोग उसे विदेशी और बाहरी मानुष कहते रहे लेकिन वह खुद को इस देश का बाशिंदा मानता था और मुगलों को बाहरी और देश का दुश्मन। किसी भी तरफ से देखें, वह गैर वतनी नहीं, हम वतनी नजर आता है। राजू दक्कनी जैसे स्थानीय सरदारों से और शहंशाह जहाँगीर से, इसीलिए, उसकी हमेशा ठनी रही।

उस दौर का मेरा अध्ययन और निरीक्षण जैसे-जैसे बढ़ता गया, मैंने पाया, (एक) मलिक अंबर ने अपने समय में यहाँ के समाज का एक धर्म-निरपेक्ष ताना-बाना बुना जिसमें जाति, धर्म और फिरकों का कोई दखल नहीं था। उस की सेना में भी मुसलमान, मराठे, काश्तकार, किसान और सभी जातियों-वर्गो के लोग थे। (दो) उसने किसान को बराबरी पर रख कर काश्तकारी को लोकतांत्रिक रूप दिया। (तीन) उसने यहाँ की भौगोलिक स्थितियों का लाभ उठाते हुए पहाड़ों-पहाड़ियों को रण-क्षेत्रों का रूप दिया और छापामार रणनीति (गोरिल्ला वार फेयर) का ऐसा दौर प्रारंभ किया कि जहाँगीर और उसके सेनापति अब्दुल रहीम खानखाना चारों खाने चित्त हो गये। इससे जहाँगीर इस कदर बौखला गया कि उसने हुक्म दिया कि जैसे भी हो अंबर को फतेह करो, मगर अंबर की रणनीति और नीति-निपुणता के आगे उसकी एक न चली। अपनी अंतिम सांसों तक मलिक अंबर ने दक्कन को मुगलों का उपनिवेश नहीं बनने दिया। (चार) वह एक अद्‌भुत नगर-शिल्पी, जन्मजात जलशास्त्री या जल का जादूगर था। खड़की जैसे छोटे से कस्बे को उसने एक आलीशान नगर (आधुनिक औरंगाबाद) का रूप दिया। वही था जो नये-नये तरीकों से पहाड़ों और रूके हुए जल-भंडारों से नगर में और किले के शिखरों पर स्थित महलों तक पानी ले गया। उसने औरंगाबाद और आसपास के इलाकों में नहरों का जाल बिछा दिया। नाटक का प्रारंभ सत्रहवीं सदी (1602) से किया गया है। इसी वर्ष अहमदशाही के तत्कालीन वजीरेआजम दबीर खां का कत्ल हुआ। मलिक अंबर ने उसकी बीवी सईदा करीमा को सुरक्षा प्रदान की, उसके साथ निकाह किया और उसी वर्ष अहमदशाही का वजीरेआजम बना। इस ओहदे की महत्त्वाकांक्षा रखने वाला राजू दक्कनी इससे बुरी तरह चिढ़गया और ताउम्र उसके खिलाफ साजिशें करता रहा। यही वह वक्त था जब मुर्त्तजा निजामशाह का देहांत हुआ। उस वक्त मलिक अंबर ने अपने मनपसंद शाह अली को मुर्तजा निजामशाह दोयम के तौर पर गद्दी पर बिठाया और उसके साथ अपनी बेटी हमीदा की शादी की जिसके दूरगामी परिणाम हुए। प्रसंगवश इस तथ्य की तरफ भी संकेत किया जा सकता है कि शिवाजी के दादा (मालोजी भोंसले), पिता (शाह जी भोंसले) और नाना लखू जी जाधव उसके दरबार में सरदार/सेनापति थे।

मलिक अंबर जैसे बहुआयामी, बहुल प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्व को नाटक के अलावा किसी अन्य विधा में समेटना मेरे लिए संभव नहीं था। ग्यारह दृश्यों में विभाजित नाटक उस की निजी, पारिवारिक और राजनीतिक जिंदगी की परत-दर-परत खोलता चलता है। पता नहीं कब उसके पर्सनल में पोलिटिकल आ घुसता है और पोलिटिकल में पर्सनल। नाटक का शिल्प कुछ इस तरह विकसित हुआ है कि गायन मंडली हर दृश्य में मौजूद रहती है। वह मंच के दायें-बायें, मध्य में, नेपथ्य में कहीं भी हो सकती है। उसकी भूमिकाएँ और किरदार बदलते रहते हैं। गायकों के साथ-साथ वे छापामारों, सैनिकों, कीर्तनकारों की भूमिकाएँ भी अख्तियार करते जाते हैं। उनके साथ उस वक्त की सूफी और वारकरी धाराएँ भी जुड़ती गयी हैं। नाटक चाहे 13वीं सदी का हो या 17वीं सदी का, जुड़ता तो वह हमारे आज से है और खेला भी वर्तमान में ही जाता है।

यह नाटक कई बार खेला गया है। पहली बार 'रंगदर्शन' रंग-संस्था की तरफ से श्री विजय कपूर के निर्देशन में चण्डीगढ़ में और दूसरी बार प्रसिद्ध संस्था एम.जी.एम. द्वारा श्री भालेराव के निर्देशन में औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में। कई अन्य कला-केंद्रों पर इसके प्रदर्शनों की सूचना मिलती रही।

कई मित्रों और रंगकर्मियों का सुझाव था कि बदली हुई परिस्थितियों में, लगभग 20 पात्रों और ढाई घंटों की प्रदर्शन-अवधि वाले मलिक अंबर जैसे नाटक को संक्षिप्त रूपाकार में आना चाहिए। एक लंबे अरसे तक मैं इस प्रस्ताव को टालता रहा लेकिन जब टालना संभव न रहा तो मैंने सोचा क्यों न वर्षो बाद नाटक के पाठ से पुनः एक बार गुजर जाऊँ। नाटक को पढ़ने की प्रक्रिया के दौरान मुझे महसूस हुआ नाटक मेरे हाथों में तेजी से बदलने लगा है। यह प्रक्रिया है ही कुछ ऐसी कि कुछ छूट जाता है और कुछ अनायास जुड़ने लगता है। स्वाभाविक है नाटक के कलेवर और वस्तु-विन्यास में ही नहीं, रंग-रूप में भी परिवर्तन हो जाए। मैं सोच ही रहा था कि मैंने देखा कि दृश्य-विधान की पूर्व-निर्धारित सीमाएँ टूटने-मिटने लगी हैं और नए दृश्य बनने लगे हैं। नयी ध्वनियाँ और अर्थ-छवियाँ मेरे करीब इस तरह मंडराने लगी कि मुझे पता ही न चला नाटक के ग्यारह-दृश्य कब छह दृश्यों में ढल गए।

मित्रों-रंगकर्मियों के सुझाव का ही यह नतीजा है कि मैं नाट्य-कला के अपने पैमाने के हिसाब से एक नए नाट्य-प्रयोग में दाखिल हो सका। पाठक इसे एक बड़े नाटक के संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया के रूप में भी देख सकते हैं।

आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

मलिक अंबर

(नाटक : संक्षिप्त रूप)

नरेन्द्र मोहन

दृश्य : एक

(प्रकाश डाउन स्टेज फैलता है) एक मानव कतार कड़ियों की तरह हाथ में हाथ लिए दर्शकों की तरफ पीठ किए खड़ी है। दर्शकों की तरफ वे अचानक मुड़ते हैं और धीरे-धीरे नृत्य मुद्राओं में आधे मंच को घेर लेते हैं। इनमें से कुछ गायक और नर्तक हैं - किसी के हाथ में तबला है, किसी के हाथ में इकतारा, किसी के हाथ में ड्रम है, किसी के हाथ में करताल। नृत्य मुद्राओं के साथ ड्रम बीट्स। लय-गतियों में धीमी-धीमी धुनों के साथ गायक-नर्तक मंच के बायीं तरफ अपने साजों समेत बैठ जाते हैं। गायन-मण्डली मंच के दायें बायें नेपथ्य में कहीं भी हो सकती है। आपने ठीक पहचाना कतार में छह हब्शी, शेष मराठा सरदार और किसान । थिरकते हुए वे पुनः दर्शकों की तरफ पीठ कर लेते हैं। दायें-बायें विंग्स से दो हब्शी प्रवेश करते हैं और थिरकते हुए आगे बढ़जाते हैं। प्रकाश केवल उन्हीं पर केंद्रित। एक-दूसरे को पलट कर देखते हैं :)

एक : सईदा जानेमन।

सईदा : अंबर, मेरे दिलबर! तुम तो गुम्बद में पड़े थे।

अंबर : तुम भी! बाहर कैसे आ गयी ?

सईदा : कमाल करते हो, तुम आवाज दो और मैं न आऊँ, ऐसा कभी हुआ है क्या?

अंबर : मैंने तो बस छड़ी घुमायी यूँ (वैसी चेष्टा करता है) और पूरे गुम्बद में मेरी आवाज गूँजने लगी। मुझे लगा जैसे तुम्हारी आवाज हो।

सईदा : मेरी आवाज तुम्हारी आवाज, मेरे दिलबर! लगता ही नहीं कि सदियाँ बीत गयी हों।

अंबर : हाँ, जैसे कल की बात हो। हम इथोपिया की अलहर्रा बस्ती से, हब्शियों-गुलामों के काफिले के साथ मुरड जजीरा होते हुए अहमदनगर आए थे। (दूसरे पल) लगता है गुलाम और जानवर के बीच किसी ने हमें जकड़ दिया हो।

सईदा : न वह जमीं, न आसमान, न वह शाहंशाह, न मुलतान।

अंबर : छोड़ री, नये सुलतान, नए बाजीगर नए बादशाह गोलों की मानिंद एक देश गडप्प, दूसरा गडप्प और .....

सईदा : औरों को छोड़, अपनों को देख, लूटे जाने को हम आदिवासियों के भंडार, हमारी जमीन, हमारे जंगल। वे नफीस, हम जंगली-गंवार, वे मरें तो शहीद, हम मरें तो.....

अंबर : याद है मैं दोनों के खिलाफ लड़ता रहा।

सईदा : याद है।

अंबर : याद है कि एक अदद घर की तलाश में हम यहाँ आए थे और यहीं के हो कर रह गए।

सईदा : याद है। यह तो घर है प्रेम का/खाला का घर नाहीं

अंबर : उनका क्या करें जो हमारे घर में घुसे आते हैं जैसे उनकी खाला का घर हो।

सईदा : ऐसे लोग तब भी थे और तुम लोगों के दिल-दिमाग पर छा गए थे।

अंबर : यह कहो कि वहशियों के खिलाफ पूरा समाज मेरे साथ उठ खड़ा हुआ था।

सईदा : हाँ! तुम उस वक्त की सियासत की कील बन गये थे और दुश्मनों के लिए काँटा।

अंबर : *(मुस्कराता है)*

(प्रकाश डाउन स्टेज मानव कतार पर। दो व्यक्ति दर्शकों की तरफ मुँह करते हैं।

अंबर : *(उन्हें देख)* कौन हैं ये। बिल्कुल मेरी, तेरी जैसी शक्लें!

(प्रकाश गायन मण्डली पर)

सईदा : *(उन्हें देख)* ये गवैये! कोई तमाशा है क्या?

गायक-1 : *(तबले पर थाप देता हुआ)* हाँ, तमाशा है तमाशा। नाटक है नाटक उधर देख - *(कतार की तरफ संकेत करता है)।*

(सईदा, अंबर उस तरफ देखते हैं)

सईदा : अंबर देख, मेरे, तुम्हारे जैसे चेहरे ....

अंबर : कहीं यह हमारा नाटक तो नहीं।

सईदा : हाँ....., इससे पहले कि पुरानी दास्तां नेजे-सी आँखों में चुभे, चल गुम्बद में लौट चलें।

अंबर : हमारा ही नाटक और हम गुम्बद में जा बैठें, नहीं अपनी नजरों से अपने को देखने का यह मौका सैकड़ों साल बाद मिला है। क्यों न देखकर ही जाएं?

सईदा : देखते-देखते क्यों न किरदारों में बदलते जाएं!

(एक दूसरे की आँखों में देखते हुए विंग्स की तरफ चले जाते हैं और नाटक देखने लगते हैं ।)

(डाउन स्टेज में प्रकाश मद्धम हो जाता है। प्रकाश गायन मण्डली पर। ड्रम बीट्स के साथ गायन :) सुनो, सुनो कथा यह अंबर की शिवाजी से पहले की दक्कन और देश की

गायन-1 : एक सदी का अंत हुआ था शुरू हुई थी स ... र .... र .... र वीं सदी पहले से ज्यादा डरावनी, जहरीली *(वैसी ही भाव-मुद्रा)*

गायन-2 : दक्कन पर मुगलों के हमले तेज हुए थे/बरबादी का जश्न मनाती/ अजेय मुगलिया सेना ने/ पूरे दक्कन को पैशाची पंजों में जकड़ लिया था

गायक-3 : तभी एक हब्शी आया अंबर/ हब्शी - अलबेला/ फौलादी/ वीरान बस्तियों को जिसने आबाद किया/ बंजर धरती पर जिसने/नहरों का जाल बिछाया/अद्‌भुत था वह/अद्‌भुत थी लड़ने की उसकी कला/उसे देख मुगलिया सल्तनत के होश उड़ गए/उलट दिया उसने अंधड़ का रूख/सुनो, सुनो, कथा यह अंबर की/शिवाजी से पहले की/दक्कन और देश की

(लय-गतियों में खड़े आदमी थिरकते रहते हैं, कभी दर्शकों की तरफ पीठ करते हैं, कभी मुँह! विंग्स में से एक व्यक्ति ढ़ोलक पर थाप देता आगे बढ़ता हुआ दर्शकों से :)

आप मुझे नहीं जानते मगर अब जान जाओगे। मैं हूँ राजू-यहाँ का मूल निवासी राजू दक्कनी!

हाँ, यहाँ का जन्मा-पला, यहाँ के गली-कूचों, नालों-पहाड़ों, दुर्गो-किलों, मैदानों के चप्पे-चप्पे से वाकिफ! *(कतार में खड़े लोग दर्शकों की तरफ मुँह करते हैं।)*

(उन्हें देख चतुराई भरी हँसी हँसते हुए) :लम्ब, तडंग, लफंग, बेढंगी, खोपड़ी, बेतरतीब कतारों में - कौन है ये हजारों-हजार, नंग-धडंग। कीड़ों-मकौड़ों की तरह फैलते जा रहे यहाँ। कैसे इन्हें रोकूँ! मेरे इलाके में मुँह उठाए चले आए जैसे इनकी माँ का ....।

(लंगड़ाते हुए आगे बढ़आता है)

(आवाज में नर्मी लाते हुए) कौन हो तुम लोग?
(कतार के बीच से एक लम्बूतरा आदमी आगे आ जाता है। उसके पैरों से सिर तक निगाहें ले जाता हुआ, हैरत से-) जिन्न-सा तू कौन?
आदमी : मैं मलिक अंबर .... तू कौन?
राजू : मैं, मैं, राजू! तू हब्शी-गुलाम- वही हो न?
अंबर : हाँ, वह अंबर हब्शी जो हर गुलाम के अंदर छिपे आजाद को बाहर लाया।
राजू : जो किलों और दुर्गों पर भूखे भेड़िये-सा टूट पड़ा। अंबर : नहीं, जो तेरे जैसे खूँखार भेड़िए के पंजों से किलों और दुर्गों को खींच लाया।
(कतार में से एक और व्यक्ति आगे बढ़आता है)
अंबर : मंसूर!
राजू : लो, एक और हब्शी।
मंसूर : हो-हो-हो, तुमन लुटेरा, हमन हब्शी।
अंबर : (तेज नजर से राजू को देखता है) : लुटेरा!
राजू : वाह रे। *(फिस्स करके हँसता हुआ पीठ पीछे से ढोलक निकाल बजाने लगता है।)*
अंबर : क्या ढोलक बजाते हो?
राजू : *(ढोलक पर थाप देता हुआ)* ढोलक क्या, मैं सुलतानों को बजा दूँ। *(स्वर बदल कर)* मेरी गोटियाँ ठीक न पड़ीं, वरना दबीर खां के बाद ...
मंसूर : दबीर खाँ के बाद ....
राजू : अंबर हब्शी टाँग न अड़ाता तो ....
(कतार में से एक औरत गुस्से में तनतनाती आगे बढ़आती है)
औरत : *(राजू से)* दबीर खाँ के बाद, हरामी के पिल्ले, क्या बोला ....
अंबर : सईदा!
सईदा : *(राजू की तरफ सख्त नजर से देखती हुई)* तूने मेरे खाविंद दबीर खाँ का कत्ल किया था न?
अंबर : दबीर खाँ का कातिल राजू?
राजू : *(घबराया-सा)* नहीं -
सईदा : अंबर, यही है वह कातिल।
राजू : न, न..... *(तेज-तेज चलने लगता है। एक जगह रूकता है)*
सईदा : तू ही है, वही दाढ़ी .....।
राजू : तुम्हें वहम हुआ है। दाढ़ी न देख, मेरा मुंडा हुआ सिर देख।
(सिर आगे कर देता है)।
सईदा : *(आगे बढ़कर उसका सिर जकड़ लेती है।)* वही शक्ल! अंबर, कत्ल के बाद मैंने इसे भागते देखा था....
राजू : मैं नहीं था (झटके से सिर छुड़ा लेता है और सरपट भागता है। मंसूर और सईदा उसका पीछा करते हैं और तीनों ओझल हो जाते हैं)
(चारों तरफ अँधेरा! प्रकाश केवल अंबर पर)
अंबर : बचपन से जवानी तक - गुलाम होने के दर्द की लंबी दास्तां और उस दर्द के साथ लिपटी मिट्टी की खुशबू, ह्वेल मछली की गंध जिस से नाम मिला अंबर *(इस बीच मंसूर एक तरफ आ कर खड़ा हो जाता है)* प्रकाश में दृश्यांकन : गुलामों की मण्डी-खरीद फरोख्त.... हाँ, मैं ही हूँ। आठ-नौ साल का वह लड़का जिसे बेचा जा रहा है। कोडे मार-मार कर लड़के की चमड़ी उधेड़ी जा रही है। देख रहे हो न - रफ्तार में दौड़ते घोड़े के खुरों तले कुचले जाने की उस की बदहाली-बदहवासी। सुनो, जरा-उसकी चीखें और मालिकों का अट्टहास, हथोड़ों की लगातार चोटों से स्याह बाजुओं का आग से लाल होते जाना।
(चीख और अट्टहास की मिली-जुली ध्वनियों के साथ ड्रम बीट्स)
(प्रकाश दृश्य का लोप। मंसूर करीब आ जाता है।)
मंसूर : अंबर! पुरानी यादों के भंवर में कहाँ फंस गए हो? इनसे बाहर आओ।
अंबर : कैसे बाहर आऊँ! ये यादें मेरे अंदर इस्पाती परतों की तरह बिछी हुई हैं।
मंसूर : ओ वह दबीर खाँ ?
अंबर : क्या अजीम शक्स था - गुलाम से वजीरेआजम तक एक लम्बा सफर ..... मेरा मालिक, मेरा मुर्शिद, मेरा दोस्त। गुलाम के तौर पर मुझे खरीदा, मगर गुलामी की जेहनीयत से हमेशा के लिए उबार दिया - आजाद फ्रिजा में। उसी ने कहा आजाद हो जा और मैं आजाद हो गया।
मंसूर : वही था जिसने हमें जंग के नए ढंग सिखाए।
अंबर : ओह, उसके कत्ल की घिनौनी साजिश। सईदा को जब उस कत्ल की याद आती है तो वह आपा खो बैठती है।
मंसूर : छोड़, जानते हो जहाँगीर हमारे गोलों की चमक से चकरा गया है और बौखलाया-सा पागल भैंसे की तरह डोल रहा है।
अंबर : पागल भैंसा! तुम्हें याद है मंसूर, बचपन का वो वाक्या - एक बार हम घने जंगल में भटक गये थे। एक किले की सीधी पथरीली ऊँची दीवार। हम एक भारी चट्टान की ओट में खड़े हो गए थे। ऊपर से पानी झरने की मानिन्द गिर रहा था। (झरने की ध्वनियाँ। मंच पर घुप्प अँधेरा। रोशनी सिर्फ अंबर और मंसूर पर) याद है, तभी हमने दो शेरों की दहाड़ सुनी और चिंघाड़ता हुआ एक जंगली भैंसा। अचानक शेर भैंसे पर झपट पड़े और .....
मंसूर : और भैंसा शेरों को रौंद रहा था।
अंबर : और पलक झपकते शेरों ने भैंसे को धर दबोचा .... और वह मंजर मेरी हड्डी-हड्डी में रच-बस गया। जानते हो वो शेर और भैंसा मेरे अंदर हू-ब-हू उतर गए। जहाँगीर की फौजें तबाही मचाती, फसलें कुचलती, धड़धड़ाती आती हैं तो मुझे लगता है जहाँगीर ही वह भैंसा है जो दाँत गाड़ने को है उस टुकड़े पर जो हम सब का है। मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। *(फेड आउट)*
(सईदा का प्रवेश)
सईदा : अभी अंबर यहाँ था। कहाँ चला गया? पारे की तरह लुढ़कता रहता है - कभी-यहाँ, कभी वहाँ। मैं भी क्या-क्या करूँ! कहाँ कहाँ मरूँ? घर-बार के जाल-जंजाल, इसकी, उसकी जरूरतें-फरमाइशें पूरी करते-करते जान निकल आती है, ऊपर ते 'अंबर', 'अंबर' चिल्लाते लोग वक्त-बेवक्त दौड़े आते हैं। *(तीखी हँसी - धीरे-धीरे दर्शकों की तरफ मुड़ती जाती है।)* हब्शी यानी गुलाम, औरत यानी गुलाम, ऊपर से मजहब और फिरके के फंदे। (बदले हुए स्वर में) दबीर के कातिलों को अंबर ने चुन-चुन कर मारा था। मैं उसकी न हो जाती तो क्या बच पाती? क्या है वह? दो पत्थरों के रगड़े जाने से पैदा हुई? चिंगारी! क्या इसी का नाम प्यार है जो मेरी रगो में अंबर के लिए दौड़ता है। उसको याद करते हुए तरोताजा महसूस करती हूँ। मगर यादों का पिछड़ा पहाड़ा क्या झटक दूँ? नहीं, नहीं ..... *(जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, पीछे अँधेरा होता जाता है और आगे प्रकाश। वह देखती है अंबर किसी धुन में खोया है)*
गायन मंडली : बहुत कठिन है डगर पनघट की .....
सईदा : *(उसे झकझोरती हुई) किस दुनिया में खोए हो? (सहमी-सी)* अंबर, क्या है वह जो मुझे दिखता नहीं है मगर डराता रहता है। इधर से उधर से कई साये मुझे नोचते रहते हैं। अंबर : डर नहीं, सईदा, डर के साये अंदर से बाहर आते हैं और हमें डराते हैं।
(अंबर उसकी आँखों में देखता हुआ)
तुम हो तो घर है। एक घर मेरे अंदर एक घर. मेरे बाहर सईदा : हाँ, तुम्हारी आँखों में मेरा बेखौफ घर .... किसी की नजर न लग जाए।
अंबर : किस की? मैं उस की आँखें फोड़ दूँगा। सईदा, मुझे इस घर से प्यार हो गया है।
सईदा : मुझ से भी ज्यादा ...
अंबर : तुम्हें प्यार करता हूँ पर तुम्हारे लिए शायद मर नहीं सकता जब कि देश के लिए सौ बार मर सकता हूँ।
(आवेश में आगे बढ़सईदा को सीने से लगा लेता है) सईदा : *(अचानक उससे कुछ पूछते हुए)* क्यों न अपने वतन इथोपिया अपने गाँव अलहर्रा लौट चले।
अंबर : नहीं।
सईदा : क्यों नहीं?
अंबर : वहाँ क्या रखा है?
सईदा : यहाँ कौन है?
अंबर : वहाँ कौन है? वहाँ जान लेने वाले हैं, हमारी जमीन से हमें बेदखल करने वाले। यहाँ जान देने वाले हैं।
सईदा : जो भी कहो, अपना वतन अपना ही है।
अंबर : सईदा, मेरे लिए वतन नई-नई रंगतों में आता रहा है। पैदाइश का वतन यहाँ आकर मेरे लिए कब एहसास के वतन में बदल गया, मुझे पता ही न चला।
सईदा : सोच तो, यहाँ के लोगों की खोपड़ी उलट गयी तो कहलाओगे गद्दार और उधेड़ देंगे चमड़ी अलग से।
अंबर : 'उधेड़ देंगे चमड़ी' कहता जोर से हँसता है। अपनी आजादी के साथ मैंने सब की आजादी को अपने रग-रेशे में महसूस दिया है। अपने अंदर दुबके गुलाम को, यहाँ आकर मैंने पछाड़ा है। गुलामी के अँधेरे से मैं कैसे आजादी की रोशनी में आया हूँ, इसे तुमसे बढ़कर और कौन जानता है। आग की हजारों लपटों की तरह आजादी मेरे सीने में धधकती है। क्या चाहते हैं यहाँ के लोग? अपनी तरह से जीना और अपने होने को महसूस करना। तुम मानो, न मानो, अब मेरा जीना, मेरा होना इनके जीने-होने के साथ जुड़ गया है। मुगल हो या कोई और, यहाँ के लोगों को कुचलने के लिए जो भी बढ़ेगा, मेरे हाथों मारा जाएगा। *(उसकी एक-एक रग काँपती नजर आती है।)*
(तभी मंसूर और याकूब खां का प्रवेश)
मंसूर : मुगल फौजे तेजी से किले की तरफ बढ़रही हैं। अंबर : लाम-लश्कर किस की कमान में है?
मंसूर : अबुल रहीम खानखाना की कमान में। सीधी और सामने की लड़ाई में उस का कोई सानी नहीं।
अंबर : *(हँसता है)* हम उसकी नहीं, अपनी जंगी चाल से लड़ेंगे (सख्त स्वर में) इससे पहले कि वह हमला करें हम हल्ला बोलेंगे। याकूब, लखू जी, शाह जी और फतेह खाँ को फौरन इत्तिला कर दो ....।
याकूब : जो हुक्म।
(चला जाता है)
अंबर : इस बार हम वो जंग लड़ेंगे जो मुगलों ने कभी न देखी होगी - चीते सी फुर्तीली अपनी जंग - देख रहे हो न मंसूर, सामने फैली पहाड़ियाँ, इन पर हम अपने घोड़े दौड़ाएंगे और मुगलों को घेर-घेर कर मारेंगे।
(लखू जी, शाह जी, फतेह खाँ के साथ याकूब का प्रवेश) *(चारों से)* जब देखो, मुगल हम पर चढ़े आते हैं। हमें यह मंजूर नहीं। इस बार हम उन्हें पहले घेरेंगे।
जाधव किले की हिफाजत तुम्हारे जिम्मे। शाह जी, तुम और तुम्हारे घुड़सवार पहाड़ियों पर मेरे साथ तैनात रहेंगे। फतेह, तुम दायें से, याकूब तुम बायें से मुगलों को खदेड़ते हुए पहाड़ियों की तरफ आओगे। मंसूर, मौका देख तुम आगे से बारूदी गोले दागोगे।
(युद्ध संगीत) मोर्चेबंदी ठीक वैसी जैसी ऊपर बताई गई है। अचानक हमले से मुगल फौजें तितर-बितर होने लगती हैं और पहाड़ियों की तरफ भागती है। पहाड़ियों से अंबर और जाधव घुड़सवार सैनिकों के साथ उन पर टूट पड़ते हैं। मंसूर आगे से गोले बरसाने लगता है। *(भौंचक्का-सा खानखाना और उसकी फौजें भागती दिखती हैं।)*
(युद्ध का दृश्यांकन मार्शल-आर्ट की शैली में।)
गायन मण्डली /भाग गयी मुगलों की सेना/भाग गया सेनापति अंबर की सेना के आगे/टिक न सका कोई/आगे से मंसूर के गोले /पीछे से याकूब के भाले/दायें से अंबर के छापे/बायें से जाधव के घोड़े/पिचक गयी मुगलों की सेना/बची-खुची सो भाग गयी/भाग गयी मुगलों की सेना/भाग गया सेनापति/हड़कंप मचा मुगलिया फौजों में/दहल उठा जहाँगीर/बौखलाया-सा चीख पड़ा वह/- 'अंबर फतेह करो'/अंबर आगे, अंबर पीछे/अंबर दायें, अंबर बायें/ देख-देखकर, डरी-डरी सी/भाग गयी मुगलों की सेना/भाग गया सेनापति -
(फेड आउट)

दृश्य : दो

(दौलताबाद का किला : महल अंबरी कोट)
सईदा : अंबर ठीक कहता है पर मैं क्या करूँ? डर की कई परतें मेरे अंदर इस तरह चिपकी है कि हिलती ही नहीं। डर से काँप-काँप जाती हूँ जब कि डरने की कोई खास वजह नहीं है। *(हमीदा का प्रवेश एक तरफ आकर खड़ी हो जाती है।)* खुद को मिटते हुए जीना। ओह! कैसे मैंने एक एक इंच कटते हुए, चुप-चुप अपनी ओट देकर बच्चों को पाला-पोसा, मैं ही जानती हूँ! लड़कियाँ हैं कि आपदा की पुड़ियाँ। यहाँ से वहाँ और वहाँ से पता नहीं कहाँ-कहाँ फुदकती-उड़ती रहती हैं और वह नामाकूल फतेह खाँ का बच्चा सुबह-सुबह घर से निकलता है और रात को आ टपकता है। और एक हमारे खाविंद है, एक पैर घर में, दूसरा दरबार में, तीसरा खुल्ताबाद सूफियों के डेरे पर। हर वक्त किसी न किसी खब्त में मुब्तिला। *(हमीदा आगे बढ़आती है)*
हमीदा : क्या हुआ, अम्मी।
सईदा : होना क्या है? तू कहाँ मरी बैठी थी?
हमीदा : मरी कहाँ बैठी थी, मैं तो उड़ रही थी .... ऐसे *(दोनों हाथ फैलाए उड़ने की मुद्रा में)*

सईदा : *(उसकी नकल करती हुई उड़ रही थी।)* तुझे कहाँ-कहाँ नहीं ढूँढ़ा?

हमीदा : बच्ची नहीं हूँ *(उसके गले में बांहें डाल देती है)* अलस्सुबह एक सपना देखा माँ....

सईदा : ज्यादा सपने न देखा कर।

हमीदा : क्यों माँ?

सईदा : पूरे न हों तो तकलीफ देते हैं।

हमीदा : अम्मीजान, सुन तो, मैं तालाब के करीब पहुँची ही थी कि एक छैला नौजवान सुलतान घोड़ा दौड़ाता, मुस्कराता मेरी तरफ बढ़ा।

सईदा : पगली, सुलतान तो बूढ़ा है, नौजवान कहाँ से मिल गया?

हमीदा : *(उसकी तरफ ध्यान न देती हुई सपने की रौ में झूमती हुई पूरे मंच को घेर लेती है)* मैं उसे देखती रह गयी। उसने मेरा हाथ पकड़ा और मैं उड़ने लगी।

सईदा : सपने में ऐसा ही होता है।

हमीदा : उसने मेरी आँखों में आँखें डालते हुए कहा, ''मुझ से शादी करोगी?''

सईदा : और ....

हमीदा : और मैंने हामी भर दी।

सईदा : अच्छा ऽ ऽ ऽ

हमीदा : अब क्या होगा?

सईदा : होना क्या है - सपना था, भूल जा।

हमीदा : कैसे भूल जाऊँ? मैं वचन दे चुकी हूँ।

सईदा : अरी, बूढ़े सुलतान से शादी करेगी?

हमीदा : *(झूमती हुई)* न न न .... मैंने नौजवान सुलतान से वादा किया है। अम्मीजान, पता कर न, आसपास जरूर कोई होगा।

सईदा : *(हँसती रहती है)*

हमीदा : हँस ले, शादी करूँगी तो सुलतान से, नहीं तो कुँवारी रहूँगी, देख लेना। मेरी दो बड़ी बहनें तुमने ऊँचे खानदानों में ब्याह दी। मेरे सामने वे क्या थीं? *(इतराती और सुर-लय-ताल में झूमती हुई)* है कोई मेरे बराबर? देखना मैं भी यों फुर्र। *(सईदा के होठों पर मुस्कराहट फैली रहती है। जैसे वह हमीदा की एक-एक हरकत का मजा ले रही हो।)*

हमीदा : *(बिंदासपन से)* हँस ले, माँ। यों तो एक से एक अमीर, वजीर हैं, मगर माँ सुलतान की आन, बान और शान - *(झूमने लगती है)* सुलताना बनूंगी माँ। ब्याह करूँगी तो सुलतान से। लो, मैं चली, मैं चली ....

सईदा : कहाँ चली?

हमींदा : घुड़सवारी के लिए। *(चली जाती है)*

सईदा : पागल लड़की। जो ठान ले, वही करती है। *(झल्ला कर)* पूरी बाप पर गयी है - निडर, सपने बुनने वाली, मगर बाप जैसा सब्र नहीं।

(एक तरफ पड़े संदूक पर नजर पड़ती है)

संदूक। यह कहाँ से आया? *(ध्यान से देखती है)* लक्कड़ का संदूक। *(उठाती है)* कितना अलग, कितना उम्दा! इसे कौन लाया होगा?

(फतेह खाँ का प्रवेश। मस्ती में कोई धुन गुनगुना रहा है)

सईदा : बड़ी हवा में है।

फतेह : अम्मी, क्या समझती हो? मुझे फौज की एक टुकड़ी का सिपहसालार बना दिया गया है।

सईदा : वाह रे!

फतेह : *(खुशी से)* सिपहसालार मंसूर ने मुझे तीरअंदाजी और तलवारबाजी के सारे गुर सिखा दिए। *(अकड़ता हुआ)* आज मैं चोटी पर हूँ और जीत मेरे कदमों में।

(सन्दूक की तरफ नजर जाती है) यह संदूक?

सईदा : क्या तू लाया है?

फतेह : *(सन्दूक को चारों तरफ से देखता हुआ)* कौन लाया होगा? *(अचानक जैसे ध्यान आया हो)* कल यह अब्बू के हाथ में था।

सईदा : अब्बू के हाथ में! क्यों ?

फतेह : *(कंधे उचकाता हुआ)* मैं क्या जानूं?

(चला जाता है)

सईदा : कोई तो राज होगा? कहाँ होगा, अंबर? सुबह निकल जाता है तो घर की तरफ रूख ही नहीं करता।

(अंबर का प्रवेश)

सईदा : कहाँ खोए हो?

अंबर : सपने में।

सईदा : सच सच बताओ?

अंबर : सच यह है कि मैं घुमावदार सीढ़ियों से नीचे गिरा था और माँ चीखने लगी थी और अब्बू सन्न! मौत के पंजे से छूटना क्या होता है मैंने उस दिन जाना था। मौत का यह एहसास कुछ लम्हों के लिए मेरे सामने अटका रहा और मैं यादों में गुम हो गया। खुद से अलग एक बेखुदी है जो मुझे चैन नहीं लेने देती और बेचैनी के आलम में माँ का चेहरा बार-बार कौंधता है। *(संदूक पर नजर पड़ती है)* ओह! जल की खोज में ऐसा डूबा कि संदूक को भूल ही गया।

(संदूक को ऐसे छूता है जैसे उसे महसूस कर रहा हो)

सईदा : लकड़ी का यह संदूक?

अंबर : ओहो। तुम्हें बताना ही भूल गया।

सईदा : क्या?

अंबर : यह संदूक अम्मीजान के लिए लाया हूँ ...।

सईदा : अम्मी के लिए?

अंबर : लकड़ी के ऐसे संदूक के लिए अम्मी को बुरी तरह पीटा गया था।

सईदा : ओह!

(प्रकाश अंबर पर)

(याद करता हुआ) खेत थे, पानी न था - खेती सूख गयी हम दाने-दाने को तरस गए। अम्मी मजबूर हो गयी एक अमीर मौलवी के घर काम करने के लिए। उस दिन मैं अम्मी के साथ था। कमरे में लकड़ी का एक संदूक पड़ा था। इतना खूबसूरत संदूक मैंने पहली बार देखा था। अम्मी को दिखाया। वह देखती रह गयी। मैंने उसे छुआ, माँ ने भी। तभी मालकिन दनदनाती आ गयी।

उसने आव देखा न ताव, लगी अम्मी पर बेंत बरसाने - तूने संदूक को छुआ क्यों और कई बेंत मुझ पर भी जड़ दिये। अम्मी मार सहती रही। मैं उस चुड़ैल मालकिन को ठोकर मार घर भाग आया। एक जख्म-सा बन गया मेरे दिल में और कुछ दिन बाद जख्म ने लकड़ी के संदूक की जगह ले ली।

(प्रकाश पूरे मंच पर फैल जाता है।)

अंबर : आज भी अम्मी की डबडबाई आँखें मेरा पीछा करती है और उसकी आवाज सुनाई देती है, 'मिलने जरूर आना' और मैं इस महल से अलहर्रा के टूटे-फूटे मकान में अम्मी के पास पहुँच जाता हूँ। *(एक पल रूक कर)* सईदा, मैं जहाँ भी जाता हूँ, मुझे लगता है, मजहब से ऊँची होती है, माँ!

सईदा : उसके जरिए तुम खुद को खोजते रहे हो। जरा सोचो, माँ की यादों से जुड़ा संदूक उसके पास कैसे पहुँचे? *(.एलची का प्रवेश। अंबर को एक पत्र देता है और चला जाता है)*

सईदा : किसका है?

अंबर : सईदा, सोचा था संदूक माँ को दूँगा तो वह कितना खुश होंगी।

सईदा : *(चिंतित)* क्या हुआ?

अंबर : *(संदूक को खोल एक-एक चीज को देखता हुआ)* यह गाउन, यह चादर, ये लंबी झालरदार कमीजें अब किसको दूँगा? सईदा, माँ नहीं रही।

(संदूक को गोद में रख फूट-फूट कर रोने लगता है।)

(अंधेरा)

दृश्य : तीन

(स्थान : दौलताबाद का किला)

(राजसिंहासन पर एक तरफ सुलतान लुढ़का पड़ा है, दूसरी तरफ उसके बहुत करीब बैठा राजू दक्कनी धीरे-धीरे कुछ फुसफुसा रहा है।)

सुलतान : क्या? क्या कह रहे हो?

राजू : सुलतान, काम की बात ऐसे ही की जाती है।

सुलतान : क्या कहा, ऊँचा बोलो।

राजू : *(अपने से)* बहरा कहीं का? *(प्रकट)* सुलतान, यह राग दरबारी है जिसे मैं गुनगुना रहा हूँ।

सुलतान : गुनगुना रहे हो कि बड़बड़ा रहे हो?

राजू : सुलतान, राज की बातें ऐसे ही गुपचुप धीमे-धीमे इशारों में होती हैं। मलिक अंबर ने कई टट्टू वजीर और टटपूंजिए सरदार आपके पीछे लगा रखे हैं जो उसे आपकी एक-एक हरकत की खबर देते रहते हैं।

सुलतान : (भौंडी तरह से हँसता हुआ) हो हो हो *(दूसरे पल डरा हुआ)* एक-एक हरकत! *(ठिठक कर)* तुम मेरे वफादार सिपहसालार हो न?

राजू : क्यों नहीं, क्यों नहीं, लेकिन जिस किले पर मेरा हक .....

सुलतान : *(सख्त स्वर में)* हक! जानता नहीं, पूरी निजामशाही मेरे नाम पर चलती है।

राजू : आपके नाम पर लेकिन राज्य संचालन का हक यानी वजीरे सल्तनत का ओहदा आपने अंबर हब्शी को दे दिया।

सुलतान : तो क्या तरकश की जगह ढोलक बाँधे रखने वाले तेरे जैसे मसखरे को दे देता?

राजू : *(ढोलक पर थाप देता हुआ)* सावधान सुलतान, देख मेरा तरकश तीरों और औजारों का जखीरा असलहा।

सुल्तान : *(सोचता हुआ यह मेरे काम आ सकता है)*

राजू : एक हाथ से ढोलक बजाता हूँ, दूसरे से *(एक-एक औजार निकाल कर दिखाता है।)* (तेजी से छूरा निकाल लेता है) दुश्मन का काम तमाम कर देता हूँ।

सुलतान : बस, बस, अंदर ही रख। तू चाहता क्या है?

राजू : अपने लिए कुछ नहीं, आपके लिए जान हाजिर है। सिपहसालार के तौर पर पूरे दक्कन में मेरी धाक है। मलिक अंबर क्या है? आपका हाथ उसकी पीठ पर न हो तो यों मसल कर रख दूँ और एक वो हब्शी का बच्चा आपके खिलाफ बोलता रहता है।

सुलतान : क्या, क्या?

राजू : कहता है सुलतान अंधा है, उसकी आँखें मैं हूँ।

सुलतान : नहीं, वह ऐसा नहीं कह सकता।

राजू : *(धूर्तता से मुस्कराता हुआ)* सुलतान लंगड़ा है, उसके पैर मैं हूँ।

सुलतान : नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता *(अपने पैर सहलाने लगता है)*

राजू : कहता है जिसे मैंने सुलतान के तौर पर सजाया-संवारा और हीरों जडे तख्त पर बिठाया, वह मेरे खिलाफ जुबान चलाए, मैं उसकी जीभ काट लूंगा।

सुलतान : *(हकलाता हुआ)* हब्शी की यह मजाल? और क्या कहा? और क्या कहा?

राजू : मेरी जुबान न खुलवाओ।

सुलतान : तुम्हें किसका डर है। बेखौफ कहो। *(सोचता हुआ)* मलिक अंबर के खिलाफ मेरा साथ दोगे।

राजू : मुझे क्या दोगे?

सुलतान : यह किला मैं तुम्हें बख्शीस में देता हूँ।

राजू : *(अपने से)* चूजा कहीं का। मुझे बख्शीस देगा।

सुलतान : *(उसे चुप देख)* उसके बराबर का खिताब।

राजू : बराबर का खिताब हं ... पूरा ठाठ बाट, राज-पाट, पूरी सल्तनत मेरी होगी।

सुलतान : और मैं ....?

राजू : आप मालिक। आप सुलतान। आपके नाम पर चलेगी हकूमत ...

सुलतान : *(उसकी तरफ देखता रहता है)*

राजू : पूरे दक्कन में सुलतान का सिक्का चलेगा।

सुलतान : और मुगल?

राजू : उन्हें धूल चटा दूँगा।

सुलतान : और मलिक अंबर?

राजू : उसे ऐसा मारूंगा कि ...

(दोनों एक-दूसरे की आँखों में देखते है। तभी एक तरफ से मलिक अंबर, मंसूर, फतेह खाँ, दूसरी तरफ से शाहजी भोंसले, लखू जी जाधव तथा अन्य सरदार प्रवेश करते हैं।)

सुलतान सहमा-सा सीधा होकर बैठ जाता है। मलिक अंबर सुलतान के दायीं तरफ अपने आसन पर और अन्य सभी वजीर, सिपहसालार अपने नियत आसनों पर बैठ जाते हैं।

सुलतान : *(बुलंद आवाज में)* आप सबको इतिला दी जाती है कि दक्कन के सुलतानों से सलाह-मशविरा करने के लिए और मुगल सल्तनत के नुमांइदों और सिपहसालारों से बातचीत करने के लिए आज से राजू दक्कनी हमारा अहम नुमांइदा मुकर्रर किया जाता है।जंग हो या अमन, आज से वहीं हमारा वजीरेआजम होगा। *(राजू झुककर तसलीम करता है। कुछ पलों के लिए दरबार में सन्नाटा पसर जाता है)*

शाहजी भोंसले : सुलतान, क्या मैं पूछ सकता हूँ कि यह अहम फैसला लेने से

पहले दरबार को विश्वास में लिया गया कि नहीं।
राजू : सुलतान से जवाब-तलब करने वाले तुम कौन हो?
शाहजी भौंसले : तुम कौन हो मुझ से जवाब-तलब करने वाले? सुलतान, जवाब दो, हमारे वजीरेआजम मलिक अंबर के होते हुए कोई दूसरा वजीरे आजम कैसे हो सकता है?
राजू : कोई चू-चपड़ नहीं। अंबर हब्शी बाहर का मानुष है। यहाँ उसे राज करने का कोई हक नहीं है। मैं कहता हूँ ऐसे आदमी को जल्द से जल्द बाहर खदेड़ दो।
(कुछ पलों के लिए दरबार में चुप्पी पसर जाती है)
शाहजी भौंसले : भरे दरबार में ऐसी बेहूदगी। शर्म की बात है। *(उत्तेजित)* जिस मलिक अंबर को बाहर का मानुष कहा जा रहा है, क्या वही नहीं है जिसने दक्कन के सभी राज्यों को एक सूत्र में पिरोकर हमें नयी आजादी का पाठ पढ़ाया। पचास सालों से मुगलिया फौजों को दक्कन में फैलने से कौन रोक रहा है? कौन उसके खिलाफ लड़ रहा है? वही जिसे तू काला हब्शी कहता नहीं थक रहा।
राजू : हो..... हो.... हो.... अच्छा भाषण देते हो। ध्यान रहे दरबार का हर बाशिंदा शाही फरमान से बंधा है।
मंसूर : शाही फरमान पर क्या वजीरे आजम मलिक अंबर की मोहर है।
राजू : आँख फाड़कर देख, इस पर शाही मोहर है।
अंबर : मेरी मोहर के बिना यह एक गैर-कानूनी कागज है। *(सुलतान से)* किससे सलाह-मशविरा करके फरमान जारी किया गया।
राजू : *(अकड़ता हुआ)* सलाह-मशविरा किया गया।
अंबर : *(पलटकर)* किससे?
राजू : मुझ से।
(सभी वजीर, सरदार हँसते हैं)
राजू : *(अपने से)* अव्वल के चापलूस? कैसे लार टपका रहे हैं हब्शी के लिए - चुल्लू भर पानी में डूब क्यों नहीं मरते *(प्रकट)* खामोश! मैं अपने बाहुबल से कुछ भी कर सकता हूँ। *(तलवार निकाल लेता है)* वक्त की नजाकत को भाँप सुलतान ऐसा फरमान जारी कर सकता है।
(सभी सहम जाते हैं)
अंबर : तलवार को म्यान में रखो, राजू! बिना शक तुम सूझ-बूझ वाले सिपहसालार हो। हमारा सरदार सआदत खां जिस वक्त मुगलों से जा मिला, ऐन उसी वक्त तुमने उसके यानी हमारे इलाके को कब्जे में ले लिया था न?
राजू : *(तलवार को म्यान में रखता हुआ)* तुम कहना चाहते हो?
(मलिक अंबर दो कदम पीछे जाकर सुलतान के ठीक पीछे खड़ा हो जाता है।)

अंबर : तुमने ठीक कहा - वक्त की नजाकत को भाँप सुलतान कैसा भी फरमान जारी कर सकता है। *(दूसरे पल सख्ती से)* उसे वापिस भी ले सकता है। ले सकता है न?
(तलवार निकाल सुलतान के पीछे खड़ा हो जाता है।) मैं ठीक कहा रहा हूँ न, सुलतान?
(सुलतान की घिग्घी बंध जाती है। डरा हुआ वह एक पल सर पर लटकती तलवार को देखता है, दूसरे पल राजू को।)
सुलतान : हें हें हें! क्या मैंने कोई फरमान जारी किया? हें हें हें हें। नहीं किया न। तो तो तो। ऐसे ही, ऐसे ही। मलिक अंबर के होते हुए क्या कोई दूसरा वजीरे आजम हो सकता है? *(घिघियाता हुआ)* न, न, न.... *(राजू म्यान से*

तलवार निकाल आगे बढ़ता है)
अंबर : *(राजू से)* रूक जाओ, नहीं तो.....
राजू : *(मलिक अंबर से)* तुम राजद्रोही हो, कातिल हो, दहशतगर्द हो।
अंबर : *(सुलतान से)* बोल, किसकी साजिश थी?
सुलतान : *(डर से हकलाता हुआ)* रा ..... रा.... जू
राजू : मैं अपना हक लेकर रहूँगा। मैं एक-एक को देख लूंगा। किसी में हिम्मत हो तो आगे आए।
मंसूर : *(तलवार खींच कर आगे बढ़आता है)* ले, मैं आ गया।
राजू : हब्शी के बच्चे, हट जा मेरे सामने से, नहीं तो - *(तलवार खींच लेता है)*
अंबर : *(सधे कदमों से दोनों के बीच आता हुआ)* राजू, होश में आओ। तुम पूरे दरबार की तौहीन कर रहे हो, तो भी तुम्हें भागने के लिए महफूज रास्ता देता हूँ। तुमने सुलतान के साथ मिलकर वजीरे आजम के खिलाफ साजिश की है।
राजू : अरे, कहाँ के वजीरेआजम और कैसी साजिश? मुँह उठाए अफ्रीका से चले आए और मेरे हक को हड़प लिया।
शाहजी भौंसले : राजू, तुम नैतिकता और राजनीति की सारे हदें पार कर रहे हो। जान लो, समझ लो, हुकूमत का कोई रंग नहीं होता - काला न गोरा, लाल न पीला।
राजू : तुम लोग बेशर्म और बेहया हो जो उस कालू के तलवे चाटते हो। देखना, मैं इसकी काली चमड़ी में छूरे से लकीरें खींच दूँगा। *(अंबर से)* तुम हब्शी हो। बाहर के आदमी हो, विदेशी हो। मैं राजू, बाहर के किसी आदमी को इस देश पर राज नहीं करने दूँगा।
शाहजी भौंसले : क्या बकते हो? विदेशी और मलिक अंबर, यह बर्दाश्त बाहर है। जिसने खुद को इस देश का बाशिन्दा और मुगल हुक्मरान को विदेशी माना, उस इंसान पर ऐसा इल्जाम। तौबा ऽ ऽ ऽ *(शाहजी भोंसले, लखूजी जाधव, मंसूर और फतेह खाँ राजू को घेरने लगते हैं।)*
अंबर : *(अपनी पीठ पीछे के रास्ते की तरफ इशारा करता हुआ राजू से)* चुपचाप इधर से भाग जा, नहीं तो, तेरी बोटी भी नहीं दिखेगी।
राजू : *(भागता हुआ)* कालू, हब्शी, गद्दार, मैं तुझे देख लूंगा, देख लूंगा। तुझे चैन से नहीं बैठने दूँगा, नहीं बैठने दूँगा। *(अंधेरा)*

दृश्य : चार

(दौलताबाद का किला महल - अंबरी कोट)
अंबर : *(अपने से)* खड़की से लौट आया हूँ/ अपने ही शहर से जलावतनी का

दर्द लिए/तड़पता हुआ/जैसे कोई शमशान घाट से लौटा हो। मासूम लोगों की कत्लगाह बना शहर। जिंदा रहने के लिए जंग का मतलब हो सकता है मगर एक जिंदा शहर की चार-फाड़, लूट-पाट .... मासूम लोगों का कत्लेआम। 'क्यों तगाफुल मुझसे अय अब्रे करम बहरे सखा' मैं ही क्यों महरूम तेरे फैजे आलमगीर से। क्या सब खत्म? कुछ नहीं कर सकूँगा क्या?
(सईदा का प्रवेश)
सईदा : क्यों नहीं कर सकोगे? तुम्हारे हाथों में जादू है। कहाँ है तुम्हारी जादुई छड़ी? *(इधर-उधर देखती हुई)* लो यह रही। *(छड़ी अंबर के हाथ में देती है)* क्या मुगल कुछ बिगाड़ सके। कुछ नहीं। बरबादी जरूर मचा गए, लेकिन क्या एक टुकड़ा जमीं पर हक जमा सके। नहीं .... फसलें जरूर बरबाद हुई लेकिन किसान तुम्हारी तरफ उम्मीद में ताक रहे हैं। फिर से संवारो अपने शहर को, घर को। मैं तुम्हें और तुम्हारे सपने को इस तरह टूटता नहीं देख सकती।
अंबर : *(धीरे धीरे छड़ी घुमाता हुआ, मजबूती से)* तू साथ है तो न सपना टूटने दूँगा, न किसान को गिरने दूँगा। खड़की को दोबारा खड़ा करूँगा और किसान को भी ....
सईदा : और गद्दारों को बख्शोगे नहीं। राजू को भी नहीं। उन्हें चुन-चुन कर निशाना बनाओ। हर आम और खास तुम्हारी राह देख रहा है।
अंबर : ठीक कहती हो। फौज को नये सिरे से नये हथियारों से लैस करूँगा और नाउम्मीदी में पड़े हुए लोगों को रोशन मीनारों की तरफ ले जाऊँगा। सल्तनत की आन, बान और शान .... *(फतेह का प्रवेश)*
फतेह : किस आन, बान और शान की बात करते हो, अब्बा! खड़की की शिकस्त के बाद क्या बचा है?
अंबर : एक शिकस्त से घबरा गए और सल्तनत पर तंज करने लगे। तुम्हें शर्म आनी चाहिए कि तुम जंग में भी अपनी ओछी हरकतों से बाज न आए।
फतेह : अब्बा!
अंबर : शाहजी को नीचा दिखाने के लिए, उसे और उसकी फौजों को किसने पहाड़ी पर अटकाए रखा। यकीनन तुमने। तुम इस कदर गिर सकते हो, मैंने सोचा न था।
फतेह : अब्बा!
अंबर : मालोजी भौंसले का कातिल राजू तेरा राजदार हो गया? और उसने हमारे सारे भेद मुगलों के सामने परोस दिये।
फतेह : अब्बा!
अंबर : जिस हाल में हम पहुँच गए हैं, उसमें तुम क्या करोगे, बोलो?
फतेह : मैं, मैं, मैं.....
अंबर : क्या मैं, मैं, मैं कर रहे हो?, तुम हमारे होनहार सिपहसालार हो। हो न?
फतेह : हाँ, हाँ ....
सईदा :पता नहीं हालात, कब क्या करवट ले लें?
फतेह : हाँ, राजू का सिर फिर गया तो?
सईदा : तो?
फतेह : *(हेकड़ी में)* अब्बा, इजाजत हो तो मैं उसे पकड़ कर आपके सामने हाजिर कर दूं।
अंबर : कर सकोगे? बिजली की चमक जैसी रफ्तार-सा वह यों चकमा देता है कि पता ही नहीं चलता। उसे सुलतान की भी शह है।
सईदा : इस मिट्टी की औलाद और ये कारनामे -
फतेह : राजू और सुलतान क्या अजब जोड़ है। इससे पहले कि राजू अपनी किसी चाल में सुलतान को फाँसे, क्यों न हम सुलतान को अपने पाले में ले आएँ?
सईदा : तुम्हारे बाप के इशारे पर घूमने वाले उस लट्टू को?
फतेह : मैंने सुलतान को गुस्से में पागल होते देखा है।
अंबर : घबराओ नहीं, उस दिन का इंतजार करो जब वह पूरा पागल हो जाए। सुलतान हो या राजू, पागलों को ठिकाने लगाना मुझे आता है। *(चला जाता है।)*
फतेह : हुंह! इस से न मिलो, उससे न मिलो। क्या समझ रखा है मुझे। मैं किसी का गुलाम नहीं हूँ।
सईदा : अरे मरदूद, तुझे गुलामी के हिज्जे भी मालूम हैं। जानता है गुलामी को जलाता-झुलसाता रेतीला बवंडर पीठ पर उठाए तेरे अब्बू हमें किस अँधेरे से बाहर लाए?
फतेह : और इस बवंडर में मैं तिनके-सा उड़ता रहा, मैं आजाद होना चाहता हूँ ...
सईदा : *(विद्रूपता से हँसती हुई)* कभी राजू के बहकावे में, कभी सुलतान के - तू आजाद होगा ...
फतेह : मैं उन्हें काटने के लिए क्यों दौड़ू?
सईदा : नहीं, जब वो तेरे बाप को गाली दें तो उन्हें गले लगा।
फतेह : *(चुप)*
सईदा : यही है न जो तुझे काले-कलूटे हब्शी बाप का बेटा कहकर तुम्हें तेरी नजरों में गिराता है और तू गूंगा बना सुनता रहता है?
फतेह : किस-किस से लड़ूँ, अम्मी? हब्शी तो हब्शी ही है न।
सईदा : नहीं जानता क्या, तेरे बाप ने हब्शी होने की जिल्लत को कैसे एक ताकत में बदला? स्याह चमडी में कैसे उसने आग सुलगा दी?
फतेह : हं, आग! *(क्रोध में फुँफकारने लगता है)* और हमारी हड्डियों में धुआँ भर दिया ....
सईदा : धुआँ?
फतेह : हाँ, धुआँ जो मेरी रगों में घुस गया है। मेरी सांस फूल रही है। क्या मैं खाँस-खाँस कर दम तोड़ दूँ? नहीं नहीं, राजू और सुलतान मेरे लिए सहारा बने हैं। उन्होंने जहाँगीर तक मेरा नाम पहुँचाया है।
सईदा : *(व्यंग्य से)* वाह मेरे लाड़ले, वाह! अपने साथ मेरा नाम खूब रोशन कर रहे हो। जहाँगीर तक मेरे सपूत का नाम पहुँच गया।
फतेह : *(झेंपता हुआ)* क्या मैं कुछ गलत कह गया?
सईदा : तू गलत क्यों कहेगा, मेरे लाल? गलत तो मेरी खोपड़ी है जिसमें तेरी बात घुसती ही नहीं। राजू की चील-सी निगाहें तेरे बाप के तख्त पर टिकी हैं और वह तुम्हें और सुलतान को मलिक अंबर के खिलाफ मोहरा बना रहा है।

फतेह : मुझे कोसने के सिवा क्या तुम लोगों को कोई काम नहीं है? अब्बा ने हमीदा का निकाह सुलतान से किया तो किसने किसको मोहरा बनाया, बता - अब्बा ने सुलतान को या सुलतान ने अब्बा को?
सईदा : हमीदा और सुलतान बीच में कहाँ से आ गए?
फतेह : *(अपनी ही रौ में)* हमीदा की बच्ची - सुलतान की बेगम। खुद को बड़ी सुलताना समझती है।
सईदा : बड़ी हो या छोटी, सुलताना तो वह है ही।
फतेह : तभी तो उसका दिमाग सातवें आसमान पर है। एक अब्बा और एक हमीदा, बस ये दो अपनी तरह के निराले जीव हैं।
(कठोर हँसी हँसता है)
माँ, तुम पर तरस आता है। दोनों को एक साथ कैसे बर्दाश्त करती

हो?
(हमीदा का हाँफते हुए प्रवेश)
हमीदा : *(हाँफते हुई)* बस, माँ, बस।
सईदा : हाँफ क्यों रही हो? *(सईदा देखती है हमीदा को सांस लेने में दिक्कत हो रही है)* मेरी बेटी बता, किससे डरी हुई है?
हमीदा : डरी हुई नहीं, तंग आ गयी हूँ।
सईदा : किससे?
हमीदा : जिल्लत भरी जिंदगी से। *(धीरे-धीरे सांस सामान्य होती है)*
फतेह : *(अपने से)* आ गई आफत!
हमीदा : (फतेह पर नजर पड़ती है, व्यंग्य से) ओह! मेरे प्यारे भाई और सुलतान के सबसे बड़े खैरख्वाह! है न भाईजान?
फतेह : *(झेंपता हुआ)* हें हें हें.... मैं .... को बता रहा था.....
हमीदा : *(तीखी नजर से उसे देखती हुई)* क्या बता रहा था?
फतेह : सुलतान की हवस बढ़गई है।
हमीदा : हवस?
फतेह : हकूमत की बागडोर अपने हाथ में लेने की हवस।
हमींदा : ओहो!
फतेह : वह अंधा हो गया है। कुछ भी कर सकता है।
सईदा : *(बनती हुई)* क्या सचमुच?
हमीदा : क्या कर सकता है? वह उल्लू का पट्ठा और तू उस पट्ठे का पट्ठा।
सईदा : हमीदा। *(आश्चर्य से उसकी तरफ देखती है)*
फतेह : माँ, इसे रोक।
सईदा : नहीं तो?
फतेह : नहीं तो.....
हमीदा : तू सुल्तान का कुत्ता ....।
फतेह : *(तिलमिलाता हुआ सईदा से)* इसे रोक, नहीं तो मैं इसकी बोटी-बोटी ....
सईदा : तमीज से पेश आ। यह सुलतान की बीवी है जिसकी चौखट पर तू रोज नाक रगड़ने जाता है।
फतेह : बीवी! *(विद्रूपता से हँसता है)*
सईदा : क्या कहना चाहते हो?
फतेह : पूछ इससे, सुलतान की बीवी है या रखैल! *(एकदम से चला जाता है। कुछ क्षणों तक सन्नाटा पसरा रहता है)*
(हमीदा धीरे-धीरे बैक स्टेज के अँधेरे में खिसक जाती है। बैक स्टेज पर प्रकाश, आगे अंधेरा)
हमीदा : *(जैसे माँ को संबोधित कर रही हो। माँ सामने नहीं दिख रही मगर अँधेरे में वह सुन रही है। पूरे संबोधन में अँधेरे में सईदा की आँखों पर प्रकाश*

उसकी हालत बयाँ करता चले) माँ मेरा हाल रखैल-सा ही है। जानती हो, सुलतान की पहली बीवी ने मुझे गुलाम, सुलतान की रखैल और बागी बाप की बेटा कहा? सुलतान पूरी तरह से उसके कब्जे में है। तुम यकीन नहीं करोगी माँ, मैं भी सोच नहीं सकती थी कि फतेह - मेरा सगा भाई, उस भड़वे सुलतान की फारसी खातून के चक्कर में, मेरे ही घर में, मेरे खिलाफ उस औरत का साथ देगा और मेरी जड़ों में जहर घोलेगा।
(सईदा की आँखों से उसकी पीड़ा झलकती रहती है।) जो सुलतान तुम पर जान लुटाता था, उसे ही मैं भद्दी, काली और दाग-दाग दिखने लगी।
हुँह! सुलतान-कमीना, नपुंसक, मिट्टी का लोदा। उसे देखते ही मेरे अंदर पता नहीं कहाँ से नफरत की चिनगारियां फूटने लगती हैं। *(इस बीच मलिक अंबर का प्रवेश। सईदा ओठों पर उँगली रख अंबर को इशारे से अपने करीब बुला लेती है)* गलती मेरी ही थी, माँ! वह मनहूस लम्हा जब मैंने सुलतान का सपना देखा और उसे खाविंद के तौर पर पाने की जिद की। जिद्दी थी मैं, मेरी हर जिद्द को पूरा करने वाले अब्बा जो थे।
(मलिक अंबर और सईदा एक दूसरे की तरफ देखते हैं) माँ, तुम्हारी लाड़ली और अब्बा की सिर चढ़ी, मैं नाक पर मक्खी नहीं बैठने देती थी। किसी की मजाल कि अब्बा के बारे में कुछ कहे। और माँ उस औरत ने, जिस पर फतेह लट्टू है, मुझे लेकर आज फिकरा कस दिया - काले-कलूटे हब्शी बाप की काली-कलूटी लड़की और माँ मेरा पूरा जिस्म झनझना उठा। मैंने उस औरत को बालों से पकड़ कर जमीन पर दे पटका और उसे बुरी तरह नोच डाला। सब कुछ उखाड़ फेंकने वाले मेरे भयानक रूप को देख सुलतान सन्न खड़ा रहा। उसकी जुर्रत न पड़ी कि मेरी तरफ बढ़े और पलक झपकते घोड़ा दौड़ाती मैं यहाँ आ गयी।
(बैक स्टेज का प्रकाश मद्धम होता जाता है। प्रकाश मलिक अंबर पर) (मलिक अंबर के विशाल पहाड़ से शरीर में आँखें तारों की तरह चमकती दिखती है। वह शेर की तरह गुर्राने लगता है जैसे अँधेरे को फाड़ खायेगा। प्रकाश योजना ऐसी हो कि अँधेरा रोशनी की लकीरों से कट रहा हो मगर दिखे इस तरह जैसे मलिक अंबर के गुर्राने से अँधेरा रोशन हो रहा हो। गुर्राने की अनुगूंजे कुछ पलों तक बनी रहें।)
अंबर : *(सईदा की तरफ अवश भाव से देखता हुआ)* सईदा, तुमने मुझे हमीदा के सपने को पूरा करने के लिए कहा था न?
सईदा : *(रूआंसी)* हाँ...
अंबर : मैंने पूरा किया?
सईदा : हाँ ऽ ऽ ऽ *(रोने लगती है)*
अंबर : नहीं, सईदा, मैंने उसके सपने की आड़ में अपना सपना पूरा करना चाहा।
सईदा : *(उसकी तरफ देखती रहती है)*
अंबर : और आठ साल पहले बूढे सुलतान के गुजर जाने पर, बिना तफ्तीश किए मैंने हमीदा की शादी नौजवान शाह अली से कर दी। तुम्हें याद है न।
सईदा : मुझे याद है।
अंबर : और कुछ ही दिनों में मैंने उस भड़वे शाह अली को मुर्तजा निजामशाह दोयम के नाम से राज गद्दी पर बिठा दिया जो आज मुझे ही खत्म करने पर तुला है।
सईदा : तुम कहना क्या चाहते हो?
अंबर : हमीदा की जिद की आड़ में मैंने एक सियासी खेल खेला - मेरा सुलतान, मेरा दामाद, मेरा मोहरा। मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

सईदा : *(तीखेपन से)* अब?
अंबर : अब?
सईदा : *(गहरी वेदना से)* एक चाल और बेटी दाँव पर लग गयी....।
अंबर : सुलतान मुर्तजा ने हमीदा को नहीं, मुझे गाली दी है। उसने मुझे ललकारा है। मुझे लानत भेजी है।
सईदा : तो?
अंबर : मैं मुर्तजा निजामशाह दोयम को मौत के घाट उतार दूंगा।
सईदा : होशमंदी से काम लो। वह तुम्हारा दामाद है। पूरे पचड़े में तुम्हारा बेटा भी शामिल है। राजू शामिल है। मुगल ताक में है।
(मुँह लटकाये फतेह का प्रवेश)
(फतेह की तरफ पीठ किये हुए सखी से) बोलो, तुमने यह करतूत क्यों की?
फतेह : गफलत में, इरादतन नहीं। मौज-मस्ती, ऐश का कीड़ा मेरे अंदर घुस गया था।
अंबर : और उसके लिए तू सुलतान से जा मिला, मुझसे कहता ....
फतेह : आप से कभी कुछ न कह पाया। हमेशा डरता रहा और वह डर कई शक्लों में मुझे दबोचे रहा और मैं अंदर ही अंदर घुटता रहा। आपके साथ मुझे खुलने का मौका ही कब मिला, अब्बा!
अंबर : अपने गुनाह और नीचता पर पर्दा न डाल।
फतेह : *(चुप)*
सईदा : तुमने सकीना की हवस में अपनी बहन की जिंदगी बरबाद कर दी, उसे जहन्नुम में ढकेल दिया। तू निक्कमेपन और लुच्चेपन की तमाम हदें पार कर गया।
फतेह : गलती हो गयी, किस मुँह से माफी मागूँ? शर्मसार हूँ।
सईदा : *(अंबर से)* किस से गलती नहीं होती?
अंबर : गलती कि गुनाह?
फतेह : *(थरथर काँपता हुआ)* मुझे सख्त से सख्त सजा दो।
सईदा : जो हो, इसे माफ कर दो....
अंबर : माफ कर दूँ .... *(एक पल सोचता हुआ)* मानते हो न, पछतावे की घड़ी है।
फतेह : तहेदिल से मानता हूँ।
अंबर : जो कहूँगा होशयारी से अंजाम दोगे।
फतेह : दूँगा।
अंबर : किसी को भनक न पड़े। *(फतेह के कान में फुसफसाता है)*
(फेड आउट)
(बायीं तरफ प्रकाश)
सैनिक-एक : सुना है सुलतान ने खुदकुशी कर ली।
सैनिक-दो : खुदकुशी कि कत्ल?
सैनिक-एक : कत्ल?
सैनिक-दो : और फतेह सकीना के साथ मजे लूटता रहा और सुलतान को शराब पिलाता रहा, जब तक वह ढेर न हो गया।
सैनिक-एक : कहते हैं फतेह के कहने पर सकीना ने शराब में जहर मिलाया।

सैनिक-दो : लोदे-बोदे सुलतान की नहीं, उसे होने वाले वजीरेआजम फतेह की बेगम बनना है।
सैनिक-एक : जानते हो, रातों-रात सात साल के उसके बेटे यानी हमीदा के बेटे को बुरहान निजामशाह के नाम से गद्दीनशां कर दिया गया।
सैनिक-दो : चुप! कोई आ रहा है।
(अंधेरा)

दृश्य : पाँच

जैसे बात पहले से चल रही हो
सईदा : रूक क्यों गए?
अंबर : मेरा प्यारा दोस्त मंसूर बंदी बना लिया गया। मुगल जरनैलों का घिराव इतना जबरदस्त था कि बचना मुमकिन न था। वे उसे खत्म करने को थे कि खानखाना ने उसे बंदी बनाने का हुक्म दे दिया।
सईदा : चलो, बच तो गया न?
अंबर : हाँ
सईदा : किस हाल में है?
अंबर : अच्छी खबर नहीं है। जहाँगीर ने उस पर घूसखोरी का इल्जाम लगाया है। उसे शक है खानखाना ने जंग के उसूलों के खिलाफ मंसूर को मौत से बचाने के लिए बंदी बनाया।
सईदा : ओह!
अंबर : *(आहिस्ता आहिस्ता टहलता हुआ)* खानखाना को मुअत्तिल कर दिया गया। उसकी बहाली की शर्त है कि वह अंबर का सिर काट कर लाए। खानखाना ने इंसानी कद्रों की बेहतरीन मिसाल पेश की है। मेरी निगाह में वह बहुत ऊँचा उठ गया है।
सईदा : जहाँगीर के हुक्म से अगर वह तुम्हारा सर काटने के लिए निकल पड़े तो?
अंबर : तो भी! मेरा उसका अजब रिश्ता है - कभी दोस्ती, कभी दुश्मनी। हाँ, एक फन में मैं उससे हारा हूँ।
सईदा : किस फन में?
अंबर : वह अव्वल दर्जे का सिपहसालार है तो अव्वल दर्जे का शायर भी है और मैं?
सईदा : *(चुप)*
अंबर : वह रूह की गहराइयों में उतर जाता है और लफजों में अपना दिल निचोड़कर रख देता है। अफसोस कि मैं आधा-अधूरा खानखाना हूँ।
(दूसरे पल) मंसूर की कोई खबर मिली?
अंबर : जहाँगीर उसका कत्ल करने का बहाना ढूंढरहा है। पता नहीं क्या हो?

(एलची का प्रवेश)

एलची : *(अंबर के हाथ मे चिट्ठी देकर फूट-फूट कर रोता हुआ)* जहाँगीर ने मंसूर को सिपाहसालारी, जागीर और हाथी की सौगात पेश की मगर मंसूर ने ठुकरा दी। उसने कहा - वह बिकने के लिए नहीं है। (एलची चला जाता है)

(सईदा अंबर के हाथ से चिट्ठी लेकर खोलती है। हैरान-सी देखती है चिट्टी के साथ एक तस्वीर नत्थी है। चिट्ठी और तस्वीर को स्क्रीन पर दिखाया जाए)

चारों तरफ अंधेरा। प्रकाश केवल स्क्रीन पर। स्क्रीन के दायीं तरफ चिट्ठी, बायीं तरफ तस्वीर पर प्रकाश। चिट्ठी के शब्दों के नीचे सईदा की उंगलियाँ चलती दिखती है। वह चिट्ठी पढ़ती है।

प्यारे दोस्त अंबर,

पहली बार तुम से जुदा हुआ हूँ। बहुत दूर हूँ, मगर दूरी के बावजूद तुम मेरे सबसे करीब हो।

जानते हो क्या, लखूजी जाधव अपने दल-बल के साथ जहाँगीर के साथ आ मिला है। वह मेरे पास से गुजरा और बड़ी हिकारत और तंज से मेरी तरफ देखता रहा और अकड़ता हुआ निकल गया। और वह तुम्हारा हयाती काशी शायर-याद आया तुम्हें, हाँ वही जिसे तुमने अपना दूत बनाकर जहाँगीर के दरबार में भेजा था। उसे भाटों की तरह जहाँगीर की तारीफ करते देख मेरा सर शर्म से झुक गया।

देख रहे हो न शहंशाह के दरबारी अबुल हसन की यह तस्वीर *(स्क्रीन पर तस्वीर फोकस हो जाती है)* नुकीले नेजे पर लटकाया गया तुम्हारा चेहरा और उसे निशाना बनाता हुआ जहाँगीर। देख जरा, जहाँगीर की बदहवासी की इंतिहा। जानते हो मुझे कहा गया कि तस्वीर में नुमायां तुम्हारे चेहरे को तीरों से छलनी करूँ। बेचारा जहाँगीर, खानखाना पर जोर न चला तो मुझे फाँसना चाहा। कहने लगा - जान बख्श दी जाएगी, ईनाम अलग से अगर तू नेजे पर लटके अंबर के चेहरे को तीरों से जख्मी कर दे। मैंने कहा - अंबर के चेहरे की जगह तू अपना चेहरा लगा दे तो देखना मेरा निशाना कितना अचूक होगा। इससे वह बुरी तरह भभक उठा और तुम्हें गालियाँ देता रहा। मेरी खैरियत न पूछ। मुझे परवाह भी नहीं है। मेरे अंदर उस मंसूर की रूह फड़फड़ा रही है जिसने सच की खातिर मौत को गले लगा लिया था। बस, एक तीर कब मेरी तरफ आ जाए और सर धड़ से अलग हो जाए। अलविदा, अलविदा.....

(स्क्रीन पर प्रकाश मद्धम होता जाता है। सईदा की उंगलियाँ और पूरा जिस्म कांपता दिखता है।)

अंबर : *(आक्रोश में) नहीं ऽ ऽ ऽ (स्कीन पर प्रकाश बुझ जाता है। प्रकाश गायन मण्डली पर :)*

गायन मण्डली दोस्त के इश्क में हर घड़ी/आग के दरमियाँ नाचता हूँ/ धूल में लौटता हूँ कभी/तो कभी कांटों पर नाचता हूँ/ इश्क में तेरे रूस्वा हुआ/अब तो आ जा मेरे यार तू/ मैं नहीं डरता रूसवाई से/ खुल के बाजार में नाचता हूँ/

(अंबर साथ-साथ गुनगुनाता है)

दृश्य : छह

(प्रकाश पहले दृश्य के क्रम में) (विंग्स से अंबर और सईदा आगे बढ़आते हैं।)

अंबर : सईदा, अच्छा ही हुआ कि हम गुम्बदों में नहीं लौटे और सदियों बाद अपना ही खेल अपनी नजरों से देख लिया।

सईदा : देख, इनकी शक्लें, इनके नैन-नक्श, बीच के सालों ने हमें क्या से क्या बना दिया। नाम के हब्शी, वैसे जंगली आदिवासी।

अंबर : जिंदा रहने के लिए हमें तिल-तिल लड़ना पड़ रहा है। सईदा हमारे रोजी-रोटी के वसीलों को, हमारे जंगलों को वो निगलने पर तुले हैं।

सईदा : कौन है वो?

अंबर : सवाल न कर, सामने देख।

(नेपथ्य और विंग्स से 'मारो, मारो, जिन्दा जला दो' की आवाजें। अंबर, सईदा, दहशतजदा से चारों तरफ देखते हैं और मंच के अगले हिस्से में दायीं तरफ दुबक जाते हैं। जैसे-जैसे आवाजें करीब आती जाती हैं, उन की घबराहट और तनाव बढ़ता जाता है -)

सईदा : वे हमारी तरफ बढ़रहे हैं.....

अंबर : जैसे शिकारी शिकार की तरफ।

सईदा : ये हमें दबोच लेंगे .... भेड़िए ....।

अंबर : झुंड के झुंड ....

सईदा : अंबर, कुछ कर, तुम ही हो काले, सलोने किशन। तुम में किशन की रूह रोशन है।

अंबर : हिस्! एक हब्शी की रूह में किशन ....न... न....।

सईदा : मैंने क्या गलत कहा?

अंबर : किसी से कह न देना, लोग मेरे चिथड़े उड़ा देंगे। (जोर से हँसता है) जानती हो किशन शिकारी के हाथों मारा गया और हम शिकारियों से घिरे हैं।

सईदा : हाँ ऽ ऽ .... चौखट पर, चौखट से बाहर .... *(गोलियों की आवाज)* कोई मरा है वहाँ ।

अंबर : *(धीमी आवाज में)* कोई नहीं, मैं ही मरा हूँ वहाँ - हर बार .... कोई बोल नहीं रहा। मुझे मंसूर की याद आ रही हैं जो सच के लिए ....

सईदा : *(बेहद तल्खी से)* सच! सच! क्या होता है सच?अंबर : देख, हमारे पेड़ ..... टूटे-फटे, खूनी लकीरों से तरवर

सईदा : *(हताशा से)* पेड़-वेड़ छोड़, सामने देख एक खूनी तूफान हमें अपने जबड़ों में भींचने को है।

(वहशियों का झुंड डाउन स्टेज से आगे बढ़ता दिखता है) एक आवाज :कालू-कलूटे हब्शी चले आते हैं मुँह उठाए। *(अंबर पर किसी तेज चीज से वार)*

सईदा : *(बेहद घबराई हुई)* अँधेरा और आग, नहीं अबर, अब और नहीं ....

दूसरी आवाज : सईदा के सिर पर झपटती निकल जाती है। *(सईदा भयाक्रांत अंबर के सीने से लिपट जाती है)*

अंबर : *(चुप)*

सईदा : *(अनुरोध भरे स्वर में)* अंबर, चल गुंबद में लौट चलें ....

अंबर : *(करूणा और विद्रोह के मिले-जुले भावों से)* : नहीं ऽ ऽ ऽ ....

(अंबर और सईदा चक्राकार घूमते हुए मंच के अग्र भाग में आ जाते हैं। दूर से कहीं ड्रम बीट्स) नेपथ्य से - 'दोस्त के इश्क में हर घड़ी/आग के दरमियां नाचता हूँ' की धीमी ध्वनियाँ गूँजती जाती हैं।)

नाटककार नरेन्द्र मोहन और उनके नाटक

गिरीश रस्तोगी

कवि, नाटककार नरेन्द्र मोहन के नाटक इधर के पंद्रह-बीस वर्षों के रचनाकाल में कई अर्थों-संदर्भों में हमारा ध्यान आकृष्ट करते रहे हैं। काव्य और नाट्य वैसे भी एक-दूसरे में अंतर्ग्रथित हैं। नरेन्द्र मोहन के काव्य में कहीं-न-कहीं प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में नाट्य स्पन्दित रहा है जो अन्ततः नाटक की रचना के रूप में प्रस्फुटित हुआ। उनके नाटकों को हम संघर्ष, विरोध, अन्वेषण और सत्य के नाटक कह सकते हैं। सींगधारी (1988), कहै कबीर सुनो भई साधौ (1988), कलंदर (1991), नो मैंस लैण्ड (1994), अभंगगाथा (2000), मिस्टर जिन्ना (2005) सभी प्रमाणित करते हैं कि वह लगातार नाट्य-रचना करते हुए नवीन कथ्य और मौलिक चरित्रों को तलाशते और आधुनिक संदर्भ में उन्हें रचने में प्रयत्नशील रहे हैं। नरेन्द्र मोहन के ये सभी नाटक नवीन कथ्य और चरित्रों की संरचना में उनके शोध और अन्वेषण-वृत्ति के प्रतीक हैं। ये सभी नाटक समसामयिक यथार्थ, आज की विसंगतियों और अंतर्विरोधों से, मानवीय विडंबनाओं, धर्मोन्माद, संप्रदायवाद, यथार्थ, आतंकवाद, सत्ता और आम आदमी के संघर्ष से, आज के ज्वलंत प्रश्नों से जुड़ते जाने वाले नाटक हैं। ये न ऐतिहासिक नाटक हैं, न पौराणिक, न लोक-नाटक हैं, न नुक्कड़ नाटक, न आधुनिकताबोध के प्रयोगात्मक नाटक हैं, न बौद्धिक नाटक मात्र। ये हिन्दी के जनचेतना के नाटक हैं।

नरेन्द्र मोहन का वैशिष्ट्य, उनकी मौलिकता ऐसे चरित्रों को खड़ा करने में है जो शाश्वत सत्य के अन्वेषी हैं, आक्रामक और आस्थावान दोनों हैं, चारित्रिक स्वतंत्रता और मानवीय संवेदना से युक्त हैं। इस दृष्टि से वे अपना या नाटक का बहुत सारा रचनात्मक लक्ष्य ऐसे कथ्य और चरित्रों को लेने और रचना करने में ही पूरा कर लेते हैं। ये सभी चरित्र जनमानस के भी हैं और ऐतिहासिक महत्त्व के भी हैं। सींगधारी से मिस्टर जिन्ना तक की नाट्य-रचना नाटककार के अपने भीतर को पहचानने और निरंतर परिवर्तन और बहस-मुबाहिसों, नाट्य-पाठ, नाटककार और निर्देशक, नाटककार और आलोचक, रंगकर्मियों के साथ संवाद के साथ गुजरते हुए रही है। नाटककार और निर्देशक के सह-अस्तित्व और निर्देशकीय दृष्टि की स्वीकृति से नाटक के प्रारूप बनते-बदलते रहे हैं और रंग-प्रक्रिया का हिस्सा भी रहे हैं, यद्यपि लेखक और निर्देशक के आपसी विचार-विमर्श और अर्थपूर्ण तालमेल को महत्त्व देते हुए उन्होंने नाटक रचे हैं।

प्रकाशित रूप में ''कहै कबीर सुनो भाई साधो'' ही यद्यपि नरेन्द्र मोहन का पहला नाटक है। वह स्वयं अपना पहला नाटक ''सींगधारी मानते हैं'' जो पहले नुक्कड़ नाटक के रूप में लिखा गया और उसी रूप में खेला भी गया बाद में इसे यथार्थवादी शैली में लिखा और तब अपने नये रूप में यह डॉ. विनय और अरुण माथुर के निर्देशन में मंचित हुआ। इसका मूल स्वर ही नुक्कड़ नाटक के अनुसार चारों ओर व्याप्त विसंगतियों पर व्यंग्य और कटाक्ष का है। सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था पर चोट करता हुआ यह नाटक एक ओर व्यवस्था के विरोध-स्वर को लेकर चलता है, दूसरी ओर समकालीन राजनीतिक विद्रूपताओं को उभारता है। चारों ओर फैली हुई जनविरोधी शक्तियों, सत्तावादी प्रवृत्तियों के कुत्सित यथार्थ, अराजकता, अवसरवाद, उत्पीड़न-शोषण, मूल्यहीनता के सारे तत्त्वों को यह प्रस्तुत करता है। दो कथानकों को साथ लेकर नाटककार इन सभी अर्थों को ध्वनित करता है- एक राजा और नाई की लोककथा, दूसरी नेता और आम जनता की कहानी। जाहिर है कि राजा और नेता ही सींगधारी हैं जो पशुवत मदांधता, क्रूरता, घृणित अमानवीयता, सत्तालोलुपी प्रवृत्तियों के प्रतीक स्वतः हो जाते हैं। इस दृष्टि से नाटक में अनेक पात्र आते हैं- नेता, पत्रकार, वकील, मास्टर, जज, पेशकार। सबके अनुभव और तर्क हैं। बुद्धिजीवियों के व्यवस्था-विरोध की निरर्थकता पर भी व्यंग्य है। सारे अवमूल्यन के विरुद्ध खड़ा होता है तो प्यारेलाल। जन-संघर्ष का प्रतिनिधि होने के कारण उसके माध्यम से नाटक एक खास तेवर लेकर चलता है और ''सींगधारी'' प्रतीक आज की विडंबना से जुड़ जाता है। नाटक में अनेक घटनाएँ और उनके कई दृश्य हैं। पहला नाटक होने से भले ही ''सींगधारी'' उतना संश्लिष्ट और व्यंजक न बन पाया हो, क्योंकि यहाँ नाटककार कथ्य, भाषा, शिल्प के बीच संतुलन खोजता दीखता है, कभी-कभी अपने प्रयोग और कथ्य को, प्रतीक को स्पष्ट करता हुआ भी दीखता है, लेकिन इस नाटक से आगे आने वाले नाटकों का, उनकी प्रकृति और सामूहिक स्वर का आभास मिल जाता है। उदाहरणार्थ कहै कबीर सुनो भाई साधौ में नाटककार आज की जीवंत-ज्वलंत समस्याओं और प्रश्नों को समग्र मानवीय सरोकार के साथ, जनसमूह तक पहुँचाना चाहता है शायद इसी कारण कबीर जैसे विद्रोही, जुझारू, प्रगतिशील कवि, फक्कड़ व्यक्तित्व की तरफ उनका ध्यान गया। भीष्म साहनी, मणि मधुकर के नाटकों 'कबिरा खड़ा बाजार में' और 'इकतारे की आँख' के बाद भी नरेन्द्र मोहन 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' लिखते हैं और तभी स्वाभाविक-सा सवाल उठता है कि कबीर पर यह नाटक क्यों? दरअसल, यह नाटककार की आंतरिक बेचैनी, उसके दृष्टिकोण, उसकी चेतना के रचनात्मक स्तरों से भी जुड़ता है और कबीर के अत्यन्त शाश्वत, संघर्षशील, आक्रामक, स्पष्टवादी और आस्थावान व्यक्तित्व से भी। कबीर जैसी निर्भीकता - धर्म, समाज, इतिहास, राजनीति, सबमें - आज की सबसे बड़ी आवश्यकता हे। इसी निर्भीकता, चारित्रिक स्वतंत्रता और दृढ़ता को वह कलंदर नाटक में कलंदर के चरित्र से सम्प्रेषित करते हैं। यह अपने ही प्रकार की 'फक्कड़ मिजाजी' एक अर्थ में मुक्ति - व्यापक मुक्त का संकेत भी करती है। कबीर में रूढ़िवादी दृष्टि, अंधविश्वासों, धर्माडम्बर, सामाजिक परम्पराओं, कर्मकाण्ड, राजनीतिक ताकतों और दमनकारी प्रवृत्तियों के प्रति जो तीखी प्रतिक्रिया और आक्रामक शक्ति मिलती है, वह आज की दृष्टि से सबसे अधिक प्रेरक स्रोत हैं। कबीर की नाटकीय शक्ति, उनमें अन्तर्निहित क्रियाओं को, जनचेतना को रंगभाषा के मुहावरे में नाटककार ने पकड़ा है जिससे कबीर का व्यक्तित्व ताजगी और क्रांति का एहसास देता है। 'कहै कबीर...' नाटक प्रस्तुतीकरण प्रक्रिया और रचना-प्रक्रिया के सह अस्तित्व में जन्मी नाट्यकृति है। निर्देशक देवेन्द्रराज अंकुर ने इसके कथ्य की महत्ता, लचीले फॉर्म को देखते हुए पूर्वाभ्यास के दौरान इसके आलेख में, रंग-परिकल्पना और संगीत-प्रयोग में नयापन पैदा किया। छोटे-छोटे दृश्यों का सहज, लोककथात्मक वातावरण होते हुए भी हम इसे नौटंकी या किसी खास लोकशैली में रचा गया नाटक नहीं कहेंगे, बल्कि यह अपने में जन-नाटक का आभास देता है।

'कहै कबीर...' का आरंभ ही संगीत की लय-ताल, गायक-गायिका के गीत और जनसमूह की भीड़ एकत्र होने से होता है। नुक्कड़ नाटक की लय भी बनती है और जनाक्रोश भी उभरता है- 'तुम कत ब्राह्मण, हम कत सूद' जैसी उक्तियाँ और 'शोषण और अत्याचार की क्रूर शृंखला ! मन की आँखें खोल।' के साथ नाटक कबीर की ओर मुड़ता है। कबीर के क्रांतिकारी व्यक्तित्व के प्रति जन-जागरण और आत्मीय सम्बन्ध के लिए कबीर के दोहों, पदों का भरपूर प्रयोग किया है और नाटककार ने स्वयं भी गीत-रचना की है। कबीर वही है पर उन्हें देखने, उनके विचार और दर्शन को आजके संदर्भ में नयी उद्भवनायें देने में नाटककार स्वतंत्र है। कबीर के विद्रोही स्वभाव को आकस्मिक न मानते हुए, उसके मनोवैज्ञानिक कारणों को नाटककार ने जानना चाहा है। कबीर के चारित्रिक विकास में बिजली खां, बोधन, नर्तक रमजनिया के चरित्र लाये गये हैं। अनेक घटनायें और अनेक दृश्य कथ्य और चरित्र को विकसित करते हैं जिससे कबीर के अक्खड़, आक्रामक व्यक्तित्व को एक भावात्मक, विराट आयाम मिलता है। कबीर के विरोध पक्ष को अवश्य आक्रामकता से उभारा गया है जिससे नाटक में नाटकीय तनाव, कार्य-व्यापार की बहुलता, तीव्रता बनी रहती है और एकरसता भंग होती है। नाट्य-शिल्प की प्रयोगात्मकता में नरेन्द्र मोहन का विश्वास भी नहीं है। सहज नाट्य-शिल्प में 'अँधेर नगरी' की तरह यह लोकधर्मी परम्परा का नाटक है। नाटक में कार्य-व्यापार के अनेक स्थल हैं- बाजार, कबीर का घर, गंगा का किनारा, कोतवाली, दरबार आदि। इन सबकी संरचना में जो ताजगी बनी रहती है, वह संगीत, कविता और भाषा की रवानगी के कारण। कबीर के पद, साखी को नाटकीय स्थितियों, अर्थ-संभावनाओं से जोड़ना, उनके द्वारा कथ्य और वातावरण को विकसित-विश्लेषित करना, टिप्पणी करना और समकालीन प्रश्नों को उठाना नाट्य को न केवल गति देता है, बल्कि निर्देशकीय स्वतंत्रता, लचीलापन और सहज प्रवाह भी देता है। 'कहै कबीर...' में गीत, कविता के प्रयोग,

उनका सुंदर समन्वय ध्यान आकृष्ट करता है। अपने लघु कलेवर और आज की युगीन चेतना, जनतांत्रिक मूल्यों, मानवीय स्तरों का यह नाटक बंधी-बंधायी शैली या शैलीबद्धता की दृष्टि से एक 'मुक्त जन-नाटक' के रूप में हमारे सामने आता है। हिन्दी में शैलीबद्धता ने भी किस प्रकार नाट्य-लेखन और रंगकर्म को एकांगी और सीमित बनाया, कहै कबीर... उसके विरुद्ध एक जनात्मक स्वर है।

अपने अगले नाटक ''कलंदर'' में भी नरेन्द्र मोहन इतिहास और मिथ के माध्यम से सर्वथा नये संदर्भ और चरित्रों को खड़ा करते हैं। जलालुदीन खिलजी के समय में एक नये संप्रदाय ''कलंदर'' का चयन, उसका अन्वेषण, शोध-अध्ययन और नाटक विधा में उसे उतारना, संघर्ष और दृष्टि दोनों को दिखाता है। ये कलंदर भी कबीर की तरह अक्खड़, फक्कड़-मिजाज, मस्तमौला तो हैं ही, विद्रोही क्रांतिकारी और सच्चाई के लिए लड़ने वाले मानवीय प्राणी भी हैं। अपनी जीवन-शैली में ये जितने बेखौफ बेपरवाह, निडर हैं, बल्कि अद्भुत और विशिष्ट हैं, वह रंगमंचीय और अभिनय दृष्टि से बड़ा अन्वेषणपरक और आकर्षक पहलू बनता है। ये भी संपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक, सत्तावादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध खड़े होने वाले और जनसंघर्ष, जनपीड़ा के पक्षधर हैं। उनकी निरंतर सक्रियता के साथ-साथ वर्तमान राजनीति की विकृत स्थितियाँ, सत्य-असत्य का संघर्ष, धार्मिक विडंबनायें उजागर होती हैं। कलंदर संत नहीं हैं, वे सूफी संतों से भी विद्रोह करते हैं। कलंदर उर्फ हमीद का चरित्र इस माने में गतिशील चरित्र बन सका है, क्योंकि नाटककार द्वारा उसकी मनःस्थिति, प्रतिक्रियाओं, बाह्य जगत् से निरंतर उसके द्वन्द्व और निरंतर विकासशील, अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। 'कलंदर' में बुद्धू चरित्र की कल्पना ब्रेख्तियन टेकनीक के आधार पर की गयी है जो विभिन्न स्थितियों, घटनाओं पर, अनेक पात्रों के कार्यों पर दृष्टि रखता है, टिप्पणी करता है और सूत्रधार या विदूषक होने का भ्रम देता है। नाटककार भी उसे बड़ी रेंज का चरित्र मानता है, लेकिन एक महत्त्वपूर्ण और सुंदर परिकल्पना होते हुए भी नाट्य-रचना में उसे और अधिक सघन, संश्लिष्ट, व्यंजक रूप में आना चाहिए। वह अपने आपमें आम आदमी का चरित्र भी बन जाता है, मात्र टिप्पणीकार नहीं। उस अर्थ में वह आम आदमी का, उसकी यातना और पीड़ा का प्रतिनिधि पात्र का भी बन जाता है। संगीत यहाँ भी नाटक का अभिन्न अंग है यद्यपि यह 'कहै कबीर...' या 'अभंगगाथा' की तरह संगीतप्रधान नाटक नहीं है। ज्यादा ध्यान जाता है उस फारसी वाणी पर, फारसी वाणी के लिए लोगों से मिलने, उनके साथ बैठकर उस लय, छंद को हिन्दी में पकड़ने रचने की कोशिश पर। कलंदर भी पूर्वाभ्यास की प्रक्रिया से गुजर अखिलेश खन्ना के निर्देशन में प्रस्तुति के बाद विचार-गोष्ठी में आये विभिन्न विचारों के बाद परिवर्तनों और संभावनाओं के साथ प्रकाशित रूप में आया। यह एक सर्जनात्मक प्रक्रिया है। एक अछूते और मध्यकालीन इतिहास के लगभग विस्मृत विषय को, महत्त्वपूर्ण चरित्र और संदर्भों को उठाने की दृष्टि से 'कलंदर' अपने में महत्त्वपूर्ण नाटक है। एक प्रकार से आरंभ के तीनों नाटक कथ्य,संरचना, दृष्टि में लगभग एक प्रकार के हैं, लेकिन ''नो मैंस लैंड'' से नरेन्द्र मोहन के अलग प्रकार के नाटकों की प्रकृति शुरू होती है।

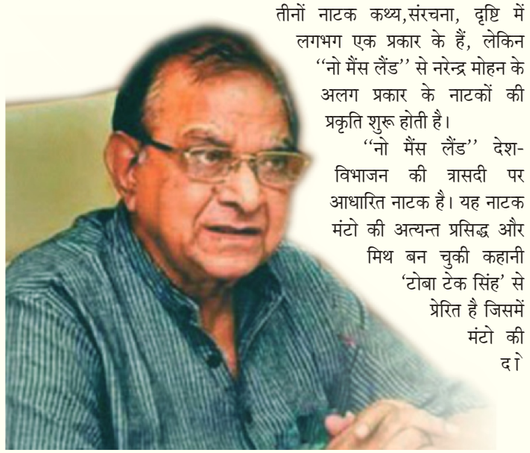

''नो मैंस लैंड'' देश-विभाजन की त्रासदी पर आधारित नाटक है। यह नाटक मंटो की अत्यन्त प्रसिद्ध और मिथ बन चुकी कहानी 'टोबा टेक सिंह' से प्रेरित है जिसमें मंटो की दो अन्य मार्मिक कहानियों को भी शामिल किया गया है- 'खोल दो' और 'ठंडा गोश्त'। इस दृष्टि से यह सीधे-सीधे नाट्य-रूपांतर न होकर बँटवारे की त्रासदी और विसंगति को व्यापक आधुनिक संदर्भों, मानवीय संकट और चुनौतियों के साथ देखते-अनुभव करते, रचते एक नाट्यकृति का आकार लेता जाता है जिसमें नाटककार ने भी स्वतंत्र घटना-प्रसंगों, पात्रों की कल्पना की है, क्योंकि नाटक का मुख्य लक्ष्य व्यापक मानवीय त्रासदी के अनुभव को और वर्तमान मानवीय विडंबनाओं को गहरे राजनीतिक व्यंग्य के साथ चित्रित करना है। बिशनसिंह समूचे राजनैतिक षड्यंत्रोंकी मानसिकता के विरुद्ध खड़ा होता है। क्रूर शक्तियाँ और आम आदमी उस मायने में यहाँ भी हैं, लेकिन मुख्य पीड़ा है उस आजादी की जो अनेक प्रश्न छोड़ जाती है। चरित्र विघटितहैं और पागल हैं। बिशनसिंह, सिराजुद्दीन जैसे पात्र सामाजिक-राजनीतिक विडंबनाओं के कारण पागल करार दिये जाते हैं, क्योंकि सीधे-सरल, संवेदनशील लोगों की पहचान अब नहीं है। यह मिसफिट होने की पीड़ा सूक्ष्म कथानक के साथ एब्सर्ड स्थितियों के साथ नाटक में व्यंजित हुई हैं। वस्तुतः इस दृष्टि से 'टोबा टेक सिंह' कहानी भी अपने आपमें बहुत सशक्त, गत्यात्मक और व्यंजनात्मक है।

नाटक का आरंभ ही पागलखाने से होता है जो क्रमशः स्थितियों को विकसित करता जाता है। 'नो मैंस लैंड' में नाटकीय कार्य-व्यापार की तीव्रता को और दृश्यत्व की संरचना को अनुभव किया जा सकता है। इसके दृश्य पाँच हैं और 'कहै कबीर...' के कई छोटे-छोटे दृश्यों की तुलना में बड़े हैं जो नाटक के कथ्य की दृष्टि से आवश्यक भी था। गीतों के, उनके द्वारा कथासूत्रों के सामयिक संदर्भों के संकेत, दोनों देशों के पागलों का समवेत स्वर में गायन दर्शक/पाठक तक नाटकीय अर्थ को प्रभावी रूप से सम्प्रेषित करता है। 'किसकी है यह हंसी' तो नाटक का मूल सौन्दर्य बन जाता है। मंटो की तीखी, गतिशील और पैनी, मुखर वाक् शैली के कारण यह पूरा नाटक पंजाबी बोली और संदर्भों, प्रयोगों में, सम्बद्ध-असम्बद्ध संवादों में नाटकीय संवेदना को विश्वसनीय बनता है। यह नाटक भी कार्यशाला में आलेख-पाठ और समीक्षकों, निर्देशकों के बीच चर्चा के, गोष्ठी के साथ बना जिसमें नेमिचन्द्र जैन, राजेन्द्रनाथ, गोविन्द देशपांडे और अन्य विशेषज्ञ भी शामिल थे। निर्देशक कृष्णकांत और रंगकर्मियों के साथ भी, पूर्वाभ्यास के दौरान विचार-मंथन और परिवर्तन प्रक्रिया से सहभागिता के अर्थ स्पष्ट हुए।

नरेन्द्र मोहन का अगला नाटक ''अभंगगाथा'' मराठी के संत कवि तुकाराम पर, उनकी अभंगवाणी पर केन्द्रित है। हिन्दी के लेखक और पंजाबी भाषी होते हुए भी एक मराठी कवि को केन्द्र में रखकर (वह भी महाराष्ट्र के जनमानस में तुकाराम और उनके अभंगों के प्रति अलौकिक निष्ठा को देखते-समझते हुए) नाट्य-विधा जैसी प्रत्यक्ष विधा में लिखना चुनौती और खतरा दोनों हैं। नाटककार उन खतरों से जूझा है। 'क्या कबीर मुझे तुकाराम तक ले आए?' कलंदर और कबीर के बाद तुकाराम एक 'यात्रा' है। बीच में कुछ वर्षों में लगने लगा था कि 'चरित्र' हिन्दी नाटक से गायब हो गए हैं, वह शैली-शिल्प प्रधान हो गया है। ''अभंगगाथा'' चरित्र और व्यक्तित्व की संघर्षमय वाणी, सृजनात्मक अकुलाहट, विद्रोह को आगे बढ़ाता हैं तुकाराम मात्र आक्रामक, विद्रोही, सत्यान्वेषी, अदम्य साहसी नहीं है - पारिवारिक-सामाजिक-आर्थिक तनावों को झेलते हुए, अस्तित्व के संकट से लड़ते हुए गहरे अन्तर्द्वन्द्व को आत्मबोध की अवस्था तक पहुँचकर अभंग द्वारा जनात्म के स्वर फैलाने वाले व्यक्ति हैं। अभंग मराठी की मौखिक लोक परम्परा और लय के विविध प्रयोगों वाला छंद है। अभंग छंद की रचना अक्षरों और मात्राओं पर उतनी निर्भर नहीं करती जितनी लय और ताल पर। हिन्दी में अभंग के समतुल्य कोई छन्द नहीं है, 'लय और गायन' का वैसा विधान भी नहीं है। इससंकट में नाटककार ने हिन्दी, मराठी कवियों से मदद लेकर इस छंद की सृजन-शक्ति को तुकाराम के अन्तःसंगीत, अन्तर्वेदना से, हर युग के रचनाकार की बेचैनी से जोड़ने का प्रयास किया है और हिन्दी में उसे लाने-रचने का भी। तुकाराम के जीवन और 'अभंग' पर शोध यात्राएँ, अध्ययन, बहसें, सामाजिक-सांस्कृतिक-भाषिक सम्बन्धों को समझने और दर्शकों तक सम्प्रेषित करने की एक जटिल रचना-प्रक्रिया इस नाट्य-रचना में भी द्रष्टव्य है। कबीर की साखी और तुलसी की चौपाइयों की तरह अभंग तुकाराम के जीवन की, जिजीविषा के पर्याय हैं और लोकचेतना से, व्यापक संदर्भों से जुड़ते हुए संघर्ष और विद्रोह के वाहक हैं, क्योंकि तुकाराम की अभंग के प्रति इस ललक को, आस्था को परिवार-जन, पत्नी, समाज, धर्म-पंडितों, विद्वानों और राजनीति एवं व्यवस्था-तंत्र किसी ने नहीं समझा।

तीन अंकीय और अनेक दृश्यों के नाटक ''अभंगगाथा'' में विद्रोह, संगीत, कविता, चरित्र, विचार, दर्शन, अनुभूति, जीवन-संघर्ष, शोषण सब है। यह नाटक भी घुमक्कड़, गायक, कीर्तनकारों का है जो तुकाराम के भक्त और सखा भी हैं और चरित्रों, नाट्य-वस्तु के भीतरी सूत्रों एवं आधुनिक व्यंजनाओं को संकेतित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 'अभंगगाथा' का कथानक संघर्ष, सत्य की लड़ाई, सारे दबावों के बीच दुर्दम्य साहस को, मानवीय त्रासदी के बीच संगीतमयता के साथ जीवन युद्ध और उत्कर्ष की ओर बढ़ता है। विरोधी दृश्यों की टकराहट, वैषम्य-वैपरीत्य द्वारा, छायाओं में उभरते हिंसा-घृणा, नोंच-खसोट, लूट-पाट, हिन्दू-मुस्लिम फसाद, ब्राह्मण-शूद्र के अमानवीय कृत्य, दो पत्नियों-जिजाई द्वारा रुखमा की विरोधी मनःस्थिति के बीच तुका, तानाजी, सदाशिव, दामोदर जैसे अमानुष लोगों की हिंसक प्रवृत्तियों के बीच में उभरते गायन स्वरों से, राजा की सवारी के दृश्य, अकाल दृश्य आदि रचना-विरोधी स्थितियों को ताजा करते जाते हैं। विकृत मनोवृत्तियाँ और संघर्ष इस नाटक में युद्ध स्तर पर उभरते हैं। रंगमंच पर क्रिया-व्यापार, गतियों, संगीत-ध्वनियों के साथ कीर्तन मंडली की वीणा, मृदंग, करतालों, नक्कारों, रणभेरियों की आवाजों से जो कंट्रास्ट परिस्थितियाँ और तनाव बनता है और जिस तरह ब्राह्मण-शूद्र की असमानता और अनेक आयामी संघर्ष के बीच तुकाराम अकेला पड़ता जाता है, वह मार्मिक है। अंतिम अंक में तुकाराम की अभंग गाथाओं को पत्थरों में बाँधकर नदी में डुबाना, उस पर अभंग-रचना की पाबंदी लगाना, उसे 'धर्म विरोधी अराजक आचरण' का कहकर गाँव से निष्कासन की घोषणा आदि सृजन-विरोधी शक्तियों, दमनकारी प्रवृत्तियों पर प्रहार करते हुए भीष्म साहनी के हानूश नाटक में हानूश घड़ीसाज की याद दिलाता है जिसकी आँखें निकाल दी जाती हैं ताकि वह दूसरी घड़ी न बना सके। ''अभंगगाथा'' इन्हीं सृजन-विरोधी शक्तियों के विरुद्ध नाटक है। इस नाटक में भी फतेह खाँ जैसा पात्र है जो कुछ पागल-सा है और उसके सिर पर जख्म है। अपेन हर नाटक की तरह यहाँ भी नरेन्द्र मोहन फतेह खाँ को नाटक और युगीन विसंगतियों से, तुका की दीवानगी और दर्द से, उसके आत्मबोध और बहुत सारी व्यंजनाओं से जोड़ देते हैं। ऐसे पात्र हमें भारतेन्दु के पागल, मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस' के श्यामांग की याद दिलाते हैं। विभिन्न परिस्थितियों के बीच तुकाराम लोक-स्मृति में रच-बस चुका है, उसे कौन नष्ट करेगा? यही शाश्वत सत्य है और यह अनायास सुरेन्द्र वर्मा के 'आठवाँ सर्ग' के कालिदास की मानसिक स्थिति को भी मूर्त कर देता है। यह नाटक भी किसी विशेष शैली-शिल्प से बँधा नहीं है, इसमें स्वतंत्र भारतीय मंच की अवधारणा है। शब्द की शक्ति को पहचानने की ललक भी इसमें है। तुकाराम का जीवन, अभंगवाणी, सृजन, शब्द-शक्ति, आज का समय सब इस नाटक में अन्तर्ग्रथित है।

''अभंगगाथा'' चूँकि एक भिन्न संस्कृति और नये छंद की लय और प्रकृति का नाटक था, इसलिए उस पर संवाद-प्रक्रिया कई रूपों में चली। पुणे विश्वविद्यालय, अभिनेत, चंडीगढ़, साहित्य अकादमी दिल्ली, रूपांतर नाट्यमंच गोरखपुर, मंचन यमुनानगर, मराठी जागतिक परिषद् दिल्ली आदि संस्थाओं के साथ वाचन के आयोजन हुए। नेमिचन्द्र जैन, डॉ. निशिकांत मिरजकर, डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित, डॉ. रामचन्द्र तिवारी जैसे अनेक रचनाकारों और विद्वानों से सुझाव मिले। महत्त्वपूर्ण निर्देशकों में ब.व.कारन्त, देवेन्द्रराज अंकुर, डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता, डॉ. गिरीश रस्तोगी आदि ने रंगमंचीय दृष्टि से बातचीत की। सतीश दवे और इस लेखिका ने क्रमशः उज्जैन, दिल्ली, गोरखपुर, इलाहाबाद में इसके मंचन किये। रिहर्सल के दौरान और मंचन तक पहुँचते-पहुँचते, मंचन के बाद स्वभावतः एक नया 'रंगालेख' बनता जाता है जो सर्जनात्मक समीक्षा और प्रयोगों के लिए, रंगभाषा और नाटक के अनुभवों को समझने के लिए संचित किया जाता है और नाटककार-निर्देशक-समीक्षक के समीकरण से नयी अर्थ-भूमि और जीवन-स्पन्दन का संचार करता है। सबसे ज्यादा समझ 'शब्द' की आती है। शब्द के विस्तार और निरर्थक भावात्मकता को रंगमंच ही काटता है।

नये विषयों और चरित्रों पर ध्यान जाने के क्रम में ही नरेन्द्र मोहन का नवीनतम नाटक मिस्टर जिन्ना स्वभावतः एक आश्चर्य मिश्रित उत्सुकता पैदा करता है। जिन्ना के राजनैतिक-गैर राजनैतिक पहलुओं को नितांत वैयक्तिक, पारिवारिक धरातलों को और स्वयं जिन्ना के कठोर और मानवीय व्यक्तित्व को यह नाटक प्रस्तुत करता है। यह भी 'खोज' का नाटक है। प्रचुर सामग्री न मिलने पर भी फातिमा के पत्रों, भ्रमण, लोगों के संवाद आदि के आधार पर उपलब्ध सूत्रों को नाटककार अपनी कल्पना-शक्ति से विकसित करता है। यह नाटक जिन्ना को न नायक रूप में देखता है, न खलनायक रूप में, बल्कि कम्यूनल या सेक्यूलर या पोलिटिकल किसी भी केटेगरी में नहीं बाँधता। उसके वैयक्तिक और राजनीतिक जीवन के अन्तर्संबन्ध को साथ लेकर चलता है जिसमें से कई नये तथ्य, नये प्रसंग उजागर होते हैं - खासकर 1920-1929 का समय जो राजनैतिक और व्यक्तिगत स्तरों पर बेहद द्वन्द्वात्मक मानसिकता और जटिल परिस्थितियों के बीच क्रमशः जिन्ना के अकेले पड़ते जाने का समय था। 16 साल की रत्ती से जिन्ना का तूफानी इश्क, रत्ती का घर से भागकर जिन्ना से विवाह, दीना का जन्म, दीना के बड़े होने पर उसके पारसी लड़के से शादी पर भड़ककर कभी उसका मुँह न देखना, रत्ती से सम्बन्ध टूटना, उसकी मृत्यु आदि ऐसे वैयक्तिक अनुभव हैं जो उसे तनावग्रस्त और अकेला करते जाते हैं। दूसरी ओर 1920 में गाँधी द्वारा हताश कर दिये जाने पर कांग्रेस से इस्तीफा उसे राजनीतिक अर्थ में केन्द्र से हाशिये पर डाल देता है। भावनात्मक स्तर पर इस अकेलेपन और कचोट का, तनाव, डिप्रेशन, मनावैज्ञानिक दबावों का राजनैतिक निर्णयों पर परोक्ष-अपरोक्ष रूप में प्रभाव नाटक में व्यक्त किया गया है। निजी अनुभूति और राजनीति, स्मृति और इतिहास को देखते हुए यह नाटक जिन्ना के जीवन के नाटकीय पत्रे खोलता है। एक अन्य सत्य भी सामने आता है कि राजनेता के साथ-साथ जिन्ना एक अभिनेता भी था और रंगमंच के प्रति समर्पित था। उसने लंदन की प्रसिद्ध थियेट्रिकल कंपनी में अभिनय करने का अनुबंध भी किया था। पिता के सख्त विरोध के कारण वह कंपनी उसे छोड़नी पड़ी। शेक्सपीयर के नाटकों से उसका गहरा लगाव था। नाटककार यह दिखाना चाहता है कि जिन्ना को एक बड़ा राजनेता बनाने में उसके 'अभिनेता' व्यक्तित्व का बहुत बड़ा हाथ था। नाटककार उसके 'लीडर' रूप में लोगों की प्रचलित तल्लीनता को तोड़कर उस 'एक्टर'को भी दिखानाचाहता है। उसकी एक्टर की युक्तियाँ-प्रवेश, प्रस्थान, टाइमिंग, उसकी परफेक्ट ट्यूनिंग को लोग समझ नहीं पाये। जब वह स्वाँग कर रहा होता तो वे भ्रमित हो जाते और मुँह की खाते। माउंटबैटन भी उसे लेकर अक्सर चकरा जाता। उसे लगता जिन्ना सुन नहीं रहा या अनसुना कर रहा है...अक्सर उसके व्यक्तित्व को पहेलीनुमा मान लिया जाता जिसे वह बड़ी निपुणता से अपने हक में इस्तेमाल कर लेता।'' नाटककार लीडर जिन्ना और एक्टर जिन्ना के अन्तर्सम्बन्धों को चित्रित करता है और अभिनेताओं से भी उनके भीतर पैठने की आशा करता है। जिन्ना की एक आदत का- साबुन से रगड़-रगड़ कर बार-बार हाथ धोने का इस्तेमाल नाटक में जिन्ना के अवचेतन के रहस्य, मनोवैज्ञानिक दबावों को खोलने के लिए कई बार किया गया है जो बहुत सार्थक है।

दो अंक और कई दृश्यों के इस नाटक में गाँधी की उपस्थिति, गाँधी और जिन्ना के विचारों की टकराहट और जिन्ना के मन में गाँधी को हराने, उन्हें छोटा

दिखाने की बात प्रभावित करती है। अंक दो में पाकिस्तान बनने की त्रासदी और विडंबना का, पाकिस्तान के गवर्नर जनरल बने जिन्ना के द्वन्द्व का चित्रण है। अन्य राजनैतिक पात्रों के जरिये भी हिन्दू-मुसलमान के नाजुक प्रश्नों को उठाया गया है। हमीद, हनीफ और बदरू पात्र यहाँ भी मिलकर नाटक के कथ्य को जोड़ते-विकसित करते और रोचक बनाते हैं। नाटक की भाषा उर्दू प्रधान हिन्दी है जो उसकी माँग है। जिन्ना की मानसिक स्थिति के चित्रण के लिये अंग्रेजी कविताओं का प्रयोग भी किया गया है। सबसे स्वाभाविक है इसके संवाद - हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी के मिले-जुले रूप में नितांत व्यावहारिक, राजनैतिक और बातचीत का टोन, अदायगी लिए हुए। अन्य नाटकों की तुलना में यह नाटक अधिक चुस्त और आज की भाषा का नाटक है। मंचनों से ही इसकी सार्थकता का अनुभव हो सकता है। रंगमंच वस्तुतः एक नाटक का सही मूल्यांकन-परीक्षण-विश्लेषण करता है। 'मिस्टर जिन्ना' की भूमिका से राजनैतिक घटाटोप और प्राइवेट जिन्दगी पर पड़े पर्दों के पीछे जिन्ना के व्यक्तित्व को रंगमंच की भाषा में निकाल ले आने में लेखक का अन्तर्बाह्य संघर्ष अनुभव किया जा सकता है।

इस प्रकार नरेन्द्र मोहन एक नाटककार के रूप में इस कथन को नकारते हैं कि हिन्दी में मौलिक नाटकों का अभाव है या यह कि नाटक लिखे नहीं जा रहे हैं। लगातार अपने छः नाटकों से उन्होंने मानवीय संवेदना को और व्यापक सामाजिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक सरोकारों को 'नाटक' के रूप में आकार दिया है जिसमें उनकी खोजी वृत्ति, अनवरत् बाह्य और आंतरिक संघर्ष और खतरों से लड़ने -जूझने की चुनौतियों का एहसास होता है। अनेक स्तरीय चरित्रों की रचना से अभिनेताधर्मी रंगमंच की परिकल्पना को भी उन्होंने साकार किया है और भारतीय रंगमंच की अवधारणा और जनजीवन में व्याप्त लोकधर्मिता को भी - जहाँ शैली-शिल्प गौण हो जाता है, लेकिन अनेक स्तरीयता, प्रतीकार्थ, बिंबात्मकता, कविता, संगीत जैसे तत्त्व उनके कवि होने के कारण इन नाटकों में उभरते हैं। कहते हैं भाषा शक्ति का समग्र विकास, उसका विलक्षण सौन्दर्य नाटक में ही आता है, क्योंकि वह 'लिखित' शब्द को वाचिक, उच्चरित वैभव देता है-ध्वनियों का, व्यंजनाओं का, क्रिया का। कायदे से उसका हर शब्द कार्य होना चाहिए। जब तक संभावनाओं की लंबी रैंज नाटक की संरचना में, भाषा में नहीं मिलती, तब तक वह 'नाटक' नहीं लगता। काव्य-भाषा से नाट्य-भाषा तक आने की जटिल प्रक्रिया से उनके नाटक गुजरते हैं। सभी नाटकों में छंद, लय, भाषा, युग-स्वर की अभिव्यक्ति होने के कारण नरेन्द्र मोहन के नाटकों में जो सामूहिक प्रतिवाद का स्वर है और मानवीय राग है, उससे वे लोकमानस के नाटक हैं और प्रासंगिक भी।

नये नाट्यालेखों पर मैं हमेशा लिखती रही हूँ खासकर यह कि नाटक विधा का यूँ गुम हो जाना नाट्यकार की सत्ता का, उसकी भूमिका का ही न होना एक खतरनाक स्थिति है- साहित्य और संस्कृति, रचनात्मक अन्वेषण और रंगमंच के सृजनात्मक चिन्तन दोनों में ही। स्वयं मैंने हमेशा नये नाटकों को उठाया भी। इस प्रक्रिया से लगातार रंगालेखों और नाटक की रचनात्मक प्रक्रिया सम्बन्धी अनेक सवाल उठते भी रहे। मुझे नहीं लगता कि किसी अच्छे नाटक या नाटककार को इस प्रकार के प्रश्नों में उलझना चाहिए कि नाटक का फार्म क्या है, वह फैंटेसी है, कामेडी है या व्यंग्य या फार्स ? उसे भीतर तक एक पुष्ट, संगठित और अर्थ प्रधान नाटक होना चाहिए। इधर चारों ओर नये नाट्यालेखों पर बल्कि नाटक और रंगमंच के बुनियादी तत्त्व- आलेख पर चर्चा छिड़ी है। 'रंग प्रसंग' के संपादक नीलाभ जी का पत्र मेरे पास आया है जो आज के संदर्भ में 'आलेख' पर छिड़ने वाली बहुआयामी बहस पर केन्द्रित है- पूरे इतिहास और नाटक रंगमंच के बीच उठी लंबी बहस को समेटते हुए। सारे प्रश्न बेहद सच्चे और जरूरी है। हालाँकि पत्र केवल सूचनार्थ है। मुझसे जवाब या बहस माँगी नहीं है, लेकिन प्रश्न और बहस की कोशिशे अच्छी हैं। आंतरिक विरोधों बल्कि अन्तर्विरोधों के कारण ही हम आगे नहीं बढ़पाते। प्रभात भट्टाचार्य का 'मुक्तिकथा' नाटक एक सामान्य काव्यनाटक नहीं है, वह रंगमंच और नाटक विधा को, बल्कि नाट्य चिंतन और रंगदर्शन को 'अंधायुग' की तरह नयी प्रयोग दृष्टि और सर्जनात्मक चेतना देने वाली रचना है, लेकिन वह यूँ ही पड़ा रहा। विभिन्न मंचनों से ही अनेक स्तरीय प्रभाव आता है और बदलाव भी आता है- लेखन से लेकर निर्देशन, अभिनय और चिंतन में।

इन सारे अवरोधों और सन्नाटे के बीच भी नरेन्द्र मोहन बराबर लिख रहे हैं। इस समय उनके तीन नाटकों की चर्चा करना चाहूँगी - 1. हद हो गयी यारो (2009),2. 'मंच अँधेरे में (2010), 3. मलिक अंबर (2012)। 'हद हो गयी यारो' रंगकर्मी गिरीश रस्तोगी को ही समर्पित है। मैं उसकी समीक्षा इसलिए नहीं कर रही हूँ, बल्कि इसलिए कि यह बहुत सुगठित और व्यंजक और रोचक नाटक है। पाखंड, राजनीतिक दुश्चक्र, धार्मिक आडंबर के घृणित रूप को, दलित के नाम पर बेहद सख्ती, चलताऊ प्रवृत्ति को नाटककार ने बड़ी बेबाकी से खोला है। दो नर्तकियाँ वृहत् संदर्भों में आपको बाँधती चलती है। 'अँधेर नगरी' की तरह यह नाटक आपको हर क्षण नित नया, ताजा बनाता हैं आरंभ में प्रसिद्ध निर्देशक एरियन मनाऊचकिने की विश्व रंगमंच दिवस (2005) पर उनकी लंबी कविता 'सहायता करो' ध्यान आकृष्ट करती है - *''रंगमंच मुझे बचा लो, मैं सोता हूँ, जगा दो मुझे''* हमें बाँधती है। इसके बाद जब मंच अँधेरे में आता है तो खाली मंच की त्रासदी जैसे मूर्त्त हो उठती है। पूरे नाटक में आज का अँधेरा, चारों ओर फैला हुआ शून्य, रंगमंच, भाषा, कला और संस्कृति से जुड़े बहुत सारे प्रश्न भयंकर त्रासदी के साथ खड़े कर दिये गये हैं। खाली मंच को मूर्त्त कर देने की रंग-संभावनाएँ हर सर्जनात्मक निर्देशक, हर अभिनेता, हर आलोचक पर अपने-अपने ढ़ंग से हैं। सब अनुभवों के बाद अपने-अपने स्थान पर अकेले हैं और यह खाली मंच व्यापक अर्थ-व्यंजनाओं के साथ हमें हिला डालता है। यह केवल कलाकार की, आज की पीड़ा नहीं है, वह बहुत भयानक, व्यापक त्रासदी है। हर नाटक नाटककार की आंतरिक बेचैनी, उसके अन्तर्द्वन्द्व शाश्वत सांस्कृतिक प्रश्नों को अपनी रंगभाषा में बहुत बड़े वर्ग तक पहुँचाता है। चारों ओर फैली सत्ता-प्रवृत्तियाँ, आतंकवाद, हैवानियत, रेप, दहशतगर्द माहौल से नाटक-नाटककार ग्रस्त है। नाटक मंच पर रोक दिया जाता है। एक बड़ा प्रश्न उठता है- क्यों? विश्वव्यापी भयानक वातावरण मूर्त्त हो उठता है। कठपुतलियों का दीवार से निकलना, हाथों में लाठी, छुर्रे, बंदूकें रंग-विरोधी स्थितियों को मूर्त्त कर देती हैं। कलाकार जैसे आत्मघाती दौर से गुजर रहे हैं और कलाकार भी तो एकजुट नहीं हैं। व्यापक राजनीतिक तंत्र के साथ-साथ शहर की राजनीति भी नाटक को प्रभावित करती है। भीतरी ऊर्जा और जिजीविषा में ही रंगमंच जीवित है। सारे विरोधी स्वरों के बीच में याद रहता है वही स्वर - 'शो मस्ट गो आन।' ज्यादातर ऊर्जा और जिजीविषा के वे स्वर नरेन्द्र मोहन स्त्री पात्र को देते हैं।

उपर्युक्त दोनों नाटकों की तुलना में 'मलिक अंबर' (2012) अपने विषय, इतिहास की खोज और नवीनतम से प्रभावित करता है लेकिन अपनी संपूर्ण संरचना से उतना नहीं, जितना वे दोनों नाटक। मलिक अंकर एक हब्शी है, गुलाम है। उसके समूचे व्यक्तित्व को समझने के लिए उस पूरे युग का, अनेक आत्मकथाओं, जीवनियों, डायरियों, यात्रा-वृत्तान्तों का गंभीर अध्ययन नाटककार ने किया है। गुलाम मानसिकता से मुक्ति का जो स्वप्न देखा है, वह अद्वितीय है। अच्छा होता, वह और भी ज्यादा व्यंजक भाषिक अदांज में, ध्वनियों, अंतर्ध्वनियों की गूँजों के साथ पूरे नाटक में स्वतः फैलता चला जाए। ज्यादातर कुछ चरित्रों के संवादों के साथ स्थितियाँ बनती हैं। एक पूरे युग की संरचना करते हुए नये समाज की नये युग की परिकल्पना इस नाटक से साकार होती है। नरेन्द्र मोहन ने हमेशा संवाद, परिचर्चा, बहस को प्रधानता दी। यह खुलापन उनमें है। जब मैंने ''अभंगगाथा'' किया था तब भी वह रंगालेख के लिए तैयार था। मैं ही उन्हें नहीं दे पायी। प्रस्तुति के लिए तैयार किया गया रंगालेख अपने में बेहद संगठित, सशक्त था और उस अवसर पर दर्शकों में यहाँ बाहर से एक आयोजन में अनेक शिक्षक, आलोचक थे। सभी को अभंगगाथा की प्रस्तुति और स्वयं नाटक बहुत पसंद आया था। उसका प्रदर्शन बाहर भी होना था, लेकिन कई कारणों से संभव नहीं हुआ। नरेद्र मोहन के ये तीनों नाटक उस समूचे संघर्ष और अंतर्व्यथा को दिखाते हैं जो नाटक विधा और नाटककार झेल रहा है। स

डॉ. गिरीश रस्तोगी
गोरखपुर उ.प्र.

साक्षात्कार

नाटककार पहला रंगकर्मी होता है जो शब्द को रंग और संदर्भ देता है

(नरेन्द्र मोहन के साथ तरसेम गुजराल की बातचीत)

हाल ही में दिल्ली में किसी संस्था द्वारा आपके नए नाटक 'अंबर हब्शी' के वाचन का आयोजन हुआ। जांलधर में आपने बताया था कि अंबर हब्शी महाराष्ट्र के उपेक्षित महानायक मलिक अंबर को लेकर रचा गया है। इस उपेक्षित नायक के बारे में थोड़ा खुलासा करें।

दिल्ली 'रचना पर्व' के बाद मुम्बई ('आविष्कार रंग संस्था) और चण्डीगढ़(चण्डीगढ़ साहित्य अकादमी) में भी 'अंबर हब्शी' नाटक के वाचन का सिलसिला चलता रहा है। संभव है दिल्ली से पहले यह नाटक मुम्बई और चण्डीगढ़ में खेला जाए। नाटक को सुन कर दोनों जगहों के रंगकर्मियों, नाटक प्रेमियों और सामान्य पाठकों में भी गहरी दिलचस्पी और उत्साह नजर आया। यह कम ही होता है कि नाटक सुन कर एक साथ कई निर्देशक उसे खेलने के लिए उमड़ आएँ। खैर, यह प्रारंभिक प्रतिक्रिया है। नाटक का मंचन क्या रंग लाएगा देखता हूँ।

हाँ, यह सही है कि यह नाटक महाराष्ट्र के उपेक्षित महानायक मलिक अंबर पर केन्द्रित है। हब्शी, गुलाम के रूप में तीन-तीन बार बिकता है और यातना के मर्मान्तक दौरों से गुजरता है - अपने से और परिस्थिति से जूझता-लड़ता हुआ। 17वीं सदी के प्रारंभ में वह अहमदशाही का सर्वोच्च, सेनापति और प्रधानमंत्री बनता है। शिवाजी के नाना, दादा और पिता उसके दरबार में सरदार/सेनापति रहे। सुल्तान उससे भय खाते। अहमदशाही, कुतुबशाही और आदिलशाही को मुगलों के खिलाफ संगठित करने की उसी ने पहल की। वही था जिसने गौरिल्ला वॉर फेयर का समारंभ किया। वह खुद को इस देश का बाशिंदा मानता था और मुगलों को विदेशी। इसीलिए मुगलों से उनकी हमेशा ठनी रही। दक्कन पर कब्जा करने के आकांक्षी जहाँगीर को, मुगलों को उसने कई बार परास्त किया। इथोपिया से खदेड़ा गया अंबर हब्शी, दरअसल इस धरती से गहरे स्तरों पर जुड़ाव महसूस करता है और उसी में अपने जीने और होने की पहचान को जोड़ देता है। वह नगरशिल्पी और जल का जादूगर है। घर की तलाश में वह बंजर इलाकों में नहरों का जला बिछा देता है और खड़की जैसे छोटे से गाँव को आलीशान शहर का रूप दे देता है और उसे अपनी राजधानी बनाता है। अपने वक्त में वह धर्म निरपेक्ष समाज का ताना-बुना बुनता है।

श्यामानंद जालान ने जब लहरों के राजहंस का मंचन करना था तब मोहन राकेश से कई बार पत्र व्यवहार हुआ, लेकिन बात कुछ बनती नजर नहीं आयी फिर मोहन राकेश को कलकत्ता बुलवाया। मोहन राकेश महीना भर कलकत्ता रहे। घंटों बातचीत होती और आलेख में परिवर्तन किये गये। क्या आपके किसी नाटक की प्रस्तुति में भी कुछ ऐसा अनुभव हुआ है?

रचना के तीन क्षणों की बात मुक्तिबोध ने की है, मगर नाटक के सृजन/लेखन में एक चौथा क्षण नाटक की प्रस्तुति का होता है जब कोई निर्देशक आलेख को मंचन के लिए उठाता है। यह क्षण बड़ा नाजुक है। निर्देशक की जरा-सी चूक या असावधानी नाटक को डूबो सकती है और उसका सृजनात्मक विवेक नाटक के स्तर को उठा भी सकता है। एक अभिनेता की अवांछित गति, चेष्टा / अभिनय पूरे नाटक की लय को बिगाड़ सकता है। इसलिए नाटक की प्रस्तुति में नाटककार और निर्देशक की आपसी समझदारी बहुत जरूरी है। श्यामानंद जालान और मोहन राकेश की जिस बातचीत की तरफ आपने संकेत किया है, उसमें नाटककार और निर्देशक को शामिल होना ही होता है। अच्छा और कल्पनाशील निर्देशक, आलेख में काँट-छाँट करने से पहले लेखक से सलाह-मशविरा करता ही है। इस प्रक्रिया में अगर नाटककार निर्देशकीय तर्कों से कंविस हो जाता है तो वह अपेक्षित परिवर्तन कर सकता है, अन्यथा नहीं। श्यामानंद जालान के तर्कों में जरूर ताकत रही होगी तभी मोहन राकेश 'लहरों के राजहंस' में परिवर्तन करने पर राजी हुए, नहीं तो वे ऐसे लेखक थे जिसे अपने नाटकीय शब्द में बड़े से बड़े निर्देशक का हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं था। जहाँ तक मेरा ताल्लुक है मैं किसी निर्देशक से बातचीत के लिए हमेशा तैयार रहता हूँ। किन्हीं शब्दों या प्रसंगों में हेर-फेर की गुंजाइश हो तो वैसा करने में भी कभी गुरेज नहीं करता। अरविन्द गौड़ (निर्देशक कलंदर, मि जिन्ना) कहै कबीर... की प्रस्तुति के दौरान देवेन्द्रराज अंकुर, गिरीश रस्तोगी (निर्देशक अभंग गाथा) और आर.एस. विकल (निर्देशक मि. जिन्ना और मंच अँधेरे में, जैसे निर्देशकों के साथ मैं शब्द और रंग के कई मिले-जुले अनुभवों से गुजरा हूँ। नाटककार, निर्देशक की आलेख में गहरी सहभागिता और एक-दूसरे को समझने के खुलेपन से ही यह संभव है।

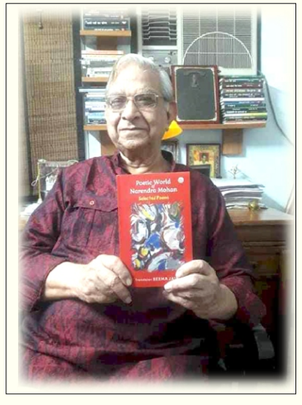

'कहै कबीर सुनो भाई साधो' में आपने कबीर को किस तरह ग्रहण किया?

'कहै कबीर' नाटक वर्तमान से अतीत में जाता है और अतीत से पुनः वर्तमान में। इधर की परिस्थितियाँ मुझे कबीर तक ले गयीं और कबीर की वाणी मुझे 'आज' में बिछी हुई दिखी। नाटक का कार्य व्यापार इसी कशमकश/नाटकीय द्वन्द्व की देन है। कबीर की जीवनी और वाणी एक-दूसरे में गुँथी हुई है। जीवनगत प्रसंगों और वाणी एक तरह से उनकी आत्मकथा है 'आत्म' की गहनता, पारदर्शिता से लैस बेधक प्रसंगों, चुनौतियों और जीवन-दृष्टि के साथ। मैं इस आत्मकथा के एक नये पाठ-पुनर्पाठ से गुजरने लगा और मेरे सामने वाणी के पाठ की नयी तहें खुलने लगीं। ऐसे प्रसंग और संदर्भ कौंधने लगे जो मुझे पहले कभी नजर नहीं आये थे। समाज की गली-सड़ी व्यवस्था को बदलने की चेतना उपजाना, फटकार कर सच कहना और सच को अमल में लाने का विचार नाटक में निरंतर विकसित होता चला है और वही नाटकीय उत्कर्ष का बिन्दु है।

मंचन के हिसाब में यदि आपको नाटक के कुछ हिस्सों का पुनर्लेखन करना पड़े तो कैसा लगता है?

मंचन/प्रस्तुति के लिए नहीं। हाँ प्रस्तुति या मंचन को देखते हुए या पूर्वाभ्यास के दौरान अगर मुझे कोई शब्द अखरता है या दृश्य अपूर्ण लगता है या चरित्र की रैंज में कुछ कमी लगती है तो मैं उस दिशा में काम करता ही हूँ। आपके दूसरे प्रश्न के उत्तर में सृजन के चौथे क्षण की जो बात मैंने की है उसकी परिपूर्णता की खातिर दृश्यों पर काम होता ही रहता

है। नाटक और रंगकर्म अलग-थलग नहीं है। अभिनेता, निर्देशक की भूमिकाओं के साथ एक तरह से यह एक समवेतकला ही है। नाटककार भी महज लेखक नहीं है। मेरे विचार में वह पहला रंगकर्मी है जो शब्द को रंग और संदर्भ देता है। रंगकर्म में वह किसीभी सूरत में बाहर का आदमी नहीं है।

कविताएँ रचते हुए और आलोचना कर्म का हिस्सा होते हुए कब यह अहसास हुआ कि आपके भीतर एक नाटककार छिपा हुआ है?

मेरी कविताओं, खासतौर पर लंबी कविताओं की संवाद रचना और प्रदर्शनकारी कलाओं में मेरी दिलचस्पी शायद मुझे नाट्यलेखन की तरफ ले गयी। गहरी संसक्ति के भीतर से तटस्थता अर्जित करने, अपने अनुभव का आलोचक बनने के विवेक ने भी शायद मुझे नाट्यालेखन की तरफ प्रेरित किया हो।

आप जब नाटक का केन्द्र बीते युग के पात्र/नायक को बनाते हो, तब समकालीन प्रश्न आप पर हावी नहीं होते?

समकालीन प्रश्न ही मुझे इतिहास में, बीते युग के पात्रों और नायकों के बीच ले जाते हैं और मैं उन्हें 'आज' की परिस्थितियों और संदर्भों में, इतिहास के एक बड़े फलक पर देखने लगता हूँ। यह 'देखना' मुझे स्थितियों और दृश्यों की भीतरी हलचलों की तरफ ले जाता है और मैं परिस्थितियों और पात्रों के द्वन्द्वों से गुजरता हुआ गूँगा होने के संकट से बच जाता हूँ और गहराई और व्यापकता के आयामों को पाने लगता हूँ।

मंटो की कहानियों ने आपको किस तरह प्रभावित किया? 'नो मैंस लैण्ड' की रचना के समय विभाजन से किस तरह आहत थे?

मंटो की कहानियों से मैं बेहद प्रभावित/प्रेरित रहा हूँ। 'टोबा टेक सिंह', 'खोल दो', 'ठंडा गोश्त' कहानियाँ और 'स्याह हाशिए' की लघुकथाएँ विभाजन की त्रासदी के नाजुक, कसकते-दुखते संदर्भों तक ले ही जाती है। ये कहानियाँ निस्संदेह भारतीय उपमहाद्वीप की चेतना में दाखिल हो चुकी है। 'नो मैंस लैण्ड' लिखते हुए विभाजन की विभीषिका दृश्यों, गतियों में मुझे घेरती रही है। उपर्युक्त तीनों कहानियों का मैंने 'नो मैंस लैण्ड' में नाटकीय संयोजन किया है।

आपने विभाजन झेला है। विभाजन पर रचित हिन्दी कृतियों में क्या वही मानवीय पीड़ा उभर सकी?

विभाजन विश्व इतिहास की एक बहुत बड़ी दुर्घटना है। उस दुर्घटना के बरक्स जितना बड़ा और मार्मिक साहित्य लिखा जाना चाहिए था उतना नहीं लिखा गया। हाँ, भारतीय भाषाओं की कहानियों को समग्र रूप में देखें तो कई अच्छी कहानियाँ और उपन्यास लिखे गए हैं जिसने कथा ढाँचे और कथा-दृष्टि को नयी रंगत में ढाला है। यह साहित्य एक तरह से समांतर इतिहास है। विभाजन के इतिहास से कहीं ज्यादा प्रामाणिक और विश्वसनीय जो इतिहास में दिख रहे अन्तरालों को भर सकता है, उसकी पुनर्व्याख्या में सहायक हो सकता है।

जालंधर, (पंजाब)

निर्देशकों के अभिमत

नरेन्द्र मोहन ने लगभग बीस-बाइस साल की अवधि में अलग-अलग कथ्य को उठाते हुए सात (नौ) नाटक लिखकर अपनी नाट्यप्रतिभा का परिचय दिया है। अच्छी बात यह है कि वे लगातार नाटक लिख रहे हैं, और उम्मीद है, वे कुछ और नए, सशक्त नाटक लेकर आयेंगे।

देवेन्द्र राज अंकुर, दिल्ली

अभंग-गाथा के प्रस्तुतिकरण को मैंने किसी खास शैली में नहीं बाँधा। न लोक में न शास्त्रीय में, न प्रयोगात्मक शैली में। मुझे प्रसन्नता है कि अभंद छंद का जैसा गायन मैं चाहती थी, वह संप्रेषित हुआ।

श्रीमती (डॉ.) गिरीश रस्तोगी, गोरखपुर

यह नाटक (अभंग-गाथा) मेरे भीतर घुमड़ता रहा है। यही वह बिन्दु है जो नाटक को मेरे लिए आज की ज़िन्दगी के घमासान में ले आया है और यहीं से मेरे सामने दृश्य और गति के मंचीय संयोजन आकार लेते गए हैं।

सतीश दवे, उज्जैन

मि.जिन्ना नाटक बेशक जिन्ना की द्वंद्वात्मक राजनैतिक यात्रा पर आधारित है मगर मेरी नज़र में वह उसकी मानसिकता की रंग-बिरंगी पेंटिंग है। हिंसा और करुणा के छीटों के बीच मुझे एक चिकनी मछली सा अतियथार्थ उभरता दिखाई दिया छिपा जो धीरे-धीरे महात्मा गाँधी को मूर्त रूप ग्रहण कर लेता है। उसी संयोजन को गढ़ते हुए महात्मा गाँधी की साक्षी समूचे घटना कोलॉज को कलाकार अभिनीत करते हैं। वे इस कोलॉज के कब घटक होते हैं और कब संघटक, पता नहीं चलता। लगातार हुए अनेक प्रदर्शनों ने खूब सराहना बटोरी।

आर.एस.विकल, मुम्बई

नाटककारों/समीक्षकों के अभिमत

नरेन्द्र मोहन की दृष्टि समय की धुंध को चीरकर अनास्था के स्थान पर आस्था को स्थापित करती है, अक्रिया के स्थान पर क्रिया की रचना करती है। कथ्य का क्रिया हो जाना ही उसके नाटकों की संरचना है।

डॉ.पवन कुमार मिश्र, उज्जैन

नरेन्द्र मोहन नाटकों में इतिहास, कहीं मिथकों और कहीं किंवदन्तियों को वर्तमान के साथ जोड़ते नज़र आते हैं। सामाजिक बदलाव के लिए उनकी मानसिक बेचैनी इन नाटकों में ध्वनित होती है। नाटकों की वस्तु अपने समय में भी है और समयेतर भी।

प्रताप सहगल, दिल्ली

शब्द और रंग की सम्मिलित, अपूर्व अनुगूंजें लिए हिन्दी नाट्यालेखन की सारी आशंकाओं और शून्यता के बीच अपनी रंग-चेतना, आन्तरिकता, संवेदनशीलता, संघर्षशील, सामाजिक, राजनीतिक दृष्टि और रंग-शिल्प के साथ, निश्चित ही नरेन्द्र मोहन अपनी अलग पहचान बनाते हैं।

डॉ.गुरचरणसिंह, दिल्ली

संवादों की काव्यमयता, नाटकीयता और सूक्ष्मता नरेन्द्र मोहन के नाटकों को जहाँ ब्रेख्तीय गरिमा और कथ्य की बहुस्तरीयता प्रदान करते हैं, वहीं उन्हें समसामयिकता के साथ-साथ शाश्वतता भी देते हैं।

डॉ.माहेश्वर, दिल्ली

विषय और समस्या, नाटकीय उद्देश्य और प्रभाव की दृष्टि से उनके नाटकों में वैविध्य के साथ गहराई भी है। वस्तु और शिल्प, शैली और प्रयोग की दृष्टि से अपनी अलग पहचान बनाने वाले उनके नाटक एक सशक्त कवि के प्रयोगधर्मी नाटक हैं।

लवकुमार राय, गढ़बनैली

साहस और डर के बीच (डायरी)
(ज़िन्दगी और नाटक : 2012)

नरेन्द्र मोहन

शाम को मैंने रुक्मिनी प्रेक्षागृह औरंगाबाद में नाटक का पूर्वाभ्यास देखा। अभिनेताओं की मेहनत और अभिनय प्रतिभा साफ नज़र आ रही थी और निर्देशक की रंग-दृष्टि भी। नाटक को एक संपूर्ण रंगानुभव के तौर पर उतारने की कोशिश झलकती दिखी। दृश्यों के परस्पर संयोजन और अभिनय में अभी और परिष्कार की ज़रूरत महसूस हुई, खासतौर से हमीदा के मॉनलॉग में जहाँ वह स्वयं को उधेड़ती हुई पूरे परिवेश को उधेड़ती जाती है। युद्ध के दृश्यों को संगीत की ध्वनियों के ज़रिए गढ़ने की कोशिश की गई जबकि मार्शल आर्ट की पद्धति शायद ज्यादा उपयोगी रहती। संगीत अच्छा है और वेशभूषा भी समयानुकूल और पात्रानुकूल है। बड़ी बात यह है कि निर्देशक उस वक्त के वातावरण को सृजित करने में सफल रहा और यह पूर्वाभ्यास मुझे सीधे-सीधे आज के संदर्भों से जुड़ता नज़र आया। रिहर्सल के बाद मैं निर्देशक और अभिनेताओं से मिला। उनका उत्साहवर्धन किया। मलिक अंबर की भूमिका निभाने वाले लड़के ने बड़ा सधा हुआ अभिनय किया था और शेष कलाकारों ने भी अपनी-अपनी भूमिका बखूबी अंज़ाम दी थी। अभी बहुत कुछ करना शेष था। निर्देशक और अभिनेता काम में जुटे हुए थे। उनके चेहरों पर चमक थी। उनके लिए यह एक ऐतिहासिक क्षण था। मैंने देखा वे 'मलिक अंबर' करते हुए तुगलक नाटक के परे झाँक रहे थे। मैंने महसूस किया एक बड़ी प्रस्तुति आकार ले रही है। मुझे लगा, 15 सितम्बर को जब इसका प्रदर्शन होगा तो यह नाट्य-कृति एक अभिनव रंग-कृति के तौर पर स्थापित होगी।

14 सितम्बर

प्रदर्शन हुआ लेकिन देखिए, मैं ही वहाँ न था। जिस प्रदर्शन को देखने के लिए मैं दिल्ली से औरंगाबाद आया, दो दिन पहले रिहर्सल देखी, उसी प्रदर्शन को मैं न देख सका। जिस प्रदर्शन को देखने का इंतज़ार मुझे पता नहीं कब से था, वह इंतज़ार में ही दफ़न हो गया वेटिंग फॉर गोदो...नहीं नहीं...इसे त्रासदी ही कहेंगे कि 15 सितम्बर को प्रदर्शन के लिए एक दिन पूर्व सितम्बर की सुबह के दो घंटे मेरे लिए बड़े घातक रहे। बी.पी. जरा नीचे क्या आया और नब्ज थोड़ी ढीली क्या हुई (जैसा कि दिल्ली में रहते हुए अक्सर हो जाती थी) कि डॉक्टर ने मुझे डराने में कोई कसर न छोड़ी। मैंने पहली बार देखा डॉक्टर मरीज के लिए कैसे भय का वातावरण तैयार करता है। एक तरह वह मुझे इलाज के लिए कह रहा था, दूसरी तरफ़ वहाँ से भगाने के लिए। उसका फरमान साफ था 24 घंटे अस्पताल में डॉक्टर की निगरानी में रहूँ या दिल्ली लौट आऊँ। डॉक्टर की निगरानी में रहने के लिये मैं तैयार था मगर सवाल था मेरी देखभाल का। मैं जानता था हालत वैसी खराब नहीं है जैसी बताई जा रही है। मैं वैसा कुछ महसूस भी नहीं कर रहा था। उस वक्त में भी भयातुर-सा ज़िन्दगी और नाटक के बीच चाँप लिया गया। नाटक देखना मेरे लिए एक प्रदर्शन देखना-भर नहीं था, यह उस अनुभव में शिरकत करना था जो ज़िन्दगी और मौत के बीच यकसाँ फैला हुआ है। अपने ही नाटक को मंच पर होते हुए देखना मेरे लिए भरी-पूरी ज़िन्दगी के विभिन्न दौरों में दाखिल होने के बराबर था, मेरे कई-कई बार होने का हिस्सा था। उस वक्त मैंने अपने उस हिस्से को मरते हुए देखा और मैं अन्दर ही अन्दर तड़प उठा, बुरी तरह आहत हुआ। मैं कई तरह के तनावों और तकलीफ़ों से गुज़रता हुआ हवाई जहाज से दिल्ली लौट आया। यही वह शाम थी जब मुझे 'महाराष्ट्र दर्पण' जैसे दो दिवसीय कार्यक्रम का उद्घाटन करना था और अगले दिन 'मलिक अंबर' का प्रदर्शन देखना था, लेकिन देखिए क्या ग़ज़ब हुआ कि मैं दिल्ली में बैठा हुआ बेटी और बच्चों के साथ चाय पी रहा था।

15 सितम्बर

मैं वापिस आ गया, 'मलिक अंबर' नाटक का मंचन देखे बिना, मौत के डर से भयभीत। मंचन और मौत, आप भी कहेंगे यह माजरा क्या है? वैसे तो नाटककार अपने हर पात्र के साथ जीता-मरता है, उनकी ज़िन्दगी जीता हुआ भी अपनी ज़िन्दगी जीता है। पूरी शिद्दत से वह रहता दोनों तरफ़ हैं। कबीर ने, तुकाराम ने, दॉस्तोवास्की ने ज़िन्दगी में मौत को और मौत में ज़िन्दगी को महसूस किया था। मैं तो उनके पासंग भी नहीं हूँ, लेकिन उन दिनों मैंने हल्का-सा वैसा स्वाद चखा। इस स्वाद को मैं पात्रों का हिस्सा बनाता गया और उनसे

अलग भी होता गया। नाटक के अंत में मलिक अंबर मरता दिखता है और यह मरण रंगमंचन में दर्शकों में वैसी अनुभूति जगाता भी है पर मैं रंग-दर्शन में इस मरण के साक्षात्कार के बिना मरण की वास्तविक अनुभूति लिए, खाली हाथ लौट आया। संत तुकाराम ने ऐसे ही अवसरों पर मौत से सीधे-सीधे आँख मिलायी थी। खैर, कोई न झॉक सका उन क्षणों के मेरे अकेलेपन की मारक अनुभूति में जिससे मैं गुजरा और चुपचाप जिसे झेलता रहा एक लंबे समय तक और हाँ, 15 सितम्बर की शाम, बेशक उस शाम मैं नाटक न देख सका रुक्मिनी प्रेक्षागृह औरंगाबाद में, मुझे कई आँखें ढूँढती रहीं। उनके फोन, 'काश'! आप नाटक देखते। आपको कहाँ-कहाँ नहीं ढूँढा। कह कर तो जाते....।' मेरे कहने पर नंदिता नाटक देखने के लिए आई पर मुझे वहाँ न पाकर चिंतित हुई। मेरे मित्रों से दरयाफ्त किया तो उसे बताया गया कि वे तो चले गए। उसका फोन आया, 'ऐसा क्या हुआ कि भाग खड़े हुए?' कुछ तो बताते। प्रस्तुति अच्छी थी पर तुम बिन सब फीका लगा।' अजित दलवी का फोन, 'हॉल खचाखच भरा था। मुझे बिल्कुल पीछे सीट मिली। प्रस्तुति लाजवाब रही। आप क्यों चल गए?' इसी तरह के कई और फोन। मैं क्या जवाब देता, उदास-सा सुनता रहा। आपको यकीन न होगा मगर यह सच है कि मैं दिल्ली में पूरा नाटक देखता रहा, कभी जागते कभी सोते हुए। नाटक के सीन कई-कई रूपों में बदलते हुए मेरे सामने आते रहे और मैं उनसे इस तरह गुज़रता रहा जैसे वे मेरे सामने घटित हो रहे हों। नब्ज धीमी चलती रही फिर गति में आ गई। नाटक की सी.डी. मिल गई। जिस नाटक का प्रदर्शन मैं मंच पर न देख सका, उसे मैंने सी.डी. में देखा। एक के बाद एक दृश्य आते-जाते रहे खंड-खंड होते किरदार। एक दृश्य दिखता तो दूसरा गायब। ज़िन्दा प्रस्तुति भला कैसे दिखती? सी.डी.आखिर रिकार्डिंग ही तो है एक-दो कैमरों की आँख से। उससे समग्र प्रस्तुति का मजा कैसे मिलता? मैंने कम्प्यूटर बंद कर दिया और सो गया। सपने में नाटक की वही रील बेतरतीब-सी चलती रही। झटकों में कई बार नींद टूटी, सपना फिर शुरू। सुबह तक यही क्रम चलता रहा। स

garvi gurjari
Gujarat State Handloom & Handicrafts Development Corporation Ltd.
(A Government of Gujarat Undertaking)

Patola | Bandhani | Ajrakh | Rogan | Embroidery | Sujani
Patch Work | Tangaliya | Applique & Many More...

Now purchase exclusive

Handlooms and Handicrafts of Gujarat

Showrooms:
New Delhi | Bengaluru | Hyderabad | Kolkata | Chennai | Lucknow | Mumbai | Ahmedabad | Surat
Kevadiya Colony | Rajkot | Bharuch | Bhuj | Gandhinagar | Anand | Bhavnagar | Vadodara | Surendranagar

Shop online: www.garvigurjari.in

अविरत विकास अग्रसर गुजरात

गुजरात दिखलाता है देश को प्रगति का मार्ग

- जनवरी से अक्टूबर-२०१९ तक आईईएम (इंडस्ट्रियल ऑन्त्रेप्रेन्योर्स मेमोरेंडम) के अंतर्गत देश में हुए कुल पूंजी निवेश में ५१ फीसदी से ज्यादा हिस्सेदारी के साथ गुजरात देशभर में अव्वल
- निर्णायक सरकार का ऐतिहासिक निर्णय: राज्य की सभी आरटीओ चेकपोस्ट को कीया बंद
- नए **MSME** उद्योग शुरु करने के लिए गुजरात सरकार की क्रांतिकारी पहल : ३ साल तक राज्य में किसी भी प्रकार के निर्माण कार्य की मंजूरी तथा लाइसेंस के बगैर नई **MSME** इकाई शुरु करें
- सूर्य ऊर्जा रुफटॉप योजना: समग्र देश में पहली बार २ लाख परिवार अब सूर्य ऊर्जा से उत्पन्न मुफ्त बिजली का स्वयं करेंगे इस्तेमाल और बाकी बिजली बेचेंगे सरकार को
- व्हाली दीकरी योजना: वार्षिक २ लाख रुपए तक की आय वाले परिवारों को पहले दो बच्चों में से बेटियों को कक्षा १ में प्रवेश के समय ४ हजार, कक्षा ९ में ६००० और १८ वर्ष की आयु होने पर १ लाख रुपए की सहायता
- पहले चार चरणों की अभूतपूर्व सफलता के बाद सेवा सेतु कार्यक्रम के पांचवें चरण का राज्यव्यापी प्रारंभ: नागरिकों की समस्याओं का स्थानीय स्तर पर समाधान : सेवा सेतु कार्यक्रम के जरिए ९९.८१ फीसदी आवेदनों का स्थल पर ही त्वरित निस्तारण

गुजरात के सर्वांगीण विकास के लिए राज्य सरकार प्रतिबद्ध है
- नीतिनभाई पटेल, उप मुख्यमंत्री, गुजरात

SARDAR

GSFC Agrotech

Milieu of Benchmarks....
Beyond Convention

Our Endeavours :

Organized Agri-retail | Agri Advisory & Solutions
R&D backed Products - Boronated NPK, SAG Gold, AS (Granular) | D2D - eGram

GSFC Agrotech Limited
Wholly Owned Subsidiary of
GUJARAT STATE FERTILIZERS & CHEMICALS LIMITED
Fertilizernagar - 391 750, Vadodara, Gujarat. www.gsfclimited.com
Toll Free No.: 1800 123 5000

आदिजाति विकास विभाग, गुजरात सरकार, गाँधीनगर

गुजरात में उमरगाम से लेकर अम्बाजी तक पूर्व पट्टी के आदिजाति विस्तार में कुल 53 तालुकाओं का समावेश होता है जिसमें अनुसूचित जनजाति की बस्ती 89.17 लाख है जिसके ऊपर गुजरात सरकार ने आदि जाति के सर्वांगी कल्याण कार्यक्रम वनबन्धु कल्याण योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित मुद्दों पर कार्य 1,00,954 करोड़ रू. का आवंटन किया गया।

सर्वांगी विकास को समर्पित मुख्यमंत्रीजी के 10 मुद्दों का कार्यक्रम (वनबन्धु कल्याण योजना)

- 5 लाख कुटुम्बो के लिये रोजगार लक्षी कार्यक्रम
- शिक्षण की गुणवत्ता और उच्च अभ्यास पर भार
- आदिजाति विस्तार का आर्थिक विकास तीव्रता से हो
- सभी के लिए आरोग्य
- बिजली की सार्वत्रिक उपलब्धता
- सभी के लिये घर
- पीने के लिये पानी
- सिंचाई
- बारमासी रास्ते
- शहरी विकास

गुजरात के बहुलक आदिजाति विस्तार 14 प्रायोजना विस्तार में विस्तारित है

1- पालनपुर-बनासकांठा
2- खेडब्रह्मा-साबरकांठा
3- दाहोद-दाहोद
4- गोधरा-पंचमहाल
5- छोटाउदेपुर-छोटाउदेपुर
6- राजपीपला-नर्मदा
7- भरूच-भरूच
8- मांडवी-सूरत
9- सोनगढ़-तापी
10- वांसदा-नवसारी
11- वलसाड़-वलसाड़
12- आहवा-डांग
13- मोडासा-अरवल्ली
14- लुणावाडा-महिसागर

शुभेच्छक आदिजाति विकास विभाग

रेखांकित

अच्युतानंद मिश्र की कविताएँ

युवा कवि अच्युतानंद मिश्र के लिए जीवन की किसी घटना या क्षण को देखना महज आँखों से देखना नहीं बल्कि कविता के जरिये गहरे महसूसना है। वे चीजों को उदासीन और तटस्थ भाव से नहीं देखते बल्कि उन्हें कविता के जरिये आत्मसात् करते हैं। इस कारण वह घटना मात्र भौतिक जगत की घटना न रह कर काव्य का एक घटक बनकर हमारे सामने आती है-एक भिन्न स्वरूप में! पहली ही कविता 'नाम में क्या रखा है' यूँ महज एक दृश्य लगता है जिसमें नाम को लेकर एक विभ्रम है लेकिन दरअसल यह विवशता, उदासी, बेचैनी और उम्मीद के दृश्य हैं जो हमें कविता की चरम पंक्ति 'आखिर शेक्सपीयर ने क्यों कहा था' के जरिये अनुभूत होते हैं। क्लाइमेक्स की किसी पंक्ति से एक साधारण-सा दृश्यबंध किस तरह असाधारण हो उठता है, यह कविता इसकी बानगी है। 'शराब के नशे में' कविता मनुष्य की उस कमजोरी की व्यथा-कथा है जो नशे में अपने लिए एक फैंटेसी रचता है-'शराब के नशे में धुत आदमी/ अपने रतजगे में बुहारता है/ सबसे ठंडी रात को/ पृथ्वी से बाहर।' यहाँ लानत नहीं है, मानवीय कमजोरी का कथित उदात्तीकरण भी नहीं है। यदि है तो एक सामान्य-से मनुष्य के पक्ष में खड़े होने की अदम्य आकांक्षा और वह भी उसकी तमाम नाकामियों के साथ! एक व्यक्ति की रोजमर्रा विवशताओं के वृत्त में कवि इतने गुपचुप दाखिल हो जाता है कि पता ही नहीं चलता। 'बड़े कवि से मिलना' एक छोटी और मारक कविता है जिसमें साहित्य-जगत के समकालीन दंभ, स्नॉब, आत्ममुग्धता और चालाक स्वार्थ को उद्घाटित किया गया है। यहाँ सफलता की कथित सीढ़ियाँ चढ़चुके लेखक महाशय के 'उतरने' की क्रिया को भेदना होगा। मतलबपरस्ती, अलगाव, ईर्ष्या और अभिमान के इस कला-दौर में एक ही रास्ते के भीतर दो रास्ते होते हैं। युवा कवि अच्युतानंद समूचे दृश्य को एक झीने-से आवरण से ढँक देते हैं ताकि आप उस पारदर्शिता में से भली-भांति झांक सकें। 'महाभारत' शृंखला की छोटी-छोटी कविताओं के जरिये युवा कवि ने वर्तमान परिस्थितियों के आलोक में अपने समय के महाभारत को देखने की कोशिश की है। कवि इसे रूढ़होने की प्रक्रिया के विरूद्ध एक महाकाव्यात्मक प्रयत्न कहते हैं और वह है भी। 'महाभारत' के बारे में कहा गया है कि -'इदं कविवरैःसर्वैरास्व्यानमुपजीव्यते'-याने सभी श्रेष्ठ कवि इस आख्यान का आश्रय लेते हैं और लेते रहेंगे। सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने अपने ग्रन्थ 'भारत में महाभारत' की भूमिका में सच ही लिखा है कि महाभारत कितनी विपरीतताओं का महासमर है। यहाँ इनका द्वन्द्व ही नहीं युग्म भी है-करूणा और क्रोध, घृणा और प्रेम, ईर्ष्या और सहिष्णुता, ऋजुता और वक्रता, स्वार्थ और परमार्थ, आत्मपीड़न और परपीड़न, बंधन और मुक्ति, भोग और मोक्ष इत्यादि। इतना ही नहीं यहाँ विपरीत भाव, विचार और प्रवृत्तियाँ एक साथ या एक ही व्यक्ति में एक साथ रहती हैं। महाभारत विश्व का ऐसा अद्वितीय महाकाव्य है जिसकी महाप्राणता ने असंख्य रचनाओं को जन्म दिया है। युवा कवि अच्युतानंद मिश्र ने महाभारत के संदर्भो और पात्रों को रूढ़अर्थ में नहीं लिया। वे इन्हें समकालीन सन्दर्भो में देखते हैं जो किसी मिथक के उपयोग की प्रासंगिकता भी है। वे दुर्योधन, कर्ण, अर्जुन, द्रोण, गांधारी, युधिष्ठिर, भीष्म और भीम इत्यादि जैसे पात्रों से जूझते हैं अपनी सोच और व्यंजनाओं के साथ-? धृतराष्ट्र की तरह तुम तो अंधे नहीं थे अर्जुन/ फिर क्यों देखते रहे सिर्फ मछली की आँख में?' युवा कवि ने महाभारत की ऐतिहासिकता के साथ उसके वर्तमान को भी खंगाला है। अपनी परम्परा को रूढ़िसे मुक्त कर वे इस अद्यतन संदर्भो और सवालों के साथ देखते हैं। 'जाल, मछलियाँ और औरतें' मछुआरे जनजीवन का गीत है। उनके जीवन की बारीकियों का आत्मीय प्रेक्षण इस कविता को मार्मिक ही नहीं विश्वसनीय भी बनाता है। रेखांकित करने योग्य यह कि इस गीत में मछलियों की विवशता, नियति और शोक भी समाहित है। जाहिर है जब तक किसी समर्थ कवि की संवेदना चित्रित किये जा रहे जीवन की अंतर्धारा से तदाकार नहीं होती, ऐसी कविता लिख पाना मुश्किल है क्योंकि कविता एक प्रेक्षण से अधिक कुछ होती है। 'सिलिया चमारिन' एक अद्भुत और मार्मिक कविता है जिसमें हमारे समाज की विसंगतियों, विद्रूपताओं और असमानता के जहर को बेपर्दा किया गया है। यह कविता सिलिया की विवशताओं और नियति का आख्यान रचते हुए उसके पक्ष में जा खड़ी होती है, इस ज्वलंत प्रश्न के साथ कि -'आखिर दो दिन में/ कितने युग होते हैं?' यह सवाल तमाम गैरबराबरी वाले समाज से पूछा गया अद्यतन सवाल है। 'दंगे के बाद' किसी हिंसा के बाद का पश्चात्वर्ती दृश्य-बंध है। कविता में दंगे के थम जाने के बाद भी चिन्हों के रूप में दंगा मौजूद है जिनके जरिये हिंसा की वीभत्सता को समझा जा सकता है। इस निराशाजनक हिंसक दृश्य में भी पत्ते जरूर चमक रहे हैं उम्मीद भरी आँखों की तरह। इंसानी पागलपन पर रोता हुआ कुत्ता और समय इस दृश्य को और भी बेचैनी से भर देते हैं। 'शाम' कविता की संध्या कवि की उसी नजर का कमाल है जिसका जिक्र आरंभ में किया। शाम होने की इस सामान्य-सी घटना में जीवन-राग के विभिन्न आरोह-अवरोह हैं-एक दूसरे से भिन्न मगर जीवंत! 'रात का संगीत' एक अंडरटोन कविता है जिसमें मानव मन के घोषित-अघोषित, दृश्य-अदृश्य अवसाद अपने समूचे घनत्व में मौजूद है। डिप्रेशन की मनहूसियत को बयां करते विच्छिन्न दृश्य कुल मिलाकर एक ऐसा कुहासा निर्मित करते हैं जिसे किसी ऐसी चीख का इंतजार है जो दुनिया को चाँद के दो टुकड़ों में बदल दे। सिन्टैक्स और क्राफ्ट की दृष्टि से यह एक ताकतवर कविता है। 'कला ऐसे ही मरती है' एक अनूठी कविता है जिसमें कला और जीवन का साहचर्य भी है और द्वैत भी! कविता के पूर्वार्द्ध में एक निराशाजनक परिदृश्य है जिसका काउंटर कविता का उत्तरार्द्ध है। यह उत्तरार्द्ध एक आदर्शवादी जिजीविषा न होकर एक ऐसा जीवंत हिस्सा है जो अंततः चक्राकार समय के साथ आबद्ध है। इसी बीच युवा कवि एक मार्मिक पंक्ति से कविता का मानो पता देता है-'जीवन और अभिनय के बीच/ एक चिड़िया छोड़ जाएगी एक तिनका।' अच्युतानंद मिश्र एक ऐसे प्रज्ञावान युवा कवि हैं जिनके पास जीवन को कविता के ग्रू देखने की तमीज है। यह जरूरी तमीज हर कवि में नहीं होती।

निरंजन श्रोत्रिय
9827007736

नाम में क्या रखा है

फोन पर एक अपरिचित-सी आवाज आई
कहा -हैलो! आप कैसे हैं ?
मैंने कहा ठीक हूँ,
आप कौन?
उन्होंने कहा वे 'निर्भय' बोल रहे हैं
'जागरण' में थे पिछले दिनों
इससे पहले कि मैं कुछ पूछता
बढ़गई उनकी खांसी

थोड़ा संभले तो पूछने लगे-
कैसी है तबियत आपकी
मैंने कहा ठीक हूँ अब
हाँ! उन्होंने कहा सुना था
पिछले दिनों बहुत बीमार रहे आप
पर ले नहीं सका आपका हाल

मैं कुछ कहता पर वे ही बोल पड़े
'जागरण' में आप थे
तो मुलाकात हो जाती थी
अब यह नौकरी भी छूट गई
कलकत्ते-सा शहर और बच्चे दो
कहीं किसी अखबार में आप कह देते
तो बात बन जाती
मैंने कहा आप शायद
मेरे नाम से धोखा खा गए
मैं वह नहीं
जो आप समझे अब तक
नाम ही भर है उनका मेरा एक-सा

दुखी आवाज में अफसोस के साथ वे बोले-
उफ! आपको पहले ही बताना चाहिए था
और फिर बढ़गई उनकी खांसी
मैं माफी मांगता
कि फोन रख दिया उन्होंने
मैं सोचने लगा
आखिर शेक्सपियर ने क्यों कहा था
-नाम में क्या रखा है?

शराब के नशे में

शराब के नशे में धुत एक आदमी
दुत्कारता है जिन्दगी को
कहता है लौट जाऊँगा
मैं अपने घर

तीन आँगन वाले अपने घर
वहाँ धूप होगी
सकुचाती हुई
चूमती हुई माथा
उतरेगी शाम

शराब के नशे में धुत आदमी
अपने रतजगे में बुहारता है
सबसे ठंडी रात को
पृथ्वी से बाहर

वह लिखता है इस्तीफा
पढ़ता है ऊँची आवाज में
मुझे तबाह नहीं करनी अपनी जिंदगी
लानत भेजता हूँ ऐसी नौकरी पर

सुबकते हुए कहता है
लौट जाऊँगा अपने गाँव
खटूँगा अपने खेतों में
चुकाऊँगा ऋण धरती का

दिन की रोशनी में
स्कूल बस पर बेटी को बिठाने के बाद
वह पत्नी की आँखों में आँखें डालकर
कसम खाता है
वह शराब को कभी हाथ नहीं लगाएगा

मुस्कुराती हुई पत्नी को
वह दुनिया की
सबसे खूबसूरत औरत कहता है
और चला जाता है...
काम पर।

बड़े कवि से मिलना

बड़े कवि से मिलना हुआ
वे सफलता की कई सीढ़ियाँ चढ़चुके थे
हम साथ-साथ उतरे
औपचारिकतावश उन्होंने मेरा हालचाल पूछा
फिर दो कदम बढ़े
और कहा चलता हूँ

हालाँकि हम कुछ दूर साथ-साथ चल सकते थे
हम लोग एक ही ट्रेन के अलग डिब्बों पर सवार हुए
उस दिन ट्रेन एक नहीं दो रास्तों से गुजरी।

महाभारत

(वर्तमान परिस्थितियों के आलोक में)

1/
धृतराष्ट्र की तरह तुम तो
अंधे नहीं थे अर्जुन!
फिर क्यों देखते रहे सिर्फ
मछली की आँख में ?

2/
अर्जुन न्याय के लिए लड़ता है
अठारह अक्षौहिणी सेना खड़ी हैं
अन्याय की तरफ
सैनिक नहीं लड़ना चाहते थे युद्ध
उन्हें याद दिलाया गया
कर्त्तव्य सैनिक का
कहा गया कर्त्तव्य से विमुख होना
अन्याय है

अर्जुन पूछता है कृष्ण से
क्या हर बार जीत न्याय की होती है
हारता है अन्याय?
नहीं! कृष्ण ठीक करते हुए कहते हैं-
जो जीतता है
वहीं न्याय है
हारना अन्याय
अठारह अक्षौहिणी सेना खड़ी है
अन्याय की तरफ
अर्जुन जीत के लिए नहीं
न्याय के लिए लड़ता है।

3/
कौरव हार गए
क्योंकि अर्जुन को जीतना था
युधिष्ठिर चुप रहे
क्योंकि अर्जुन को जीतना था
भीम ने घटोत्कच को मरने दिया
क्योंकि अर्जुन को जीतना था
भीष्म बाणों की शैया से
सब कुछ देखते रहे
क्योंकि अर्जुन को जीतना था
और अर्जुन ?
वह मछली की आँख में देखता रहा
क्योंकि अर्जुन को जीतना था।

4/
युद्ध से पहले युद्ध हुआ
युद्ध के बाद भी युद्ध हुआ
लेकिन युद्ध में युद्ध नहीं हुआ
युद्ध में अर्जुन था
युद्ध में कृष्ण थे
कृष्ण अर्जुन को युद्ध के विषय में
बताते रहे

युद्ध में युद्ध नहीं होना था
युद्ध में कृष्ण को होना था
युद्ध में अर्जुन को होना था
युद्ध से पहले युद्ध हुआ
युद्ध के बाद भी युद्ध हुआ
लेकिन युद्ध में युद्ध नहीं हुआ

5/
अर्जुन क्रिया है
कृष्ण विचार
बाकी संज्ञाएँ
नष्ट होनी थीं
नष्ट हुईं।

6/
कर्ण की हार तय है
अर्जुन की जीत निश्चित
कर्ण भी जीत सकता था
लेकिन जीत अर्जुन की ही होनी थी

कर्ण के पास मृत्यु के अतिरिक्त
कोई विकल्प नहीं था
विकल्प अर्जुन के पास भी कहाँ था
जीत के सिवा

7/
युद्ध में दो ही बचे
अर्जुन और कृष्ण
युद्ध में दो ही मरे
अर्जुन और कृष्ण
युद्ध दो के बीच ही हुआ
अर्जुन और कृष्ण

8/
गाँधारी की आँखों पर पट्टी थी
इसलिए वह देख नहीं सकी
दुर्योधन को
पट्टी तो कुन्ती की आँखों पर भी थी
वह भी कहाँ देख सकी
कर्ण को

9/
अगर द्रोपदी ने
दुर्योधन को अंधे का पुत्र
न कहा होता
अगर कुन्ती ने कर्ण का
परित्याग न किया होता
अगर गाँधारी की आँखों पर
सचमुच पट्टी नहीं बँधी होती
अगर भीष्म ने प्रतिज्ञा न ली होती
तो
तो भी महाभारत होता
यही कहा है कृष्ण ने
गीता में

जाल, मछलियाँ और औरतें

वह जो दूर गाँव के सिवान पर
पोखर की भीड़ पर
धब्बे की तरह लगातार
हरकत में दिख रहा है
वह मल्लाह टोल है

वहीं जहाँ खुले में
जाल, मछलियाँ और औरतें
सूख रही हैं
आहिस्ते-आहिस्ते वे छोड़ रही हैं
अपने भीतर का जल-कण

मछलियों में देर तक
भरा जाता है नून
एक-एक कर जाल में
लगाए जाते हैं पैबन्द
घुंघरूओं की आवाज सुनकर
नून सनी मछलियाँ काँप जाती हैं

मछुवारिनें जाल बुनती हैं

पानी की आवाज देर तक
सुनते हैं लोग और
पानी के जगने से पहले
औरतें पोंछ लेती हैं पानी
पानी के अंधकार में वे दुहराती हैं प्रार्थना
हे जल हमें जीवन दो
फिर उसे उलट देती हैं
हे जीवन हमें जल दो

मछलियाँ बेसुध पड़ी हैं नींद में
मछुवारों के पैरों की धमक
सुनती हैं वे नींद में
नींद जो कि बरसात के बूँदों की तरह
बूँद-बूँद रिस रही हैं

बूँद-बूँद घटता है जीवन
बूँद-बूँद जीती हैं मछुवारिनें
कौन पुकारता है नींद में
ये किसकी आवाज है

जो खींचती है समूचा बदन
क्या ये आखिरी आवाज है
इतना सन्नाटा क्यों है पृथ्वी पर ?

घन-घन घन गरजते हैं मेघ
झिर-झिर-झिर गिरती हैं बूँदें
देर तक हांडी में उबलता है पानी
देर तक उसमें झांकती हैं मछुवारिनें
देर तक सिझते हैं उनके चेहरे

मछलियों के इंतजार में बच्चे रो रहे हैं
मछलियों के इंतजार में खुले हैं दरवाजे
मछलियों के इंतजार में चूल्हों से उठता है धुआँ
मछलियों के इंतजार में गुमसुम बैठी हैं औरतें

मल्लाह देखते हैं पानी का रंग
जाल फेंकने से पहले काँपती है नाव

मल्लाह गीत गाते हैं
वे उचारते हैं
मछलियाँ मछलियाँ मछलियाँ
उबलते पानी में कूद जाती हैं औरतें
वे चीखती हैं
मछलियाँ मछलियाँ मछलियाँ
बच्चे नींद में लुढ़क जाते हैं
तोतली आवाज में कहते हैं

मतलियाँ मतलियाँ मतलियाँ

उठती है लहर
कंठ में चुभता है शूल
जाल समेटा जा रहा है
तड़प रही हैं मछलियाँ
उनके गलफर खुले हैं
वे आखिरी बार कहती हैं मछलियाँ
मल्लाहों के उल्लास में दब जाती है
यह आखिरी आवाज।

सिलिया चमारिन

सिलिया चमारिन अगर
चमारिन नहीं होती
तो वह डोमिन होती
डोमिन नहीं होती
तो वह मछुवारिन होती
अगर वह मछुवारिन नहीं होती
तो वह....
खैर वह कुछ भी होती
फिर भी वह सिलिया चमारिन ही होती

जैसे कि पंडित मातादीन कुछ भी होते
मगर वह पहले पंडित मातादीन ही होते
और यह पूरा गाँव पांडेपुर ही होता
और यह पूरा देश भारतवर्ष

अगर पंडित मातादीन को बेटा होता
तो वह गोरा होता
पंडितायन गोरी थी
अगर सिलिया चमारिन को बेटी होती
तो वह काली होती
पंडित मातादीन काले थे

सिलिया चमारिन का छुआ
पंडित खा नहीं सकते थे
पंडितायन की सख्त हिदायत थी
पंडित उन्हें ना छुएँ

करिया चमारिन और
पंडित उज्ज्वल प्रकाश के जन्म
के बीच दो दिन का फर्क है

आखिर दो दिन में
कितने युग होते हैं?

दंगे के बाद

वीरान गली का आखिरी सिरा
एक जूता उल्टा रखा हुआ
दूसरे के फीते अब तक बंधे हैं
हालांकि उसका पैर गायब है।

सबसे चमकीली धूप में
चमक रही है वीरानी
पत्थरों पर धूल चमक रही है
पत्ते चमक रहे हैं
उम्मीद भरी आँखों की तरह

सुस्त बैठा है एक कुत्ता
जैसे समय के पार चला गया

यह टूटा पहिया घूम रहा था
उसके माथे पर बिन्दी की तरह
चिपकी है लेमनजूस की पन्नी
लेकिन अब वह तुड़ा-मुड़ा पड़ा है
उस पर रेंग रहा एक कीड़ा उलट गया है
दबी हुई पीली घास पर
सूख चुके खून के धब्बों को
इतिहास की मिट्टी में मिला दिया जाएगा।

कहीं कोई धुआँ नहीं उठ रहा
कोई शोर कोई चीख नहीं
घटनाएँ, इतिहास, तमाम पहिये, स्मृतियाँ
रूक गए हैं
कोई रेंगती हुई चींटी भी नहीं इस वक्त
नाली में हहराता पुरातन जल भी विलुप्त हो गया है

दो ध्वनियों के बीच की खामोशी फैल गई है
ब्रम्हाण्ड की तरह

देखने और सोचने के बीच के सारे तंतु कट चुके हैं
गली के आसमान पर एक चिड़िया उड़कर आई
एक फेरा लगाकर वह और तेज उड़ जाती है
सब कुछ हिलने के नियम के विरूद्ध
अचानक वह कुत्ता
अपने कंधे झाड़ते हुए चलने को होता है
वह रोता है आखिरी मनुष्य की तरह
घड़ी में बारह बज रहे हैं
तारीख की करवटों के पार एक लाश
अभी उठकर चल देगी किसी और गली में।

शाम

अभी एक पत्ती गिरेगी
और शाम हो जाएगी
एक बच्चा गेंद के पीछे दौड़ेगा
कबूतर लौट कर आएँगे
और सामने की डाल पर बैठ जाएँगे
उस खिड़की से वह स्त्री झाँकेगी
और तह कर रख देगी बचपन को
अभी शाम होगी
और दुनिया के तमाम पुरूष
लौट आएँगे घरों को
घर की छतें थोड़ी और नुकीली हो जाएँगी
दूर बहती नदी
बहने का स्वांग करेगी
एक मछली आखिरी बार सूरज की तरफ
लालच से देखेगी
और शरमाकर चली जाएगी भीतर
मिट्टी थोड़ी और मुलायम हो जाएगी
पेड़ थोड़ी देर के लिए छिपा लेंगे हरापन
एक तारा चुपके से निकलेगा
ट्यूशन से लौटती हुई लड़की
ठहर जाएगी गली के मोड़ पर
और रूमाल उठाने लगेगी
एक लड़का फिल्मी गीत गुनगुनाते हुए
उधर से गुजरेगा

आखिरी बार आवाज लगाएगा वह-
'कबाड़ी वाला'
अभी साइकिल की घण्टी बजेगी
और शाम हो जाएगी।

रात का संगीत

एक ठहरी हुई शाम
जाने कब से पूछ रही है
अपना पता

एक गुमनाम आदमी देर तक
चलता है सड़कों पर
उसे उम्मीद है भविष्य का नक्शा
वह ढूँढलेगा

देर से टंगी है पत्ती
हवा की प्रतीक्षा में
एक औरत कपड़े सुखा रही है
एक घर में दिया जल रहा है
एक छत पर बारिश हो रही है

एक आदमी तेज आवाज में लड़ रहा है
एक घर से बच्चों के रोने की आवाज आ रही है
एक घर से कोई आवाज नहीं आ रही है

थकान के बाद सुन्न
पड़ रही हैं स्मृतियाँ

दिन और महीनों के कंधों पर
घण्टों का बोझ है

एक तिलिस्म की तरह लगती है
ये दुनिया वे सोचते हैं
और ठहर जाते हैं

वे उस गाय को देखते हैं
जो चलते-चलते ठहर गई है

कोई नहीं बता सकता
वह कितनी देर यूँ ही खड़ी रहेगी

पैरों की उदासी को सिर्फ
घोड़े जानते हैं
कोई उनकी हथेलियों पर
नाल ठोंक रहा है

वे उन्हीं मैदानों से गुजरे
जहाँ पिछली सदी में गुजरे थे घोड़े

वे घोड़ों की तरह कभी
कामयाब नहीं हो सके
अब वे घोडों की तरह रोना चाहते हैं

एक दुनिया रात में बदल रही है
एक बच्चा जमीन का एक महफूज कोना
तलाश रहा है
एक फुटपाथ के बराबर में
पुलिस की गाड़ियाँ दौड़ रही हैं
कुछ लोग अदृश्य हो जाना चाहते हैं
कुछ लोग अपने हाथ काट लेना चाहते हैं
कुछ लोग सुन्न हो जाना चाहते हैं
कुछ दुनिया के सारे बल्ब फोड़ देना चाहते हैं

कुछ लोग मिट्टी में लिथड़ रहे हैं
कुछ लोग इतनी जोर से चीखना चाहते हैं
कि दुनिया चाँद के दो टुकड़ों में बदल जाए

एक आदमी हवा में करूणा पैदा कर रहा है

एक आदमी कभी न चुप होने वाली
रूलाई रो रहा है
एक आदमी हर पत्ते को खा रहा है
एक आदमी कुछ भी नहीं खा रहा
एक स्त्री अपने प्रेमी से सचमुच का
रूठ जाना चाहती है
ढाबे के बाहर खड़ा एक आदमी चाहता है
कि दुनिया में एक भयानक विस्फोट हो

सभ्यता के मुहाने पर खड़े कुछ लोग
ठिठके हुए हैं

वे समय के किनारों से फिसलते
कोलम्बस की तरह किधर निकल जाएँगे
कोई नहीं बता सकता
कोई नहीं बता सकता
रात की यह संगीत कितनी देर और चलेगा
किस क्षण घास की सबसे नन्हीं पत्ती पर
ओस की बूँद आकर ठहर जाएगी।

कला ऐसे ही मरती है

चेहरे पर भय करूणा
दुःख और विषाद के साथ
थोड़ी तड़प और ज्यादा बेचैनी
मिलाती हुई वह
लालबत्ती पर खड़ी
हर गाड़ी पर देती है दस्तक

जिंदगी के बंद किवाड़ों से
नहीं आती कोई आवाज
आँखें मिलती नहीं
होठ हिलते नहीं

गोया कटे गर्दन से छूटते
लहू के फव्वारे की तरह तेज
भागती हैं गाड़ियाँ

कुछ भी रूक नहीं रहा
समुद्र पी रहा है अपना जल
आसमान सोख रहा है
अपना निचाटपन
धर्मग्रन्थों का कोई शब्द
नहीं फूटता बम की तरह

हालांकि इस क्षण भी
मिट्टी ने सोखा होगा
कुछ बूंद जल
सुदूर किसी चिड़ियों की
आँख खुली होगी
एक सूखे पत्ते ने वृक्ष को
अंतिम बार छुआ होगा
एक बच्चे ने कस कर
भींचा होगा माँ की उँगलियों को
मरते हुए शख्स ने चखा होगा
ऑक्सीजन का स्वाद आखिरी बार

यह सब कुछ
दोहराया जाएगा बार बार
जीवन और अभिनय के बीच
एक चिड़िया छोड़ जाएगी एक तिनका

वहाँ लालबत्ती पर
कोई ढूँढेगा जीवन
कोई ढूँढेगा करूणा
कोई प्यार कोई घृणा

कला ऐसे ही मरती है
जीवन ऐसे ही बचता है।

नाम : अच्युतानंद मिश्र
जन्म : 11 अगस्त 1982 को बोकारो, झारखण्ड में।
शिक्षा : अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली से हिन्दी साहित्य में पी-एच.डी.
सृजन : एक कविता-संग्रह 'आँख में तिनका' और एक आलोचना पुस्तक 'बाजार के अरण्य में' प्रकाशित। 'साहित्य की समकालीनता' नामक पुस्तक का संपादन।
पुरस्कार : शब्द साधक युवा सम्मान एवं भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार।
सम्प्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय के इन्द्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय में अध्यापन।
सम्पर्क : 72, सेकण्ड फ्लोर, सेक्टर 2, वेव सिटी, गाजियाबाद (उप्र) 201 002
मोबाइल : 9213166256
ई-मेल : anmishra27@gmail.com

(जीवन की विडम्बनायें प्रतिबिम्वित करती युवा कथाकार राकेश मिश्र की कहानी ''शह और मात'')

मुकेश वर्मा

आज प्रस्तुत कहानी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है कि बहुत साधारण और तकरीबन अक्सर घटने वाले प्रसंग को लेकर राकेश मिश्र ने बहुत ही दिलचस्प ढंग से एक असाधारण कहानी बुनी है जिसके ताने-बाने देर तक हमारे दिलो-दिमाग पर छाए रहते हैं। इस बेहतरीन कहानी को रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के तत्वावधान में वनमाली सृजन पीठ, भोपाल के अंतर्गत लगभग सवा सौ साल के परिदृश्य को हिन्दी भाषा के साहित्य में कलात्मक कौशल और वैचारिक उत्तेजना से समेटने वाले भारत के लगभग ६५० प्रतिनिधि कथाकारों की कहानियों के ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण कथाकोश ''कथादेश'' में संकलित किया गया जिस पर वरिष्ठ कथाकार और समीक्षक भालचंद्र जोशी अपनी टिप्पणी लिखते हुए कहते हैं कि ''युवा लेखन में जो कहानीकार अपने कथा कौशल और बौद्धिक ताप से ध्यान खींचने में सफल हुए हैं, उनमें राकेश मिश्र का नाम महत्त्वपूर्ण है। यहाँ परम्परा में कहानी है लेकिन अपने बदले तेवर और सौंदर्याभिमुखी उत्तजेना के साथ। एक तमतमाया बुद्धिजीवी, एक पृथक यूटोपिया के निर्माण में मुग्ध भविष्योन्मुखी खुशमिजाज व्यक्ति, बदलती दुनिया से हताश युवा...ये सब राकेश मिश्र की कहानी में उसी तरह मौजूद हैं जैसे जीवन यथार्थ में स्थितियाँ बन रही हैं। कैरियर, और प्रेयसी को लेकर एक-सा रोमानी भाव, ऐसा नायक जिसके पास बदलती दुनिया में दाखिले की इच्छा है लेकिन पर्याप्त साधन नहीं, इस द्वन्द्वात्मकता को राकेश बहुत सधी भाषा में रचते हैं।

'शह और मात' कहानी बदलाव की द्वन्द्वात्मकता में फँसे समय और समाज की कहानी है, जहाँ परम्परागत शिक्षा के व्यवसायीकरण के आगे लगभग निरर्थक साबित हो जाना है और उसमें भी प्रतिद्वन्द्विता का घेरा बढ़ता जा रहा है। भूमण्डलीकरण ने जहाँ रोजगार और स्वप्न के बीच की दूरी को प्रभावित किया और ऐसी व्यवस्था बनाई जो इस तकनालॉजी से अपरिचय रख रहे, उनके लिए भविष्य की संभावनाएँ अलक्षित होने लगीं। इच्छाओं के पंख बड़े होने लगे लेकिन आकाश आरक्षित होने लगा। अशिक्षित या नई तकनीकों से अनभिज्ञ व्यक्ति के लिए प्रतिद्वन्द्विता के चलते उड़ान बाधित होने लगी। नैतिकता अब उदाहरणों से भी खारिज होने लगी। आस्था की परिभाषा साम्प्रदायिक बोरे तय करने लगे हैं। दिक्कत यह हो गई कि इन आपदाओं के प्रतिकार में खड़े नायक एक किस्म की बौद्धिकता में उलझकर अपने अहम् की संतुष्टि बौद्धिक उलाहनों या निराकरण में 'शह और मात' वाले दम्भी बयानों में प्रकट करने लगे।

किसी समय कहानी में प्रतीक और बिम्बों से बड़े आशय तक ले जाया जाता था। यह कोशिश आज भी है लेकिन राकेश तो इससे थोड़ा आगे जाकर बेरोजगारी और असहायता का एक बड़ा रूपक खड़ा करके उसे शह और मात में प्रकट करते हैं। वे कथा-गति के लिए घटनाओं का भी सहारा लेते हैं। प्राय: यह सोचा जाता रहा है कि जीवन यथार्थ का वही हिस्सा कथा निर्मिति में उपयोगी है जो घटनाओं की भी निर्मिति करे। इसी कारण कहानी की भाषा में एक ऊर्जा नजर आती है। जीवन की विकटता और विडम्बनाओं के लिए कहानी में व्यंग्य का अंडरटोन भी है। लेकिन यह व्यंग्य टोन कहानी की गति को बाधित नहीं करता है। बल्कि लेखक की दृष्टि की आभा भी स्पष्ट होती है। अनुभव जगत का कथा जगत में प्रवेश और भाषा से रिश्ता कायम करके उस दृष्टि का विकसित रूप कायम किया गया है। एक बात जरूर है कि जीवन यथार्थ के प्रकटीकरण के लिए उन्हें कथा-कौशल और शिल्प के उपादानों पर अधिक भरोसा है। लेकिन इसके उपरांत आरोपित बिम्ब या प्रतीकों की कहानी के साथ ज्यादती नहीं है। ऐसा होने पर कहानी जीवन यथार्थ की अपेक्षा अमूर्त अनुभूतियों को फ्रेम करने लगती राकेश की यह सजगता महत्त्वपूर्ण है। इस कहानी में शिल्प को कथ्य से अलग करके देखना कठिन है। शिल्प, भाषा, यथार्थ की अभिव्यक्ति तथा सांकेतिकता की दृष्टि से यह कहानी उल्लेखनीय है। कहानी की आंतरिक संरचना का निर्माण इन सभी पदों की सार्थक उपस्थिति से होता है। दरअसल यथार्थ के मुनासिब अर्थ को सही संदर्भ में देखने की सफल कोशिश यह कहानी है। कथ्य के अनुरूप शिल्प, भाषा की सजग मौजूदगी और पात्रों की निजता की रक्षा करते हुए कहानी को उसके अर्थ तक पहुँचाना इस कहानी का उल्लेखनीय पक्ष है। चूँकि इस कहानी का कथ्य-क्षेत्र मध्यवर्गीय जीवन है। इसमें इसी कारण मध्य-वर्ग की इच्छाएँ-आकांक्षाएँ मिथ्या आडम्बर के प्रति रूझान, लगाव, हताशा सभी कुछ मौजूद है। इस अर्थ में कहानी में लेखक की दृष्टि बहुत स्पष्ट और व्यापक है कि वे जीवन के विविध पक्षों से अपने चरित्रों का चयन और उनकी भूमिका तय करते हैं। बादशाह खान के निश्छल चरित्र की बनावट में एक अंतर्वेदना है। कथा-कौशल यही है कि वह छिपाता है लेकिन लेखक प्रकट करता है। उनके संवादों के बीच अनकहा ही कहानी के आशय को प्रकट करता है। कहानी के सर्जनात्मक विवरण कहानी के प्राणों की प्रतिष्ठा भी करते हैं और रक्षा भी करते हैं। राकेश जीवन की सामान्य परिस्थितियों के बीच सघन भाव स्थितियों तथा सूक्ष्म मन:स्थितियों का विवेचन करते हैं, यह कहानी कौशल का दूसरा पक्ष है।'' निस्संदेह श्री जोशी जी की टिप्पणी कहानी की पृष्ठभूमि में व्याप्त वातावरण को लेकर कहानी के अर्थ और आशय की अद्भुत और तार्किक व्याख्या करते हैं। यह कहानी जहाँ एक ओर साम्प्रदायिकता पर गहरी चोट करती है जिसका छद्म पाठक को बुरी तरह तिलमिला देता है, वहीं दूसरी ओर और उसी समय, उसके प्रचार और पाखण्ड को ध्वस्त करती हुई उन प्रखर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का उल्लसित आयोजन भी करती है जो आज की सबसे ज्यादा जरूरत है। इस तरह लेखक के सामाजिक सरोकार खूबसूरती से सामने नजर आते हैं और रौशनी का एक द्वार खुलता दिखाई देता है। एक जेनुइन रचनाकार का जो लेखकीय दायित्व है, उसे राकेश जी ने बिना किसी लाग-लपेट के लेकिन बहुत संजीदगी और सहजता के साथ निबाहा है। यही इस रचना की अनुपम विशेषता भी है।

राकेश भाई को एक उम्दा कहानी लिखने के लिए बहुत बहुत बधाई और एक बार फिर, एक और उम्दा कहानी के लिखने के अनुरोध के साथ उन्हें सादर नमस्कार तथा आप सभी स्नेहिल पाठकों को भी प्यार भरा सलाम।

मुकेश वर्मा मो.9425014166

शह और मात

राकेश मिश्र

अनुराग तीन कारणों से लखनऊ आया था। तीनों ही कारण अपने कार्य से तादात्म्य स्थापित करने में असफल रहे। पहले दो कारण जो निजी होते हुए भी सार्वजनिक और 'परिवारहित' किस्म के थे, उसमें फेल हो जाने का उसे कोई अफसोस नहीं था, बल्कि उसमें से एक कारण तो वह चाहता ही था कि फ्लाप हो जाए। दरअसल, लखनऊ में उसके मामा का लड़का रहता था जो 'निट' में कम्प्यूटर का डिप्लोमा कर रहा था। पहले तो इसे समय काटने और खुद को कहीं-न-कहीं 'एंगेज्ड' बताने की उसकी चाल समझी गयी, परन्तु अपने अंतिम सत्र तक आते-आते जब उसने कई कम्पनियों में अपनी शुरूआती जगह तय कर ली, तब समूचे कुनबे को यकायक लगा कि देश अब 'सामंतवाद-पूँजीवाद गठजोड़' से आगे बढ़कर 'सूचना-संचार क्रांति युग' में पहुँच गया है और इतने दिनों तक आलोक ने समय काटने, चुइंगगम चबाने, लड़कियों से दोस्ती करने, सिनेमा देखने के अलावा जरूर कुछ ऐसा जान-समझ-सीख लिया है, जिससे उसका परिवार-समाज-राष्ट्र किसी तयशुदा पटरी पर और तेज दौड़ेगा।

समाज और राष्ट्र तो खैर अमूर्त किस्म की चीजें थीं परन्तु आलोक के परिवार को इतनी जल्दी और इतना तेज दौड़ने को तैयार देख उसके तमाम नाते-रिश्तेदार-परिचितों को अपनी और अपनी पीढ़ी की तैयारी पर रोना आने लगा। इसी रोते-गाते लानत-मलामत के क्रम में अनुराग के लखनऊ आने का पहला कारण था कि वह लखनऊ में तमाम ऐसे संस्थानों में अपना भविष्य तलाशे, जो इस राष्ट्र का भी भविष्य थे। दूसरा कारण उसका निजी था, परन्तु यही निजता उसके जी का जंजाल बन गयी थी। दरअसल वे दोनों, मतलब अनुराग और आलोक, बचपन में एक ही साथ खेलकर बड़े हुए थे। आलोक के पिता की असमय मृत्यु के बाद अनुराग के पिता को हमेशा महसूस होता था कि उसका जीवित रहना कहीं-न-कहीं अनुराग को अतिरिक्त फायदा पहुँचाएगा। शुरूआती वर्षों में स्कूल के परीक्षा-फलों में अनुराग ने यह लौ खुद जलायी थी। परन्तु इंटर (साइन्स) के बाद जब उसने बी.ए. पढ़ने का फैसला किया, तभी से उन्हें यह लौ टिमटिमाती-सी दिखने लगी थी, अब बुझी, तब बुझी। दूसरी ओर जिस दीये को वे उसके पिता की मृत्यु के बाद बुझा हुआ मानने लगे थे, वह इतनी तेज रोशनी और चमक के साथ भभका कि समूचा कुनबा उसमें अपना रास्ता खोजने लगा। स्साले! एक ही साथ दोनों बैट-बॉल खेलते थे! क्या कमी रखी थी मैंने तुम्हारे लिए ? एक साला वो बिना बाप का बच्चा आज इतनी तरक्की कर रहा है, और इधर साहबजादे साहित्य बाँच रहे हैं!

इसी वक्रोक्ति में अनुराग के लखनऊ आने का दूसरा निजी मामला छुपा था। दरअसल दोनों वाकई एक साथ खेले-कूदे थे, कई सारी बदमाशियों, कई सारी गुस्ताखियों, कई सारी हरामगीरियों के दोनों एक-दूसरे के प्रति राजदार थे। यदि दोनों महान बनने के बाद दुश्मन हो जाते तो एक-दूसरे की उपलब्धियों को खुद 'लीप' देने' लायक स्कूप दोनों धारण करते थे। परन्तु अभी वह बात न थी। इंटर के बाद अनुराग दिल मसोस कर रह जाता। परन्तु कोई सूरत ही न बनती थी लखनऊ जाने की जहाँ आलोक बी-कॉम- की पढ़ाई अधूरी छोड़कर 'निट' का डिप्लोमा लगभग पूरा कर चुका था। इस बार जब पिताजी ने सूचना-संचार, राष्ट्र और आलोक पर लंबा भाषण देते हुए उसे लखनऊ जाकर कुछ सीख-समझ आने का प्रस्ताव दिया तो उसे प्रसन्नता ही हुई कि न सही सूचना-संचार, न सही 'निट', आलोक से तो मुलाकात हो ही जाएगी, उसी आलोक से जिसके साथ वे 'शांति' सीरियल के दोनों दोस्तों की तरह एक साथ रहने का स्वप्न देखते थे।

परन्तु वहाँ अनुराग को 'शांति' सीरियल जैसी कोई अनुभूति नहीं हुई, वहाँ 'कसौटी जिंदगी की' चल रही थी जिसमें आलोक अपना बैट-बॉल, गिल्ली-डंडा सब भूल आया था। अनुराग ने लाख कोशिश की कि बातचीत का दायरा निट, नौकरी, भविष्य, कम्प्यूटर से बाहर आए, लेकिन आलोक लगभग मुशर्रफ की

चयन : मुकेश वर्मा

तरह अपने एजेंडे पर लगातार कायम रहा।

दूसरे दिन जब बात बर्दाश्त से बाहर हो गयी तब अनुराग ने भी अपने ज्ञान और अनुभव का पिटारा खोला। उसने आलोक के रूचि न लेने के बावजूद बताया कि हिंदी साहित्य में उसने क्या-क्या पढ़रखा है। प्रेमचंद, फणीश्वर नाथ रेणु, यशपाल की कहानियों में क्या जादू है, शमशेर की कविताएँ पढ़े बिना कोई किसी से मुकम्मल प्रेम कैसे कर सकता है आदि-आदि। इसमें से कोई भी बात आलोक को उत्साहित नहीं कर सकी थी। इसी क्रम में अनुराग ने अपना तीसरा एजेंडा भी सामने रख दिया जिस पर स्पष्ट रूप से उसकी हाल की रूचियों का प्रभाव था। उसने आलोक को बताया कि लखनऊ वैसा नहीं है, जैसा वह देख या समझ रहा है। उसका क्या है। वह तो कमरे से अपने संस्थान जाने के लिए निकलता है। ऑटो में बैठे, पहुँच गये। ज्यादा से ज्यादा मार्केट घूम आये। किसी महँगे रेस्तराँ में खाना खा लिया, लखनऊ के दो-चार इलाकों का नाम जान लिया, ये हजरतगंज है, ये अमीनाबाद है, ये रकाबगंज है, बस!

''अरे जनाब, लखनऊ तो चश्मेबद्दूर है, बस उसे देखने के लिए नजर पैदा करने की जरूरत है। शौके-दीदार अगर है तो नजर पैदा कर।'' अपने हिसाब से अनुराग ने खास लखनवी अंदाज में कहा था। पहली बार आलोक को उसका अंदाजे-बयाँ कुछ खास लगा। उसे लगा शायद अनुराग वाकई ऐसा कुछ जान-समझ गया है जो उसने कैरियर, कम्प्यूटर और ऐसी ही चीजों में गँवा दिया।

''तो फिर यार लखनऊ में और क्या है ऐसा जो मैंने नहीं देखा?'' तब अनुराग ने तफसील से अपने तीसरे कारण को सामने रखा कि दरअसल वह लखनऊ के नवाबों को देखने के लिए इस शहर में आया था। लखनऊ वह नहीं है कि इन विशाल इमारतों को देखा जाए, बड़ी-बड़ी दुकानों को अपनी चुँधियायी आँखों से घूरा जाए, सजावटी लट्टुओं की तरह से नियोन बल्बों की रोशनी में नहा लिया जाए, लोगों की भीड़ से अपने कंधे छिल जाएँ। अनुराग खास शायराना हो गया था, ''जनाब, इन नकलची, बाजारू और बिकाऊ शामों में हमारी 'शामे-अवध' कहीं गुम हो गयी-सी लगती है। आखिर कहाँ गये नवाब वाजिद अली शाह के वे जीन-कसे सफेद अरबी घोड़े। वे इक्के, वे बग्घियाँ, वे घोड़ों की टापें, वो चाबुकों की फटकार !' आलोक को अब अपनी नजर पर शक होने लगा। उसने तो कभी लखनऊ में ये चीजें देखने की कोशिश नहीं की। उसे अपनी पीठ पर वाजिद अली शाह के सवारों के चाबुक की फटकार महसूस हुई ।

''यार लखनऊ में इतना कुछ है लेकिन कहाँ है?'' आश्चर्य से उसने पूछा।

''वही तो मैं भी पूछ रहा हूँ बरखुरदार। आखिर कहाँ गयीं वो तीतर और बटेर की बाजियाँ, वो कोठों की रवायतें जहाँ नवाब अपने शहजादों को तमीज और तहजीब सिखाने भेजा करते थे। वो उमराव जान अदा, वो मिर्जा हादी रूसवा...''

कोठे की बात सुनकर आलोक को थोड़ी हिचक हुई। बोला, ''कोठा मतलब जहाँ रंडियाँ रहती हैं... तू वेश्याओं की बात...''

''अबे रंडियाँ नहीं, तवायफें मेरी जान! यदि तुमने उमराव जान अदा पढ़ी होती तब तुम्हें पता लगता कि आखिर लखनऊ में इतनी तहजीब आयी कहाँ से, कि यहाँ छछूँदर को भी दुममुदार कहा जाता था...।''

''मैं तो भाई बहुत हसरत लेकर आया था कि लखनऊ जा रहा हूँ। नवाब वाजिद अली शाह का लखनऊ, वहाँ की नवाबी शान, वहाँ की शाही तहजीब, शामे अवध... यहाँ तो वैसा कुछ भी नहीं। जानते हो, जब अंग्रेज वाजिद अली शाह को मारने की योजना बना रहे थे, तो नवाब ने खुद उपाय बताया था एक दहीवाली को खट्टे दही के मटके के साथ दो बार मेरे सामने से ले जाओ, उसकी गन्ध से ही मेरी नकसीर फट जाएगी और मैं मर जाऊँगा।''

अब आलोक को भी नवाब वाजिद अली याद आ गये थे। इंटर में पढ़ी हुई 'शतरंज के खिलाड़ी' वाले नवाब। ''क्यों, वही नवाब न जिनके दो सरदार

शतरंज खेलते हुए मर गये थे, लेकिन नवाब को बचाने नही गये।''

''अरे वो सब तो सियासी बातें थीं, नवाब खुद संगीत सुनने में व्यस्त थे जब अंग्रेज उन्हें लेने आये थे, उसमें उन सरदारों का क्या दोष लेकिन थे वे भी नवाब से कम नहीं। मुहरों की खातिर जान लड़ा दी, पीछे नहीं हटे।' हालाँकि आलोक को यह बात कुछ जँची नहीं। लेकिन वह नवाबों के शहर में रहता है और यह बात कुछ खास है। इसलिए उस पर अचानक मेजबानी का भूत सवार हो गया। उसने तुरंत शामे-अवध देखने का प्रस्ताव रखा। अनुराग की बातचीत से उसे लगा कि यह शामे-अवध जरूर पुराने लखनऊ में मिल जाएगी, दोनों पुराने लखनऊ जाने को तैयार हुए। परन्तु उस शाम आठ बजे को रिक्शा या ऑटो पुराने लखनऊ जाने को तैयार न हुआ, पता चला, कल से ही शहर में किसी अनहोनी की आशंका थी। दूर गुजरात में किसी ट्रेन में कुछ उपद्रवियों ने आग लगा दी थी जिसके बाद पूरा गुजरात जल रहा था और उसकी लपटें यहाँ भी साफ महसूस की जा रही थीं। सारा शहर जैसे बारूद के ढेर पर बैठा था। पता नहीं इस विस्फोट को किस मिर्जा, किस सौदा, किस अनीस के कलामों ने रोके रखा था। दोनों जब पुराने लखनऊ जाने के लिए ऑटोवालों से पूछताछ कर रहे थे, तो वे उन्हें बड़ी अजीब नजरों से घूर रहे थे। एक ने तो थोड़ी अजीब आवाज में पूछा ही था, 'उधर के ही रहने वाले हो क्या?''

''नहीं, रहता तो यहीं पर हूँ।''

''तो फिर मरने का शौक है क्या?''

''लेकिन...'' आलोक ने कुछ कहना चाहा। लेकिन अनुराग उसे खींचते हुए वापस ले आया। उसका मूड कतई खराब हो चुका था। ऑटो वाले तक को बोलने की तमीज नहीं, यहाँ क्या शामे-अवध होगी? दोनों इतना तो समझ ही चुके थे कि शहर के हालात ठीक नहीं हैं। दूसरे, अनुराग को लौटना था, अब तो वह और भी मुमकिन नहीं।

इसकी भरपाई करने के लिए आलोक अनुराग को उन सारी दुकानों पर ले गया जिसके साइन बोर्ड पर शाही लिखा था, शाही कुल्फी, शाही चाट, यहाँ तक कि शाही गोलगप्पे भी। लेकिन अनुराग का जायका जो बिगड़ा तो फिर बिगड़ ही गया।

रात भर आलोक ने अपने समूचे कंप्यूटर ज्ञान को खँगाला। अनुराग का यूँ मायूस लौटना उसे अखर रहा था। सुबह उठते ही उसके दिमाग में बिल्कुल नया आइडिया था।

''यार, तू कल क्या कह रहा था, वो नवाब वाजिद अली शाह वाली बात, जिसमें दो सरदार शतरंज खेलते थे...''

''हाँ, क्यों क्या हो गया?''

''अरे यार, हम लोग क्या बादशाहों से कम हैं। चलो आज बादशाह नगर चलते हैं ओर वहाँ शतरंज खेलते हैं!''

यह बिल्कुल नये किस्म का आइडिया था। बादशाह नगर लखनऊ के पास का ही एक उपस्टेशन था जहाँ से अनुराग को गोरखपुर के लिए गाड़ी पकड़नी थी। तय हुआ कि गाड़ी पाँच बजे वहाँ से खुलती है। दो बजे ही वहाँ पहुँचा जाए और बिसात बिछायी जाये बिल्कुल नवाबों की तरह और वाकई जब दोनों चेस-बोर्ड, मोहरे और एक चादर के साथ वहाँ पहुँचे तो अपने आपको मिर्जा और मीर से कम नहीं कूत रहे थे।

शाही अंदाज में बिसात बिछायी गयी। बादशाह नगर वैसे ही छोटा-सा स्टेशन था, दो-चार चायवालों और एक सर्वोदय बुक स्टोर के अलावा उस स्टेशन पर कोई बाजार नहीं था। ऐसे में दोनों इत्मीनान से नवाबों की तरह बाजी पर बैठे। हुक्का, पेंच, पानदान आदि के विकल्प में विल्स की एक पूरी डिब्बी, माचिस, चिप्स का एक बड़ा पैकेट, पेप्सी की एक बड़ी बोतल करीने से सजा दी गयी। बाजी जीतने से ज्यादा बाजी की फिजा को महसूसना जरूरी था। बिल्कुल मिर्जा के-से अंदाज में अनुराग ने चाल शुरू की।

''लीजिए जनाब, यह रही मेरी चाल और प्यादे ने बढ़ाये दो कदम।''

तकरीबन पंद्रह-बीस मिनट तक दोनों अपने प्यादों को बढ़ाकर एक-दूसरे की आजमाइश करते रहे। इस बीच पाँच सिगरेटें पी जा चुकीं, आधी चिप्स खायी जा चुकी थी और पेप्सी भी लगभग चौथा खत्म थी।

खेल में को रंग नहीं था। आलोक अकसर अपने कंप्यूटर पर चेस खेलता रहा था। उसे पता था कि वह चार-पाँच चालों में खेल खत्म कर सकता था लेकिन गाड़ी आने में अभी दो घण्टे बाकी थे इसलिए वह इत्मीनान से धीरे-धीरे मोहरे चल रहा था। अनुराग को भी आलोक की जहनियत पर शुबहा नहीं था। बचपन में भी भले वह क्रिकेट, गिल्ली-डंडे में आगे रहा हो, शतरंज-कैरम बोर्ड में वह आज तक उसे शिकस्त नहीं दे पाया था। कभी-कभी तो उसे लगता कि आलोक यदि कुछ न करके, शतरंज ही खेला करता, तो भी उसका बहुत-कुछ बन-सँवर जाता। आज भी उसे लग रहा था कि आलोक तो कभी भी खेल खत्म कर सकता था। सिर्फ ट्रेन के इंतजार के लिए इन मोहरों की चाल ली। लेकिन, फिर उसे लगा कि इससे तो बेहतर है कि बाजी खत्म करके थोड़ा घूम-फिर आया जाए! यह सोचकर उसने आक्रामक खेलने के लिए, ताकि खेल में तेजी आए ओर यह खत्म हो, जैसे ही वजीर को निकालना चाहा वैसे ही ठीक उसके सिर के ऊपर से आवाज आयी, 'नहीं, नहीं भाई साहब, यह क्या कर रहे हैं, उसे वहीं रहने दें आप हाथी के आगे से प्यादे को हटाइए।' दोनों ने चौंककर आवाज वाली दिशा में देखा। वह एक 35-40 साल का शख्स था, दाढ़ी-बाल खिचड़ी हो चुके थे। आदमी ने हालाँकि सफारी सूट पहन रखा था लेकिन लगता था जैसे वह कई दिनों से सफर में हो।

न जाने उस आवाज में ऐसा क्या था कि अनुराग ने फौरन हाथी के आगे से प्यादा हटा दिया।

आलोक को अनुराग से इस चाल की अपेक्षा नहीं थी। उसने एक प्रशंसात्मक निगाह उस अनचाहे मेहमान पर डाली। उसने देखा कि और दो-तीन लोग उसकी बिसात के पास खड़े होकर उसके खेल को देख रहे हैं और वह शख्स तो अपने घुटनों पर हाथ देकर अनुराग पर इस कदर झुका हुआ तल्लीन है कि सिवा मोहरों के उसे किसी चीज में दिलचस्पी नहीं हो। आलोक को लगा कि यह शख्स शतरंज का अच्छा जानकार है। उसने बिना दबाव में आते हुए अपने घोड़े को बाहर निकाला। घोड़ा ठीक ऊँट की मार में था। अनुराग ने तुरंत ऊँट पर हाथ डाला कि फिर उस शख्स ने टोका, ''नहीं, नहीं भाई साब, इतनी जल्दी नहीं। आप सिर्फ इस प्यादे को आगे सरका दें।'' इस बार उसने अनुराग के मोहरे छूने का भी इंतजार नहीं किया बल्कि खुद अपने हाथों से प्यादे को आगे बढ़ा दिया। इन दो चालों में ही खेल दिलचस्प हो गया था। आलोक को लग गया कि यह खेल सामान्य नहीं होने जा रहा है। उसने फिर से अपने मोहरों की पोजीशन पर गौर किया। काफी सोचते हुए उसने फिर अपने घोड़े को वापस किया।

''हाँ अब चलिए अपना हाथी।' कहते हुए उस शख्स ने खुद ही हाथी की एक उम्दा चाल चली।

इस चाल ने आलोक को काफी देर तक सोचने पर मजबूर कर दिया। शतरंज के अपने सारे अनुभव को बटोरकर आखिर फिर उसने आक्रामक खेलने का मन बनाया और वजीर को बाहर निकाला। वजीर को ठीक मार करने वाली स्थिति में लाकर उसने अनुराग की ओर देखा। सामने अनुराग की जगह वही शख्स अब आराम से बैठ गया था और अनुराग बगल में बैठा हुआ मोहरों को देख रहा था। उस शख्स ने बिना किसी तकल्लुफ के उन्हीं की डिब्बी से एक सिगरेट सुलगा ली थी और चिप्स के पैकेट में भी आराम से हिस्सेदारी कर रहा था।

आलोक को हालाँकि उसकी यह बेतकल्लुफी अखरी लेकिन अब सीधे-सीधे कुछ कहना उसे थोड़ा अटपटा लगा। अब उनका खेल देखने वालों की संख्या भी थोड़ी बढ़गयी थी। ये लोग दो-तीन से पाँच-छह की संख्या में हो गये थे। सामने वाले शख्स ने बिना वजीर की परवाह किये अपना हाथी उसके सामने रख दिया। अब हाथी की शर्त पर प्यादे के हाथों वजीर को जाना था। आलोक को

मजबूरन अपना वजीर वापस रखना पड़ा। खेल अब लंबा खिचने की स्थिति में था। दो-एक साधारण चालों के बाद जब आलोक ने पुनः घोड़े की चाल चलनी शुरू की तो अचानक वह शख्स फिर बोल उठा, ''भई वाह! यह हुई वाकई शतरंज की चाल आपने तीन चाल चली और तीनों घोड़े की। अनाड़ी ही सारे मोहरों से खेलते है।'' कहते हुए उसने फिर से हाथी को दाहिने खींचा।

आलोक ने तय किया कि वह शख्स किसी-न-किसी प्रकार से हाथी को केंद्र में रखकर खेल रहा था। उसने भी थोड़े प्रशंसा के भाव से कहा, ''आप भी कोई पहुँचे हुए खिलाड़ी लगते हैं।''

''अरे कहाँ जनाब! हम क्या खाकर खिलाड़ी होंगे।'' पेप्सी की बोतल उठाते हुए उसने फरमाने जैसे अंदाज में कहा, 'वैसे आपकी चालें देखकर मुझे बेगम नूरजहाँ की याद हो आयी।''

''कौन बेगम?'' आलोक ने अपने मुहरों को सोचते हुए पूछा।

''अरे नूरजहाँ! जहाँगीर की बेगम'' -अनुराग ने तपाक से कहा।

''हाँ... अरे आप तो काफी मालूमात रखते हैं।'' कहते हुए उस शख्स ने सामने देखा। अनुराग अब आलोक के बगल में बैठा हुआ था।

''तो जनाब! इस शतरंज की शुरूआत बेगम नूरजहाँ ने ही की थी। और पता है आपको, वो हमेशा घोड़े की चाल चलती थीं। जैसे आप...।''

आलोक और अनुराग ने एक-दूसरे को मुस्कुराकर देखा। उन्हें भी अब इस शख्स में काफी मजा आने लगा था।

''...वैसे खेलते तो बादशाह जहाँगीर भी बढ़िया थे लेकिन वे हाथी की चाल चलते थे, बिल्कुल बादशाहों की तरह।' कहते हुए उस शख्स ने पुनः हाथी आगे बढ़ाया। हाथी-घोड़े की इस चाल में अचानक अनुराग को एक ऊँट की सुरक्षित चाल दिखी जिससे सामने वाले का प्यादा कट रहा था और ऊँट का को नुकसान भी नहीं था। आलोक ने भी अनुराग की बात मानी और फर्जी पीट लिया। इस अचानक चाल परिवर्तन से सामने वाला थोड़ा अचकचाया, लेकिन फिर आराम से एक नयी सिगरेट सुलगाते हुए बोला, 'पहले तो जनाब इन मोहरों से खेल थोड़े ही हुआ करते थे। सचमुच के जिंदा आदमी इन मोहरों के नकाब पहने खड़े हुआ करते थे। आमने-सामने बड़े-बड़े सिंहासनों पर बेगम और बादशाह बैठा करते थे और सोने की लंबी-लंबी डंडियों से वे अपने मोहरों को आदेश देते थे।''

''अच्छा!'' अनुराग के मुँह से निकाला। अब तक पढ़ी गयी किताबों में उसे कहीं भी इस तरह का प्रसंग नहीं मिला था।

''और क्या भाई साहब! और यदि बादशाह की किसी गलती से को मोहरा पिट जाता था तो क बार गुस्से और खीझ में वे सच में मोहरे को फाँसी चढ़वा देते थे।'' कहते हुए उस शख्स ने कटे हुए प्यादे को इस तरह घूरकर देखा जैसे कि यदि वह बादशाह जहाँगीर हुआ होता तो वह प्यादा तो गया था अपनी जान से।

खेल काफी दिलचस्प हो गया था और साथ ही उस शख्स की बातें भी ! ''तो भा जान! नूरजहाँ वाक बहुत बढ़िया खेलती थीं और खेलें भी क्यों न। आखिर इस खेल की जाद की थी उसने। लेकिन आप जानते हैं इस खेल में अपने घोड़े की उम्दा चालों के बावजूद वह जहाँगीर से कभी नहीं जीत पायी। बता सकते हैं आप लोग कि आखिर इतना बेहतरीन खेलते हुए भी आखिर वह जहाँगीर से जीत क्यों नहीं सकी ?'' आलोक और अनुराग दोनों एक-दूसरे का मुँह देखने लगे, उन्हें ठीक-ठीक को जवाब नहीं सूझ रहा था। फिर भी अनुराग ने कहा, ''हो सकता है जहाँगीर नूरजहाँ से भी बेहतर खेलते हों।''

''नहीं भा साहब! जहाँगीर नूरजहाँ से बेहतर नहीं खेलते थे। असली शतरंज वह नहीं थी जो जहाँगीर-नूरजहाँ उन फर्जियों और किश्तियों से खेलते थे। असली शतरंज तो सियासत के अंदर चलती थी जिसमें नूरजहाँ ने हमेशा जहाँगीर को शिकस्त दी। ...यह लीजिए शह!'' बातों ही बातों में हाथी ठीक बादशाह के सामने आ गया था।

इस शह से बचने के लिए आलोक और अनुराग दोनों को काफी देर तक मोहरों को घूरते रहना पड़ा।

''...तो जनाब नूरजहाँ जानती थी कि जिस दिन उसने शतरंज में बादशाह को मात दी उसी दिन सियासी बाजी में उसकी मात हो जाएगी।''

आखिर आलोक को उस शख्स की शह की काट मिल गयी थी। न सिर्फ उसने अपनी बाजी बचायी, बल्कि दो-तीन बेहतरीन चालों से उसने सामने वाले शख्स की पेशानी पर बल भी ला दिया।

अब आलोक ने आराम से एक सिगरेट सुलगायी और कहा, ''भाई साहब, आप तारीफ तो नूरजहाँ के घोड़ों की चाल की कर रहे हैं और खेल रहे हैं हाथी से...''

सामने वाला आलोक की इस टिप्पणी पर थोड़ा खुलकर हँसा लेकिन उसने अपनी नजरें बिसात से हटायीं तक नहीं।

''तारीफ तो ऐसा है दोस्त कि जहाँगीर भी करते थे नूरजहाँ की और इसी तारीफ की बदौलत तो वह समूचे हिदुस्तान की मलिका थी।'' नजरें झुकाये हुए ही वह कह रहा था। ''लेकिन क बार उसे लगता था कि जब मलिका वही है तो वह खुद जहाँगीर की तरह हिदुस्तान के तख्त पर क्यों न बैठे।''

''अच्छा, लेकिन इतिहास में ऐसा जिक्र नहीं मिलता।'' आखिर अनुराग से रहा नहीं गया।

''इतिहास में तो जनाब कई बातों का जिक्र नहीं मिलता। जहाँगीर-नूरजहाँ के बिसातों की क्या बिसात कि वह इतिहास के हर्फों में जगह पा जाए। आखिर इतिहास कोई बादशाहों की बाँदी होता नहीं, लेकिन नूरजहाँ ने एक बार तो वाकई जहाँगीर को शतरंज में शिकस्त देने की ठानी।''

उस शख्स की आँखें बाजी पर बिल्कुल जमी हु थीं। आलोक को भी लग रहा था कि उसकी एक गलती बाजी खत्म कर सकती है।

''तो भाई साहब! नूरजहाँ ने बादशाह को अपने घोड़ों से घेरा कि बादशाह को पसीने आ गये। उन्होंने लगभग थकी आवाज में कहा, ''बेगम, यह बाजी तो आप जीत गयीं।'' नूरजहाँ के चेहरे पर एक कुटिल मुस्कान आ गयी। उसने बड़ी संजीदगी और शाइस्तगी से कहा, ''नहीं जहाँपनाह एक चाल है आपके पास और बाजी पलट सकती है।''

''बादशाह ने लाख जोर लगाया लेकिन वह चाल नहीं सूझी।''

''कौन-सी चाल है?'' लाचारगी से कहा उन्होंने।

''वह चाल आपको सिर्फ मैं बता सकती हूँ। लेकिन इसके बदले में आप मुझे क्या देंगे?''

आलोक और अनुराग दोनों को अपनी जीत की खुशी साफ दिखाई दे रही थी। सामने वाला शख्स अब अपनी ही चाल में फँस गया था। अनुराग ने घड़ी देखी, ट्रेन आने में अब भी पंद्रह मिनट बाकी थे। लेकिन वह शख्स लगातार बाजी पर नजरें गड़ाये था। जैसे उसने अपनी आँखें वहीं रख दी हों।

''तो दोस्त! बादशाह ने नूरजहाँ की ओर प्यार से देखा।

कहा, ''मलिका, सबकुछ तो आपका ही है। अब आपको और क्या चाहिए?''

''मुझे हिदुस्तान...।' नूरजहाँ की आवाज में बर्फ का-सा ठंडापन था।''

''बादशाह यकायक संजीदा हो गये। वो सारा आवेग सारा आराम कहीं परे चला गया। सामने वाले की आवाज में अचानक तुर्शी आ गयी थी। पेशानी के बल ज्यादा हो गये थे। पसीने की कुछ बूँदें उस पर चमकने लगी थीं।''

''तो फिर...'' आलोक के मुँह से निकला।

''तो क्या बादशाह ने अपना सारा दिमाग लगाया और उनके मुँह से निकला, ''हिदुस्तान की शर्त पर... कभी नहीं।''

''लीजिए जनाब, ठीक यही चाल जहाँगीर ने उस समय चली थी, आपकी मात हो गयी। क्यों, है कोई रास्ता अब?''

सामने वाले ने एक जोर की साँस छोड़ी। आलोक और अनुराग भौंचक-से उस चाल को देख रहे थे। हाथी की चाल चलते-चलते कब घोड़े ने वह ढाई घर चली कि दोनों को सहसा यकीन नहीं हुआ। दोनों चुपचाप सिर झुकाये बिसात को देख रहे थे। 'अरे भाई जान! निराश न हों। आप वाकई बहुत उम्दा खेलते हैं। खुदा कसम मजा आ गया। इस बाजी से।''

उसने आराम से चिप्स का पैकेट उठा लिया था और निहायत बेशर्मी से खा रहा था। आलोक और अनुराग दोनों को उस शख्स पर अब बेतरह गुस्सा आ रहा था। साला जहाँगीर की औलाद। बातें तो ऐसे बना रहा था जैसे खुद जहाँगीर के साथ ही रहता आया हो।

आलोक ने फौरन अपनी चादर समेटी। बाजी समेटे जाने तक दोनों एक-दूसरे से नजर नहीं मिला रहे थे। दोनों फौरन से पेशतर उस शख्स से अलग हो जाना चाह रहे थे। अपनी शुरूआती चालें उस शख्स के कहने पर चलने से अनुराग को थोड़ी खुशी तो हो रही थी, परन्तु बाद में जब वह आलोक के बगल में बैठा था तब जैसे उस शख्स ने अकेले ही दोनों को शिकस्त दी। आलोक तो जैसे किसी सदमे में था।

इस बादशाह नगर रेलवे स्टेशन पर शतरंज खेलने का सुझाव उसी का था लेकिन गुस्सा उसे अनुराग पर आ रहा था। बड़े आये नवाबों का शहर देखने वाले। शामे-अवध हुँह!

लेकिन दोनों एक-दूसरे से कुछ बोल नहीं रहे थे। अचानक उस शख्स ने कहा, ''अरे भाई साहब, इजाजत दीजिए, मेरी ट्रेन आ गयी है। बादशाह खान नाम है मेरा। इंशा अल्लाह फिर कभी इसी तरह मुलाकात होगी। आप कौन-सी ट्रेन में हैं?''

''इसी ट्रेन में,'' अनुराग ने बुझे स्वर में कहा... हालाँकि कहते हुए उसे अफसोस हुआ कि कहीं यह शख्स पीछे ही न पड़ जाए। देखने में वैसे भी वह खासा अस्त-व्यस्त लग रहा था। और कोई सामान भी नहीं था उसके पास। और जिस धड़ल्ले से वह उनकी सिगरेटें पी रहा था, चिप्स खा गया था और पेप्सी चढ़ा ली थी उससे तो वह खासा चलता-पुर्जा लगा रहा था।

''चलो आलोक, अपना कोच ढूँढ़ें।'' कहते हुए बिना उस शख्स से हाथ मिलाये या विश करते हुए अनुराग आलोक को लगभग खींचते हुए आगे बढ़गया। आलोक भी चुपचाप वहाँ से चल पड़ा। दोनों ऐसे खामोश थे जैसे न जाने कितनी प्यारी चीज उनसे किसी ने जबर्दस्ती छीन ली हो या किसी खास स्वजन की चिता फूँक के आये हों। अनुराग का कोच सामने ही था, अपना बैग अपने सीट पर रखकर वह फिर स्टेशन पर उतर आया। गाड़ी के छूटने का समय हो चुका था। यूँ ही माहौल के तनाव को कम करने के लिए उसने आलोक के कंधे पर हाथ रखा, 'अच्छा जहाँपनाह, इजाजत दीजिए। इंशाअल्लाह फिर जल्द ही मुक्का-लात होगी।''

आलोक ने एक फीकी-सी हँसी से उसके फिकरे का जवाब दिया। गाड़ी सरकने लगी थी। अनुराग लपककर डिब्बे में चढ़गया। जाते-जाते बोला- ''सच में यार! बड़ा बेवकूफ था।''

आलोक फिर मुस्कुराया और सरकती गाड़ी के साथ-साथ बिना कुछ कहे आगे बढ़ने लगा। आलोक से फारिग होकर अनुराग जब अपनी सीट पर वापस आया तो डिब्बा खचाखच भर चुका था। अंदर काफी गर्मी थी। कुछ लोग जोर-जोर से बोल रहे थे जिससे उमस और बढ़ती महसूस हो रही थी। अनुराग ने गौर किया। इन सबमें एक तुँदियल बनियानुमा चेहरे वाले आदमी की आवाज सबसे तेज थी। उसने भगवा बनियान पहन रखी थी। खिचड़ी दाढ़ी के ऊपर माथे पर लाल टीके ने उसके भरे चेहरे को थोड़ा डरावना-सा बना दिया था। ये लोग किसी एक मुद्दे पर ही जोर जोर से बोल रहे थे। थोड़ी देर में अनुराग को बातें समझ में आने लगीं। उसे महसूस हुआ कि डिब्बे की गर्मी सिर्फ मौसम के कारण नहीं थी। कल से जिस सुदूर गुजरात में जल रही आँच से पूरा शहर तपता-सा महसूस हो रहा था, वो आँच यहाँ तेज लपटों के रूप में मौजूद थी। वह डरावना-सा दिखने वाला आदमी जोर-जोर से बोल रहा था, ''भइया! हमने तो अपनी जिंदगी राम के नाम कर दी है। दो बेटे हैं हमारे अभी जीवित। वैसे तीन थेः एक को मैंने घर से भेजा था अयोध्या। कार सेवा करने। वहाँ वह शहीद हो गया। बिल्कुल इस बच्चे की ही तरह था।'' उसने अचानक अनुराग की तरफ इशारा किया तो वह जैसे सकपका गया। बातचीत में शामिल तमाम लोग अनुराग की तरफ उत्सुकता से देखने लगे। वह बनिया लगातार जारी था, ''तो भइये! यह जीवन किसका है श्रीराम का। मेरे बेटे के शहीद होने पर मुझे गर्व हुआ। अभी तो दो जीते हैं। बीस बेटे भी होते तो मैं उन्हें राम के नाम पर बलिदान करने से नहीं हिचकता।''

उसके प्रलाप का डिब्बे पर खासा असर दिख रहा। लोग श्रद्धा और भय से उसकी ओर देख रहे थे।

''अभी देखिए गोधरा में क्या हुआ। हमारे आप जैसे लोग अयोध्या से लौट रहे थे। भगवान की सेवा करके लौट रहे थे। यूँ डिब्बे को चारों तरफ से बंद कर आग लगा दी गयी। आखिर वो मरने वाले हमारे ही भाई -बंधु थे।''

''जनाब, इन मुसल्लों को तो हमारी सरकार ने ही सिर पर चढ़ा रखा है। वोट की खातिर इनकी पूजा करो फिर इनकी तलवारें झेलो।' एक सज्जन ने तलवार भाँजने का ऐसा अभिनय किया कि लगा अभी कोई गर्दन डिब्बे में कट जाएगी।

बनिये ने फिर बात लपक ली थी, 'सिर्फ सरकार को दोष देने से क्या होगा भा साहब! हमारे नौजवानों के अंदर का खून भी तो पानी हो गया है, नहीं तो 68 करोड़ की जनसंख्या है हमारी। एक दिन में हम अपनी पवित्र मातृभूमि को म्लेच्छों से आजाद कर सकते हैं। क्यों नौजवान!' उसने फिर अनुराग की तरफ देखा। वह बिना वजह इस तरह बातचीत में घसीटे जाने से खासा परेशान था। लेकिन अभी-अभी जिस शख्स बादशाह खान के कारण उसका मूड चौपट हुआ था, गाली उसी की कौम को दी जा रही थी। न चाहने के बावजूद, उसे थोड़ा-सा अच्छा लगा। धीरे-से उसने कह दिया, ''ठीक कहते हैं।'' फिर कहीं उसे इस तरह न घसीटा जाए, अनुराग ने उस भीड़ से परे देखना शुरू कर दिया कि अचानक उसे सामने से बादशाह नाम का वही शख्स आता दिखा जो यकीनन किसी को ढूँढ़ता दिख रहा था। अनुराग समझ गया कि वह उसी को ढूँढ़रहा था। अब यदि वह यहाँ आकर बैठ जाए तो जिस तरह की बातें यहाँ चल रही थी... अनुराग को अचानक अनहोनी की आशंका हुई। वह लपककर उसके पास पहुँच गया।

''अरे बादशाह भाई , किसी को ढूँढ़रहे हैं क्या?'' अनुराग ने उसे पैसेज की तरफ ले जाते हुए पूछा।

''अरे जनाब। आप यहाँ हैं, मैं तो काफी देर से आपको ढूँढ़रहा था।'' अनुराग की इच्छा हुई कि पूछे, क्यों ढूँढ़रहे थे, क्या काम है आपको मुझसे, लेकिन वह सिर्फ मुस्कुराकर रह गया।

''है क्या आपके पास? वो कहाँ है?'' बादशाह भाई ने हाथों के आकार को ऐसे दिखाया कि अनुराग तुरंत समझ गया कि जनाब शतरंज के बारे में पूछ रहे हैं।

''नहीं। वो तो आलोक ले गया वापस।'' अनुराग ने ऐसे कहा जैसे जान छूटी हो। लेकिन उसके इस जवाब से बादशाह भाई का चेहरा उतर आया।

''अरे! होता तो एक-एक बाजी हो जाती।'' लाचारी और अफसोस प्रकट करने वाली उनकी एक हताश आवाज निकली। ''खैर... आपके साथ खेलकर सचमुच बड़ा मजा आया था।''

अनुराग को लगा जैसे वह उसकी पराजय को याद दिला रहा हो लेकिन अब यदि तारीफ कोई कर रहा हो तो आप उससे झगड़ तो नहीं सकते। इसी बीच एक चाय वाला उधर से गुजरा तो अनुराग ने दो चाय ले ली। बादशाह भाई ने भी मना नहीं किया जैसे वे तैयार ही थे चाय पीने के लिए। चाय पीते-पीते बादशाह भाई ने फिर दो-तीन बार शतरंज के न होने का अफसोस जताया। इस बीच हालाँकि उन्होंने अनुराग से उसके परिवार, शिक्षा आदि के बारे में भी जानकारी ली। अपने बारे में बताते हुए वह थोड़ा झिझकता-सा दिखा और बताया कि दरअसल वह गुजरात के अहमदाबाद का रहने वाला है। वहाँ उसका लखनवी चिकन का कारोबार था। पिछले दिनों की दुर्घटनाओं में उसकी दुकान जला दी गयी थी और फिर से व्यापार सँभालने के सिलसिले में वह कुछ मित्रों से मिलने की कोशिश में था। अनुराग को अचानक उस पर तरस आने लगा। उसने कुछ और पूछने की कोशिश की लेकिन बादशाह भाई बार-बार शतरंज के न रहने पर ही अफसोस करते रहे। अनुराग को हैरत हुई कि ऐसी परेशान स्थिति में आखिर वह आदमी शतरंज खेलने को लेकर संजीदा कैसे है।

इस बीच पेंट्री कार वाले के कारिदे ब्रेड कटलेट आदि लेकर गुजरे। अनुराग को भूख लग आयी थी, उसने दो प्लेट कटलेट लिये। बादशाह भाई ने उसे सहजता से ले लिया। 'हाँ भाई ! भूख तो मुझे भी लग आयी है। वहाँ आपके साथ खेलते हुए खाने का होश ही नहीं रहा।' अनुराग को लगा, इस परेशान आदमी के साथ रूपये-पैसों की भी किल्लत होगी। उसने कटलेट के बाद फिर से चाय मँगवायी और एक सिगरेट उसे पेश करते हुए खुद भी जला ली।

''अरे आपने भी जला ली। एक से ही काम चल जाता।'' बादशाह भाई ने उसे टोका।

''नहीं, ठीक है।''

''वैसे आगे कौन-सा स्टेशन है? मैं तो इस रास्ते पर पहली बार हूँ।''

''बाराबंकी है। जंक्शन है।''

''अरे तब तो ठीक है। वहाँ जरूर किसी स्टॉल पर शतरंज मिल जाएगी।' अनुराग को जबर्दस्त खीझ हो रही थी। लेकिन अब इतना तो परिचय हो ही गया था कि वह सीधे-सीधे पल्ला नहीं झाड़ सकता था।

''ठीक है, देखते हैं।''

थोड़ी ही देर में बाराबंकी आ गया था। बादशाह भाई लपककर उतरे। अनुराग को साथ लिये वे दो-तीन दुकानों पर लगातार पूछ आये। संयोग की बात। कहीं भी शतरंज नहीं मिली। अनुराग ने राहत की साँस ली। गाड़ी यहाँ पंद्रह मिनट रूकती थी। बादशाह भाई लगातार शतरंज ढूँढ़ रहे थे। यहाँ तक कि आजिजी में उन्होंने बिस्किट, कोल्डड्रिंक वाले स्टॉल में भी दरियाफ्त कर ली।

''अजीब स्टेशन है। एक शतरंज तक नहीं मिलती।''

अनुराग ने सोचा एक शतरंज ही तो नहीं मिलती। अब बाराबंकी में किसे पता था कि बादशाह जहाँगीर एक बार इस स्टेशन पर शतरंज खोजते आएँगे। लेकिन कहा नहीं कुछ उसने। चाय पीने का प्रस्ताव रखा। वहाँ स्टाल पर चाय पीते हुए उनको चायवाले से पता चला कि उस दिन तमाम गाड़ियाँ अस्त-व्यस्त चल रही हैं। कहीं दंगा वगैरह की स्थितियों के कारण गाड़ियाँ फँसी हैं। अब यह ट्रेन भी एक-डेढ़घण्टे से पहले नहीं चल पाएगी।

यह सुनकर अनुराग को जहाँ बेचैनी महसूस हुई , बादशाह भाई की आँखें चमक उठीं, 'अरे यह तो बढ़िया हुआ भाई साहब! आइए जरा स्टेशन के बाहर दरियाफ्त कर लें। शायद वहाँ मिल ही जाए।' और वे लगभग खींचते हुए अनुराग को बाहर निकाल लाये।

अनुराग की किस्मत वाकई अच्छी थी। बाहर भी वे तमाम दुकानों में पूछ चुके। वहाँ ताश, लूडो वगैरह तो था लेकिन शतरंज नहीं थी।

बादशाह भाई बहुत मायूस हो गये। ''यदि पता रहता कि सफर में आपका साथ रहेगा तो मैं लखनऊ से ही रख लेता।'' इस तरह कहा उन्होंने जैसे कितनी बड़ी बात आज हो जाएगी यदि शतरंज न खेली गयी तो।

''अरे कोई बात नहीं बादशाह भाई , न सही शतरंज, बातचीत में ही सफर कट जाएगा।''

''हाँ, वो तो ठीक है लेकिन जैसे अभी देखिए गाड़ी खड़ी है, एक बाजी तो अभी हो जाती।''

अनुराग आजिज आ गया। तभी बादशाह भाई फिर बोल उठे, ''अभी गाड़ी खुलने में वक्त है काफी। भूख लग आयी है। कहीं चल के कुछ खा लिया जाए।''

अनुराग अजीब मुसीबत में था। मान न मान मैं तेरा मेहमान। अजीब आदमी है भाई। खाना है तो जाइए, मुझे बख्शिए।

लेकिन औपचारिकतावश चुप ही रहा। जब इतना झेल ही लिया है तो चालीस-पचास और सही।

''चलिए,'' उसने आस-पास के ढाबों पर नजर दौड़ायी। लेकिन बादशाह भाई उसका हाथ थामे क्वालिटी रेस्त्राँ की तरफ बढ़ गये। रेस्त्राँ की चमक देखकर ही अनुराग के चेहरे का रंग उड़ गया। शाकाहारी-मांसाहारी का उत्तम प्रबंध था। स्लोगन उसे अपने सीने में धँसा-सा महसूस हुआ। उसने हिसाब लगाया, कुल तीन सौ रूपये थे। उसके पासः सौ-डेढ़ सौ तो गये ही आज। एक पल के लिए उसे लगा कि वह हाथ-छुड़ाकर सीधा भाग जाए अपने डिब्बे में। सरेआम यह आदमी उसकी गर्दन पर छुरी रखे था और वह सिर्फ हुजूर आहिस्ता, जनाब आहिस्ता कह पा रहा था।

बोझिल कदमों से वह रेस्त्राँ में दाखिल हुआ। बैठते ही एक चुस्त वेटर उनकी सेवा में हाजिर हुआ। बादशाह भाई ने मीनू हाथ में उठा लिया और उसे उलटने-पलटने लगे। अनुराग ने गौर किया उनकी आँखें नॉन वेजिटेबिलवाले खानों को टटोल रही हैं। उसने फौरन वेटर की तरफ देखते हुए कहा, ''दाल फ्राई और रोटी।''

''अरे, आप बस दाल फ्राई खाएँगे। मैं तो भाई कई दिनों से सफर में हूँ। आज मैं तो कुछ बढ़िया खाऊँगा।''

अनुराग को लगा जैसे वह कह रहा हो, आज तो मैं आपकी जान ही ले लूँगा। अजीब बेशर्म आदमी है। एकदम फेवीकोल ही हो गया है। खैर, उसने हिसाब लगाया, तीन सौ रूपये हैं उसके पास। कितना भी बढ़िया खायेगा, तो

ढाई-पौने तीन सौ में हो सकता है। चलो इज्जत नहीं जाएगी।

"चलो भाई फिलहाल तो रोगनजोश और रूमाली रोटी ले आइए।" अनुराग को रोना आ गया। अजीब मुसीबत गले पड़ी है। साला रोगनजोश खा रहा है और फिलहाल कह रहा है। मतलब और भी कुछ खाएगा। उसने उस घड़ी को कोसा जब पहली बार उसने इसके कहने पर हाथी के सामने से प्यादे को हटाया था। अब तो वह खुद हाथी हो गया था और उसकी जान के पीछे पड़ा था।

"भाई , रेस्त्राँ तो ठीक-ठाक लग रहा है। अब खाना भी लजीज हो तो क्या कहना। वैसे आप सिर्फ दाल फ्राई क्यों मँगवा रहे हैं?"

अनुराग के चेहरे पर लाचार मुस्कुराहट आ गयी, "वो क्या है कि सफर में मैं हल्का ही खाता हूँ।" मन में उसने उस सादगी को पचास लानतें भेजीं, साला तुम खाओ न मेरी जान। माले मुफ्त दिले बेरहम।

बेयरा ऑर्डर सर्व कर गया। सामने रोगनजोश देखकर अनुराग का कलेजा मुँह को आ गया। अपनी दाल-फ्राई को देखकर उसकी इच्छा फूट पड़ने को हुई ।

रूमाली रोटी की पहली परत उतारते हुए बादशाह भाई बोल उठे, "वाह खुदा कसम, दोस्त, खुशबू बता रही है कि खाना वाकई शानदार है। आपको जरूर चखना चाहिए।"

अब अनुराग का धैर्य टूट चुका था। उसे लगा कि जब पैसा देना ही है तो क्यों वह सामने वाले को रोगनजोश खिलाए और खुद दाल फ्रा खाए। उसने वेटर को इशारे से बुलाया और कहा, 'भाई , एक प्लेट चिकन रोस्ट ले आना। उसे लगा कि दाल फ्राई के साथ रोस्टेड आइटम ही ठीक रहेगा।' तभी बादशाह भा बोल उठे, 'अरे सुनो भाई एक ग्रीन सलाद ले आना।"

बेयरा थोड़ी देर में दोनों सामान रख गया। जब वह चलने को हुआ तो बादशाह भाई फिर बोल उठे, "भाई , जरा दही भिजवा देना।"

"मुझे भी एक दही ला देना।" अनुराग के दिमाग में भयानक उथल-पुथल हो रही थी।

इसके बाद तो खाने की वह टेबल जैसे शतरंज की बिसात बन गयी थी। दही, पापड़, रायता, आइसक्रीम की चालें चली जाने लगीं। बादशाह भाई न जाने कितने दिनों से भूखे थे या कि खाना ही लजीज बना था कि वो न जाने कितने आइटम मँगवाये जा रहे थे। अनुराग भी अब जान पर खेल गया था।

बादशाह भाई कुछ भी ऑर्डर करते, वह केवल चीखकर कहता, दो ले आना।

बादशाह भाई का चेहरा गजब मुदित हो रहा था। "वाह! वाह! क्या बात है, लजीज है। ये तो बहुत ही उम्दा है" जैसे शब्द वे बार-बार बोल रहे थे।

अनुराग का चेहरा सख्त था। फिर आर्डर देते समय उसकी आवाज निकल रही थी जोर से, दो ले आना, मेरे लिए भी। दूसरी टेबल से यदि कोई इन दोनों को देखता तो लगता कि खाने से ज्यादा जंग लड़ी जा रही हो यहाँ पर।

आखिर खाना खत्म हुआ। बादशाह भाई ने एक लंबी डकार ली, "भई मजा आ गया। आज का दिन तो वाक बहुत बढ़िया रहा।"

"हाँ, जब कोई मुझ-सा असामी फँस जाए तो दिन तो बढ़िया जाएगा ही।" चीत्कार करते हुए मन में अनुराग ने सोचा।

बेयरा बिल ले आया था। धड़कते दिल से अनुराग ने बिल पर नजर डाली, चलो बच गये, दो सौ पिचानवे रूपये ही हुए। इज्जत बच गयी।

"चला जाए।" कहते हुए उसने जैसे ही जेब में हाथ डाला कि बादशाह भाई ने उसकी कलाई पकड़ ली, "अरे रे... क्या करते हैं भाई साहब। मैं बड़ा हूँ आपसे... पैसे तो मैं दूँगा..."

अनुराग का भेजा घूम गया। उसे सुनाई दिया, "भाई जान! बादशाह जहाँगीर ने ठीक यही चाल चली थी। इज्जत की कीमत पर कतई नहीं। लीजिए हो गयी मात। को रास्ता है आपके पास।"

एक ही दिन में दूसरी बार मात खायी थी उसने। कनखियों से उसने टेबल की ओर देखा। खाते हुए उसका चेहरा उसे खुद ही अश्लील दिखा।

उसने आखिरी कोशिश की, "नहीं भाई साहब बिल तो मैं..."

"क्या बात करते हैं, जनाब। ऐसा भी कहीं होता है? यह तो तहजीब में नहीं है हमारे।" बादशाह भाई ने तत्काल तीन सौ निकालकर प्लेट में रख दिये। चलिए चला जाए।

रेस्त्राँ के बाहर आकर दोनों पान की गुमटी की तरफ बढ़े। वहाँ से सिगरेट सुलगाकर उन्होंने स्टेशन पर खड़ी गाड़ी के बारे में दरियाफ्त की। पता चला वह तो तीन घण्टे से पहले खुलने से रही।

अनुराग का मन अजीब हो रहा था, उसे रह-रहकर खाने की टेबल की अपनी हरकतें याद आ रही थीं। तो क्या यह शख्स सब कुछ जान रहा था? उसने बादशाह भाई की तरफ देखा, वे सिगरेट पीने में मशगूल थे। अचानक उन्होंने कहा, "देखिए भाई साहब। एक दोस्त मेरा यहाँ भी रहता है। मेरे पास तो सामान वगैरह कुछ है नहीं। मैं ऐसा करता हूँ, उससे यहीं मिलने की कोशिश करता हूँ। बुरे वक्त में कौन काम आ जाए।"

"वैसे आपसे मिलकर आज मजा आ गया। अल्लाह सफर का ऐसा दोस्त सबको मुबारक करे, तो फिर जरूर मुलाकात होगी। इजाजत दीजिए।"

हाथ मिलाकर और लगभग गले लगकर बादशाह भाई सामने रिक्शे वाले की तरफ बढ़गये।

अनुराग की इच्छा तेज आवाज में रोने की हो रही थी। कौन था यह आदमी। नवाब बादशाह वाजिद अली शाह, जहाँगीर या फिर उसके सफर का दोस्त बड़ा भाई। उसका सिर भारी हो गया। थके कदमों से वह वापस स्टेशन पर आया। गाड़ी के अधिकांश लोग प्लेटफार्म पर चहलकदमी कर रहे थे। जितने लोग उतनी चर्चाएँ। वह चुपचाप अपनी सीट पर चला गया। वहाँ वह तिलकधारी यथावत बैठा हुआ भाषण दे रहा था। अनुराग को हैरत हुई कि साला इतना बोलते हुए भी यह थक क्यों नहीं रहा है। अनुराग को देखते ही वह बोल उठा, "अरे नौजवान! कहाँ चले गये थे। हम लोग तो भयभीत हो गये थे। वातावरण ठीक नहीं है अभी।" "क्यों? क्यों भयभीत हो गये थे आप? बताइए कौन हैं आप?" अनुराग अचानक चीख उठा। उसके इस कदर चीखने से वह बनियानुमा आदमी थोड़ा सहम गया। आसपास के लोग भी खामोश हो गये।

"मैं तो पिता समान... पुत्रवत्..." बनिये की हकला -सी आवाज आयी।

"नहीं, कोई नहीं। कुछ नहीं हूँ आपका और आप भी मेरे कोई नहीं लगते। समझ गये।" न जाने अनुराग की आवाज में कौन सी गुर्राहट थी कि वह आदमी सिटपिटा कर चुप हो गया और खिड़की से बाहर देखने लगा। उस अपार्टमेंट में काफी देर तक चुप्पी छायी रही, यहाँ तक कि ट्रेन खुलने के बाद तक भी। स

राकेश मिश्र

जन्म : 14 जुलाई , 1976, मुंगेर, बिहार।

प्रमुख कृतियाँ : बाकी धुआँ रहने दिया, लालबहादुर का इंजन, नागरी सभ्यता, मैं और मेरी कहानियाँ (कहानी-संग्रह) प्रकाशित।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेख एवं समीक्षाएँ प्रकाशित। कलकत्ता से प्रकाशित पत्रिका गंभीर समाचार के 'चम्पारण के सौ वर्ष' पर विशेषांक का संपादन।

महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय में अहिंसा एवं शांति अध्ययन के प्राध्यापक।

सम्मान : प्रबोध मजुमदार स्मृति सम्मान, कृष्ण प्रताप स्मृति पुरस्कार, रवीन्द्र कालिया स्मृति कथा पुरस्कार।

चित्र सौजन्य : नेट

'लावणी के बिना अधूरा है तमाशा'

रमेश यादव

महाराष्ट्र की लोककलाओं में अत्यंत लोकप्रिय तथा मनोरंजन का सस्ता और अच्छा साधन 'लावणी' को माना जाता है। लावणी तमाशा का एक अविभाज्य घटक है। जब से तमाशा में स्त्रियों का समावेश किया गया तब से इसकी लोकप्रियता में चार चाँद लग गया। आज लावणी के बिना तमाशा अधूरा है। किन्तु मुम्बई जैसे महानगरों में वक्त की पाबंदी को देखते हुये तमाशा की बजाय सिर्फ लावणी के विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जाने लगे हैं। इससे शहरी दर्शक तमाशा का पूरी तरह से आनंद नहीं ले पाते हैं। लावणी नृत्य कुछ-कुछ कत्थक से मेल खाती है। यह गीत और नृत्य का संयुक्त रूप है। लावणी नृत्य कत्थक के कठोर नियमों से मुक्त है इसीलिए सहज और आसान है और लोकप्रिय भी है।

लावणी के वरिष्ठ एवं मान्यवर साधक ज्ञानोबा उत्पात प्रायः लावणी के बारे में कहा करते थे कि 'अभंग' हे मराठी शारदेच्या हातातली टाळ आहेत, तर लावणी म्हणजे मराठी शारदेच्या पायातील चाळ आहे' अर्थात अभंग माँ शारदा के हाथों में बज रहे मजीरा की झनकार है तो 'लावणी' मराठी शारदा के पैरों में सजे घुंघरुओं की खनकार है। एक ओर अभंग ने मराठी जनमानस को भक्तिरस से ओत-प्रोत किया तो लावणी ने शृंगार रस से सराबोर किया।

जो रस, जो आनंद और जो मादकता पंजाबी के भांगड़ा में है, गुजराती के गरबा दांडिया में है, उत्तर की होरी में है, चैती, ठुमरी, कजरी में है, वही रस वही आनंद, मराठी के मराठपण लावणी में है। पिछले चार सौ शतकों से लावणी मराठी लोककला संस्कृति की महारानी बनकर मराठी मनों पर राज करते हुये राष्ट्रीय स्तर से आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रियता के परचम लहरा रही है। इसमें जितना श्रेय लोकशाहिरों का है उतना ही श्रेय नृत्यांगनाओं और संगीतकारों का भी है। शाहीर होनाजी बाळा, पट्ठे बापूराव, लहरी हैदर, भाऊ फक्कड़, राम जोशी, सगन भाऊ, साताप्पा (गवळी),

लोकभूमि

हमारे देश की लोक-संस्कृति अत्यन्त समृद्ध रही है, यह अलग बात है कि पिछले कुछ वर्षो से इसे विकृत और विपथ करने की लगातार कोशिशें हो रही है। जाहिर है ऐसी सभी कोशिशें निहीत स्वार्थ से उपजी है बावजूद इसके लोक के संस्कार, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकभाषा-बोली, लोक साहित्य और लोक से जुड़े सभी उपादान अपनी निराली छटा, मस्ती और सदाशयता से सराबोर रहते आये हैं। कहना ही होगा कि विदेशी और असंस्कृति का रंग भले ही थोड़ी देर/थोड़े समय तक हमारी समृद्ध लोक संस्कृति को प्रदूषित करने की कोशिश करे किन्तु यह ध्रुव सत्य है कि भारत के विभिन्न अंचलों के लोक में अवगाहन के बाद ऐसी सभी असंस्कृतियाँ लोक के रंग में ही रंगने लगती है।

हमारे जन-जीवन को संस्कारित प्रेरित और आनंदित करती लोक संस्कृति जहाँ महाराष्ट्र में 'लावणी तमाशा' आदि के माध्यम से तो निमाड़ मालवा में लोकगीतों-लोक नृत्यों-लोक साहित्य तथा बुंदेलखड में अपनी विरासत को आज भी शान से सहेजे हुए हैं। लोकराग के इस अंक में ख्यात लोकविद् डॉ.सुमन चौरे (भोपाल) जहां बेटे की विदाई के संदर्भ मातृत्व भाव से अधिकार हस्तान्तरण पर निमाड़ी लोकगीतों की दूरदृष्टि और भाव-प्रबोध को बता रही है तो मराठी और हिन्दी लेखन में सृजनरत तथा लोक संस्कृति के जानकर श्री रमेश यादव (मुम्बई) इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि महाराष्ट्र की लोक विधा 'तमाशा' तब तक अधूरी है जब तक उसमें 'लावणी' सम्मिलित नहीं हो। ठीक इसी तरह वीरभूमि बुन्देलखण्ड की समृद्ध लोक संस्कृति से परिचित करा रही है लोक में रमी हुई लेखिका डॉ.दया दीक्षित (कानपुर)। सभी रचनाकारों के प्रति आभार। स

- श्रीराम दवे

मोबाइलः094259-15010

परशराम, बाला बाहिरु, गंगू हैबती, अनंत फंदी, प्रभाकर, अप्पा तांबोली इत्यादि अनेकानेक शाहिरों ने शाहिरी गीतों के साथ साथ लावणी गीतों का जो खजाना मराठी लोक साहित्य को दिया है वह अद्भुत है। जनमानस को रिझाने का ऐसा सामर्थ्य इस कला में है कि अन्य भाषा-भाषी भी आज इस कला के प्रशंसक बन चुके हैं। आधुनिक लावणी गीतकारों में जगदीश खेबूडकर का नाम प्रसिद्ध है।

पहले लावणी को लोग 'कवन' नाम से जानते थे। कालांतर में 18वीं सदीं से इसे लावणी के नाम से जानने लगे। इस नाम से इतिहास के बारे में संशोधनकर्ताओं का अलग-अलग मत है, पर ज्ञानोबा उत्पात के अनुसार 'शब्दांची पेर लावण' म्हणजे लावणी।' अर्थात जहां शब्दों को बोया जाता है वह लावणी है। जिसकी उत्पत्ति अंतःकरण से होती है। लावणी में शब्दों के अलंकार या अन्य प्रकारों पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना उसके संगीत और शब्दों के अलंकार या अन्य प्रकारों पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना उसके संगीत और शब्दों के भाव पर दिया जाता है। रचनाकारों ने लोगों के चाव को देखते हुए रचनाओं का निर्माण किया और संगीत में ढलते-ढलते वह काव्य का एक विशेष प्रकार बन गया। लोग ठेका पकड़कर गाते और गुनगुनाते हैं। यही इस रचनाकृति की खासियत होती है।

चित्र सौजन्य : नेट

धीरे-धीरे लावणी के स्वरूप में भी परिवर्तन आने लगा। इसके दो प्रकार हो गए एक 'संगीत बारी' और दूसरी 'ढोलकीची बारी'। ढोलकीची बारी में ढोलक, मंजिरी, टूंगल, हार्मोनियम और पैरों में घुंघरू का प्रयोग होता है, तो संगीत बारी में हार्मोनियम तबला, तानपुरा, ढोलक, मजीरा इत्यादि वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। पहले इसका स्वरूप दरबारी तथा शास्त्रीय संगीत का था, इसलिये इस तरह के लावणियों को विशेष रूप से अलग ढंग से लिखा जाता था, जिसे 'बैठकीची लावणी' के नाम से पहचान मिली। आधुनिक समय में 'बैठकीची लावणी' के प्रणेता एवं पितामह ज्ञानोबा उत्पात तथा लावणी गायन परंपरा की लता मंगेशकर मानी जाने वाली सुलोचना चव्हाण, यमुना वाईकर, मंगला कुडाळकर, आशाबाई मुसळे इस परम्परा के अलख को जगाते रहे हैं। ऐसे कई अन्य लोग भी हैं जो इस विधा पर काम कर रहे हैं और उनका भी योगदान महत्त्वपूर्ण है। बैठकीची लावणी में राग लीलांबरी, परज, जंगला, अलैमा, बिलावल, विभास, ललन, कालिंगडा, सोनी, ललित गौरी, श्री इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। गायक कलाकार इन रागों के आधार पर उसका ठेका, बंध, आलाप अपने प्रस्तुति के हिसाब से देते हैं।

अर्थात पहले प्रकार में पूर्ण मुक्तता तो दूसरे प्रकार में सुर, ताल, शास्त्रीयता की बंदगी। पहले प्रकार के लावणी की कसौटी जनता के दरबार में होती है जो जनता के दिलों को आकर्षित करने के उद्देश्य से सजाई संवारी जाती है, तो बैठकीची लावणी जनमानस के साथ-साथ बुद्धिजीवी वर्ग की कसौटी पर निखारी जाती है। 'ढोलकीची बारी' यह लावणी धक्कड़, बालेघाटी, झगड़ा, सवाल-जवाब, आध्यात्मिक लावणी, भेदिक, कूट लावणी इत्यादि प्रकारों में बंटती रही और संशोधकों ने अपने-अपने तरह से इसका परिमार्जन किया है। लावणियों के विषय असीमित हैं। जैसे पति-पत्नी का प्रेम, अनुराग, कष्ट, पीड़ा, विरह, वियोग, प्रेम, द्वेष, मत्सर, शृंगार वर्णन, सौतन, चाल-चलन, नखरा, प्रियकर से वाद-संवाद, पनघट, खेल, तरुणाई इसके साथ-साथ स्थान वर्णन, सामाजिक विषय, इत्यादि कई विषयों पर लावणी गीत लिखने की परंपरा रही है। बैठकीची लावणी को छोड़ दिया जाए तो सभी प्रकार की लावणियों का सबसे प्रमुख अंग नृत्य है। नृत्यांगना की अदायें, भाव-भंगिमायें, संगीत के ताल पर थिरकना इत्यादि इस कला की खासियत है। कई नृत्यांगनायें नाचती भी हैं और खुद गाती भी हैं। दोनों कला अंगों को संभालते हुये दर्शकों की वाह-वाही लूटने वाली अनेक अदाकारों के नाम लिये जा सकते हैं। यहां तक की ढोलक की थाप भी कई स्त्रियां आज दे रही हैं और वाह-वाही की हकदार बन रही हैं।

पूरे साज-बाज शृंगार एवं आभूषणों के साथ मंच पर लब लावणी नृत्यांगनाएं थिरकती हैं तो वे हजारों दर्शकों की स्टार नायिका बन जाती हैं। सुबह होते ही वह आम स्त्री के रूप में चूल्हा फूंकती हुयी या फिर अपने बच्चे को खाना खिलाती हुई नजर आती हैं।

शाहीर मयुरेश, और शाहीर बापू खानदेशी के कुछ लावणी गीत वीररस से प्रेरित हैं। शाहीर मुचाटे की धुळे शहर पर लिखी लावणी भी अपना अलग स्थान रखती है। शाहीर पांडुरंग द.खाडिलकर की लावणी 'अंगाला लागल्या झळा गं बाई, कुणा सांगू या कळा।' यह स्वतंत्रता आन्दोलन पर आधारित लावणी अपने विशेष परिवेश को दर्शाती है। कपड़ा मिलों में काम करने वाली स्त्रियों के जीवन पर आधारित शाहीर अमरशेख की लावणी 'काम करुन गिरणीत थकली रं। माझी मान कामानं सुकली।' यह एक मर्मस्पर्शी लावणी है। महाराष्ट्र सीमा प्रश्न पर आधारित अण्णा भाऊ की लावणी 'माझी मैना गावावर राहिली' ये रचनायें अंतर्मन की वेदना की रचनायें हैं इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि लावणी का स्वरूप केवल शृंगारिक न होकर आवाहन परक भी हैं।

पोवाड़ा और लावणी गीतों में भूलभूत अंतर है। पोवाड़े अपेक्षाकृत बड़े और कथात्मक होते हैं। उनमें निवेदन और कथन वर्णनात्मक स्वरूप का होता है। प्रायः ये गीत वीररस से प्रेरित होते हैं, जब कि लावणी आत्मलक्षी स्वरूप की होती है। काव्यात्मकता और छंद उसकी विशेषता होती है। वीररस के अलावा जीवन के अन्य कई रंगों को लावणी स्पर्श करती है। अधिकांश लावणियां शृंगार रस से प्रेरित होती हैं। उदाहरण के तौर पर मधुकर मोंढे की यह 'लावणी' देखें-

ठसके बाज सुंदर मुखड्याची, ठावहृदय नयनाची
रेखीव बांध्याची, मी लावणी रसिकांची।।
प्रसन्न, मनोहर, अस्सल गावरान मोळयाची
प्रसाद गुण अंगी आवडती सर्वांची
पदन्यास प्रासाने
टप्पा ख्याल ताल धरी
ठेक्यात टाकी पावले, धरणी थरारी
भरजरी किंमती हिरवा शालू नऊवारी
घट्ट कांसोटा घालूनी पदर खोविला कमरी
दंडात माझ्या आयन्याची, खडीची चोळी रुतली
दागिने सोन्याचे प्रकार बहु अंगवारी घालूनी
आरक्त गौर पाऊलामाजी नुपूरे रुळली
आदि हुंकार मी मनाचा मन लक्षवेधी
हृदय सम्राज्ञी मी, आर्यपूर्व जनाची।।
मधू म्हणे, पाहता ऐकता रसिक होती बेभानची।।

कवि ने बड़े ही रसिक अंदाज में इस गीत को लिखा है। इसी कवि की एक

हिन्दी लावणी निम्न प्रकार से है-

अदाकारी

क्यों न मैं कहूँ तुझे यह बरखा बहार आयी
हुस्न का खजाना यह कुदरत लायी।।
रब की तारीफ क्या यह मूरत बनायी
चांद जैसी सुरत तेरी मुझे खूब भायी
रेशम जैसा बदन तेरा खुशबू लायी
कजरी गजरी आंखे तेरी, मुझे तड़फाती रही।।
मुहब्बत की मैंने, क्या गुनाह किया
लाजबाब हुस्न ने तेरे दिवाना बनाया
हम तो कुर्बान हुये यह कैसी अदाकारी तेरी
मधु कहे, लुट गये हम, यह डोली सजायी।।

एक लावणी गीत 'पिकल्या पानांच' शाहिर-जगदीश खेबूड़कर (हिन्दी रूपान्तर अरविन्द लेखराज एवं रमेश यादव यहां प्रस्तुत है)

लावणी : (पिकल्या पानाचं)

'पके पत्ते का डंठ हरा'
दरबार पुराना, झूमर नया,
आधी रात को जलाओ इत्र का दीया।
अंग-अंग खाए हिचकोले,
जूड़े में बांधो गजरा, गजरा, गजरा
पक गया पत्ता जी पक गया पत्ता
मगर डंठ अभी हरा,
पके हुए पत्ते का देखो डंठ अभी हरा।

नाखून से चोटिल हो जायेगा जरा हल्के से तोड़ो
केशर सा चूना, केवड़ा कत्था रगड़ो।
बड़े दिनों बाद रंग लाया है पान
होठों की लाली का करो रसपान।
कर लो मुंह इस तरफ, जरा, जरा, जरा
पके पत्ते का ए जी पके पत्ते का डंठ अभी हरा ।।1।।
आलम है मदहोशी का, मैं झुक गई,
पल्लू गिरा, मैं झट संवर गई
निशाना साधकर तीर छोड़ गई।
हम दोनों की इश्क की तमन्ना,
पूरी करो जरा, जरा, जरा।
पके पत्ते का ए जी पके पत्ते का
डंठ अभी हरा,
पके पत्ते का डंठ अभी हरा।।2।।

जिसमें लावण्य होता है, रूप सौंदर्य होता है वह लावणी है। स्त्री-पुरुष के जीवन का लौकिक स्वरूपी वर्णन लावणी गीतों में मिलता है। शाहिरों ने इस शृंखला में देवी-देवताओं को भी नहीं छोड़ा बल्कि लौकिक जीवन को अपने कल्पनाविष्कार में रंगने का प्रयत्न अपने गीतों में किया। विशेषतः शृंगार और विरह गीतों में तो रचनाकारों ने स्त्रीमन की हर छटा को इतनी बारीकी से उकेरा है कि जब मंच पर दृश्य साकार होता है और नृत्यांगना गीतों के भावों के साथ अपने आपको ढालकर मंच पर नृत्य प्रस्तुत करती है तो 'आह' और 'वाह' से झूमते श्रोतागण तालियों की बौछार करते हैं। एक कलाकार के लिये इससे बड़ा सम्मान और क्या हो सकता है! तालियां सीटियों में परिवर्तित हो जाती हैं, फिर उछाली जाती हैं पगड़ियां (फेटा) और टोपियां मदमस्त बेभान होकर। किसी कवि ने कहा है कि मराठी मनों पर अगर किसी ने राज किया है तो वह हैं- पंढरी का विठोबा, नारायणगांव की विठाबाई मांग, 'टाळ व ताल', तथा 'वारी और बारी' ने। एक और कहावत महाराष्ट्र में कही जाती है कि-

ढोलकीची थाप ऐकल्यावर ज्याचे पाय थिरकत नाहीत,
तलवारीचा खणखणाट सुरू झाल्यावर ज्याची छाती
फुगत नाहीं, तो खरा मराठी माणूस नाही।

अर्थात लावणी नृत्य है, लावणी गीत है, लावणी शृंगार है, लावणी नाटक है, लावणी तमाशा है, लावणी बिना तमाशा अधूरा है। इस कला की सेवा के लिए कई शाहिरों और लावणी नृत्यांगनाओं को राज्य स्तरीय एवं राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। इसमें पद्म पुरस्कारों का भी समावेश है।

आजकल सिर्फ लावणियों के शो होने लगे हैं। इनमें परंपरागत गीतों के बजाय ऑर्केस्ट्रा और फिल्मी गीतों की मांग दर्शकों द्वारा होने लगी है। दर्शक आइटम साँग की मांग करते हैं। पैसों के खातिर या फिर कॉण्ट्रक्ट शो के चलते अदाकारों को अपनी कला से समझौता करना पड़ता है। वैसे आज भी कई ऐसी नृत्यांगनाएं हें जो अपनी मूल कला से समझौता नहीं करतीं। लावणी कार्यकमों के नाम (फड़ों के नाम) दो स्त्री कलाकारों के नाम से रखने की परम्परा महराष्ट्र में रुढ़है। ये या तो फड़ की मालकिन होती हैं या फिर मुख्य मुख्य अदाकारा। जैसे छाया-माया खुटेगावकर, जयश्री-आरती नगरकर, तारा-यमुना वाईकर, कौशल्याबाई कोपरगावकर, मधु-रत्ना कांबीकर, गीता-अनिता परभणीकर इत्यादि। कई ऐसी नृत्यांगनायें हैं जिन्होंने अपने बलबूते अपनी विशेष पहचान इस क्षेत्र में बनाई है, जैसे माया जाधव, लीला गांधी, सुरेखा पुणेकर, जयश्री नगरकर, रेशमा परितेकर, रूपा परभणीकर, प्रियंका शेट्टी, वर्षा संगमनेरकर इत्यादि।

लावणी के प्रारंभ में नृत्यांगनाएं दर्शकों को मुजरा करती हैं। मुजरा अर्थात सलामी। जिसके प्रस्तुत करने की उनकी अपनी विशेष अदा होती है। लावणी के नृत्य कुछ एकल तो कुछ सामुहिक होते हैं। आजकल विदेशों में भी लावणी नृत्य की मांग बढ़गई है अतः इस कला को अब ग्लैमर मिलने लगा है। फिल्मों में भी लावणी नृत्यों का खूब प्रयोग हुआ है। लावणी प्रधान सैकड़ों फिल्में मराठी में बनी हैं। लावणी जब अपने मूल मर्म को भूल रही थी, श्रोताओं पर हिन्दी सिनेमा के आइटम डांस का भूत सवार था, ऐसे दौर में उत्पात जी अर्थात शाहीर ज्ञानोबा उत्पात का उदय होता है और वे लावणी का इतिहास ही बदल देते हैं। एक वो दौर था जब महाराष्ट्र के शालीन एवं सभ्य घरों की महिलाएं लावणी के कार्यक्रमों में नहीं जाती थी। उत्पात जी के नए प्रयोगों ने इस सोच को तो तोड़ा ही, साथ ही लावणी को आध्यात्मिकता का जामा पहनाकर मंदिरों तक पहुंचाया। उत्पात जी ने लावणी को ठुमरी का नाम दिया, बनारस का कंठिल स्वर दिया, शास्त्रीयता को दर्शकों के साथ-साथ इस विधा के मान्यवरों ने भी खूब पसंद किया। पुरानी लावणी गीतों से भाषा की अशुद्धता और अश्लीलता को दूर हटाकर उस पर शृंगार का नया रंग चढ़ाया और लावणी के कॅनवास को समृद्ध किया। उनके संग मृदंगाचार्य शंकरराव मंगळवेढेकर, उवादनाचार्य तात्या साहेब थे। यही कारण है कि पं.भीमसेन जोशी, डॉ.वसंतराव देशपांडे, कुमार गंधर्व, छोटा गंधर्व जैसे दिग्गज शास्त्रीय पंडितों ने ज्ञानोबा उत्पात को अपने दिलों में स्थान दिया और उत्पात जी का संगीत प्रतिष्ठित संग्रहालयों की शान बनी।

विनायक वासुदेव, चिचपोकली, मुम्बई
मो.9820759088

बेटे की विदाई-मातृत्व भाव से अधिकार हस्तांतरण

डॉ सुमन चौरे

दीवाली के अवसर पर सभी ओर भीड़ नजर आती है। विशेषकर, यदि रेल गाड़ियों में आरक्षण नहीं हो तो आना-जाना दूभर हो जाता है। बेटी को मुंबई जाना, लौटना था। न रेल में आरक्षण मिला, न विमान का टिकट मिल पाया। अंततोगत्वा पुणे जाने वाली बस से भेजना पड़ा।

बस बस-स्टैंड पर लगी। सब हम उम्र युवक-युवतियाँ बस में चढ़े। बस ने रवानगी डाली। उससे लगी सबकी आँखें दूर तक गईं। फिर उदास मन से माता-पिता भारी कदमों से वापस चल दिए। उस भीड़ में हमारे एक सजातीय परिवार से बहुत दिनों बाद अचानक भेंट हुई। पता चला, बहू-बेटे को बस में बैठाने आए थे। मैंने सहज ही पूछ लिया,''बहू कहाँ की है।'' मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा,''आईटी ने सब अधिकार छीन लिए।''

'आईटी ने सब अधिकार छीन लिए।'सतसैया के दोहे जैसे इस वाक्य ने उनके अन्तर की सब पीड़ा उगल दी। सच है, जैसे ही पुत्र किलकारियाँ लगाने लगता है, माँ की कामना होती है, उसके घर आँगन में एककुलीन परिवार की सुन्दर कोमलांगी, शरमाती,लजाती बहू छम-छम, छुम-छुम करके घूमे-फिरे। घर में वो रौनक बिखेर दे।

अपने बालक को गोद में लेकर माँ चन्दा मामा से बात करती है, तब भी उसकी मनोभिलाषा एक सुन्दर बहू के रूप में रहती है-

आ रेऽचंदा भसी बाँधऽ
दूधऽ घीवऽ की वावड़ी,
फूल पलाश की वाड़ी
नानो लावैं नानी लाड़ी

भावार्थः चंदा मामा से भी माँ यही अरज करती है, कि तू आ जा, भसि ला दे। दूध-घी की बावड़ी भरी। फूल पलाश की बाड़ी है। मेरा नन्हा बेटा सुन्दर लाड़ी (दुलहन) ले आयगा।

माँ का लाड़ उमड़ता है बेटे के प्रति, तो वह उसमें भी एक झुम्मक लाड़ी की कामना, चाहना करती है और नन्हे से मनुहार करती है, वह रोटी खाय-

चन्दा मामा चन्दी दै
घीवैं मैं रोटी बोळई दऽ
नाना भाई खैं भावै नीऽ
नैं झुम्मक लाड़ीऽ आवैं नीऽ

भावार्थ : चन्दा मामा तू अपनी चाँदनी दे, साथ ही घी में रोटी डुबा-डुबाकर दे। अगर घी में डूबी रोटी नहीं खायगा, तो बेटा फिर तेरी झुम्मक लाड़ी नहीं आयगी।

माँ एक हिदायत भरा संदेश देती है कि घी-रोटी नहीं खायगा तो तेरी झम्मक लाड़ी नहीं आयगी। माँ झोली में झूलते अपने नन्हें सुकोमल पुत्र को देखकर भी एक सुन्दर बहू की आकाँक्षा करती है, जिसे माँ अपने सब अधिकार सौंप देना चाहती है।

निमाड़, सांस्कृतिक क्षेत्र, में यह सहज प्रवृत्ति एक परम्परा के रूप में अवस्थित है। विवाह के अवसर पर 'वर निकासी' की प्रक्रिया के पूर्व 'सुहागभात' माँगने की एक रीत है। इस रीत के अनुसार मण्डप के मध्य में ग्यारह, इक्कीस या विषम संख्या में महिलाएँ वृत्ताकार में बैठती हैं।उनके सम्मुख पत्तल में गुड़, घी और भात परोसा जाता है। विवाह स्थल पर स्थापित कुलदेवी के स्थान के पास से वर की माँ घी की धार देती हुई इन पत्तलों पर लाकर परोसती है। इस वृत्ताकार के बीच में माँ अपने पुत्र को गोद में लेकर बैठती है। पुत्र को अपने अंक में भरकर चारों हाथों से हर सौभाग्यवती महिला के सम्मुख जाकर कहती है-''सुभागवती सुभाग दै।'' और वह सौभाग्यवती अपनी पत्तल से गुड़-घी-भात के पाँच कौर माँ बेटे की पत्तल में देती है और कहती है,''लै वो सुवाय ढाक्यो वान।''

भावार्थ : बेटे को साथ लेजाकर सौभाग्यवती के सम्मुख जाकर माँ कहती है, ''हे सौभाग्यवती सुहाग दे'' और सौभाग्यवती गुड़-घी-भात के पाँच कौर देते हुए कहतीं हैं, ''हमने भरपूर सौभाग्य दिया।''। मण्डप में वृत्ताकार में बैठी सभी महिलाओं से पाँच-पाँच कौर लेने के बाद सबके बीच में बेटे को गोदी में बैठाकर माँ सभी से एकत्र किया गया गुड़-घी-भात अपने हाथ से बेटे को खिलाती है और बेटा भी माँ को खिलाता है। फिर बेटे को पानी पिलाकर माँ उसका मुँह धोकर अपने आँचल से पोंछती है और यह कह कर गोदी से उतार देती है कि 'आज तक माड़ी, को अँवै लाड़ी को।' अर्थात् आज तक तूने माँ के साथ भोजन किया, अब तू लाड़ी का हो जायगा, उसके साथ भोजन करना।

यह कितनी उदात्त परम्परा है निमाड़ क्षेत्र की, जहाँ माँ अपने मन को कड़ाकर बेटे को उस झुम्मक लाड़ी के लिए गोदी से उतार देती है। एक विराट कल्पना। जिस झुम्मक लाड़ी का मुँह देखने के लिए वह अपने बेटे से घी में डूबी रोटी खाने की मनुहार करती है, उसी झुम्मक लाड़ी के लिए वह अपने बेटे को गोद से उतार देती है,ताकि वह अपनी नई जीवन संगिनी के साथ प्रसन्नता से रहे। बेटी की विदाई से भी अधिक कारूणिक विदाई है बेटे की। घर में ही रहकर बेटा पराया हो जाता है। किन्तु निमाड़ में इस परम्परा ने सुदृढ़परिवार, समाज को जन्म दिया है।

बरात रवाना होते समय, जब माँ बेटे को विदाई देती है, तब अपने साथ गौर पूजन कर अपने और पुत्र के बीच एक अन्तर-पट डालकर परछन करती है, अर्थात् बहू के आने के बाद बेटे और माँ के बीच एक मर्यादा का प्रतीक है यह पट। बेटे की आँखों में माँ काजल लगाकर गले मिलकर बरात में जाने के लिए विदा करती है। पर्दे के पीछे से माँ कहती है,''बेटा बिना मुझे देखे पाट से उतर जा, घर में एक बहू लेकर आना।'' माँ जब बेटे को विदा करती है, तो जो गीत चलते हैं, वे जीवन की सारगर्भिता को दर्शाते हैं। एक गीत-

काहेऽ का कारणऽ सखीएल
अम्बो सो मौर्यो राजऽ
काहे का कारणऽ
कैरी गदैरई
कोयलै का कारण सखीएल
अम्बो सो मौर्यो राजै
सोगीटा का भागै कैरी गदैरई।
काहे का कारणऽ सखीएल
मेहूलो सो बरस्यो राजऽ
काई का कारण दूबाऽ लहलही
धरती का कारणऽ सखीएलै
मेहूलो सो बरस्यो राजै
गौवा का भागऽ दूबाऽ लहलही
काहे का कारणऽ सखीएलऽ
पुत्र सो जलम्यो राजऽ
काहे का कारण दीय अवतरी
ववूवरऽ का भाग सखीएलऽ
पुत्र सो जलम्याँ राजऽ
साजन का कारणै दीयऽ अवतरी।

भावार्थ : माँ पूछती है, ''हे सखी! मेह किसलिए बरसे और दूब किसके लिए लहलहाई।'' सखी कहती है, ''धरती के कारण मेह बरसे और गौवा के भाग्य के कारण दूब लहलहाई। सुवा के कारण आम्रवृक्ष बौराया और कोयल के भाग्य से कैरी गदरा रही है। हे सखी, पुत्र का जन्म बहूवर के भाग्य से हुआ है और पुत्री का जन्म समधीजी के बेटे के भाग्य से हुआ।''

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में माँ के मन में उठने वाले प्रश्नों और उनके समाधान हैं। ये प्रश्न और समाधान ईश्वर की प्रकृति के माध्यम से प्रस्तुत किए गए हैं। ये समाधान माँ के मन को तैयार कर देते हैं, कि बहू के भाग्य से ही उसने पुत्र को जन्म दिया है।

पुत्र जन्मते ही बहू का भाग्य उदय हो गया, भले ही उस समय बहू का जन्म हुआ हो या न हुआ हो।

माँ चिन्तन करती है, मन में उसके विस्मय जागता है, प्रकृति का नियम कितना विचित्र है। माँ के मन को मथते ये गीत निरन्तर चलते हैं-

हाऊँ अचरज मन ऽ महूँ मानऽती
मनऽ वावतड़ाऽ मनऽ हरखि रह्याऽ
मनऽ सींचतड़ा दिनऽ जायऽ
हाऊँ बाग लगाऊँ दुई चारऽ...
कैरी की बिरिया कोयळऽ आ गई,
म्हारो बागऽ परायो होयऽ...।
हाऊँ बागऽ लगाऊँ दुई चारऽ...
फूलड़ाऽ की बिरिया माळणऽ आ गई,
म्हारो बागऽ परायो होयऽ...।
हाऊँ दीय ते रत्न अवतरीऽ..
वो तो आयाऽ साजन लई गयाऽ...
म्हारी ममता पराई होयऽ..
हाऊँ पुत्र जलम्या दुई चारऽ जी
वो तो आई ववूऽ वर लई गई।
म्हारी कूखऽ पराई होयऽ...।

भावार्थ : माँ सोचती है, प्रकृति का नियम भी कितना विचित्र है। मैंने आम्रवृक्ष लगाया हर्षित हो दिन रात उसकी सेवा करी, और जब कोमल कैरी लगी, तो कोयल खा गई। मेरा बाग पराया हो गया। जब मैंने बाग लगाया और फूल खिलने लगे, तो मालन उन्हें तोड़कर ले गई।मेरा बाग पराया हो गया। मैंने पुत्री को जन्म दिया और वह बड़ी हुई, तो साजन ले गए। मेरी ममता पराई हो गई। मैंने पुत्र को जन्म दिया, जब वह युवा हुआ, तो बहू का अधिकार हो गया। मेरी कोख (कुक्षी) पराई हो गई।

घर से जनवासे की ओर जाते समय माँ की मनोदशा के गीत बधावा गाया जाता है। बरात की विदाई के पूर्व दूल्हे को जनवासा दिया जाता है। जहाँ माँ के मन में हर्ष-वियोग का द्वंद्व चल रहा है। बेटे को आज तक अपने से दूर नहीं रखा, वह बेटा माँ से दूर जा रहा है, बेटे के मन में भी इसी द्वंद्व का ज्वार उठ रहा होगा। जनवासे से जाते समय ये गीत चलता है -

काईऽ रे राइवर बनो अनमन्यो
जेनैं छोड़ी रऽ माँयै की खोळ

असो रेऽ बधाओ, म्हारा मनै वसै
मनऽ खऽ राखजे घणी धीरऽ धराऽै
थारा दादाजी जासे संगातै साजन की बेटी परणी लावजै
क्यों रेऽ हळदुलो बनो अनमन्योऽ
जेनै छोड्यो छे अँगणो को खेलऽ
थारा रेऽ वराती जासे संगात साजन की बेटी परणी लावजेऽ
असो रेऽ बधाओ म्हारा मनैवसै

भावार्थ : हे सुन्दर सलोने दूल्हे तू क्यों अनमना उदास है। तूने माँ की गोद छोड़ दी क्या, इसलिए उदास है। मेरे मन में हर्षोल्लास बधाई है। तू मन में धीरज रख। तेरे साथ तेरे दादाजी, पिताजी सब जा रहे हैं। मेरे मन में बधाई आनन्द हिलोर ले रही है। तू इसलिए उदास है क्या, हे हल्दी वाले दूल्हे तेरा आँगन छूट गया। पूरे बराती तेरे साथ जा रहे हैं, तू साजन की बेटी को ब्याह कर घर ले आ।मेरा मन पुलक उठा है।

माँ का बेटा लखेरी लाड़ी लेकर आ गया । माँ मतवाली हो उठी। बेटे का मुँह तो जन्म होती ही देखा किन्तु बहू का मुँह देखने में एक लम्बा समय इन्तजार में बिताया। बधावा गीतों में मधुमय राग गूँथा है।

आँवळई तेऽ सवळई म्हारा आँगणऽ
पूजूँ तेऽ पुन्यवै चाँदऽ
सरी साँझ जुवारतीऽ जिन्नऽ पूजिया भगवानऽ
खोळाऽ मंऽरारव्यो तानो बाळोऽ
जोवूँ ते वव्ऽ की वाटऽ
सरी साँझ जुवारती जिन्नऽ पूजिया भगवानऽ
वव्वरै आया तोरणै वधीऽ ते कूळकीऽ एळऽ
सरी साँझ जुवारती जिन्नऽ पूजिया भगवान

भावार्थ : मेरे आँगन में आँवला, पीपल, केळ के वृक्ष लगे हैं। मैं साँझ सबेरे भगवान् को पूजती हूँ। दीपक लगाकर पूनम चाँद की आरती करती हूँ। भगवान् की कृपा से मेरे घर शुभ दिन आया है। जिस छोटे से लाल को दूध पिलाते हुए उसका मुख निहारा करती थी, भगवान् ने मेरी कामना पूरण की, मेरी बहू तोरण में आ गई है। मेरी वंश बेल की वृद्धि हुई।

माता ने जिस तोरण द्वार पर से अपने बेटे का परछन कर घर से बिदा किया था, अब उसी तोरण में वह बहू के साथ खड़ा है। अब माता अपने बेटे की नहीं, अपनी बहू की नजर उतारती है। सूपा से बहू की परछन करती है। सास अपने दोनों हाथों को गुणा आकृति में कर बहू के दोनों कंधों पर से पाँच बार रोटी न्यौछावर करती है।

सूप से परछन करना प्रतीक है कृषि प्रधान समाज की सरल परम्पराओं का । सूप सार तत्त्व का द्योतक भीहै, जो सार और शिष्ट तत्त्व ग्रहण करता है, अपशिष्ट बाहर कर देता है।सूप का भार भी न के बराबर होता है। बहू के रूप में घर में एक ऐसे व्यक्ति का आगमन होता है जो सार-तत्त्व को ग्रहण करे। बहू घर में अन्नपूर्णा रूप में रहे। तोरण में ही बहू को बैठाकर माता अपने बहू-बेटे से गौर गणेश की पूजन करवाती है। बहू के गले में वादी (मायके से बाँधी गई बेल) बँधी रहती है, जिसे सास छोड़ती है। फिर बहू का दाहिना हाथ पकड़ कर तोरण से कुलदेवी के पास ले जाती है। यहीं पर बहू अपने साथ लाई दीवी की जोत (प्रज्वलित दीपक) से कुलदेवी के सामने लगे दीपक की बाती को प्रज्वलित करती है।

सास बहू से 'भरया-रीतो' (भरा-खाली) करवाती है। कुलदेवी के सामने छोटी-छोटी माटी की कोठियाँ भरी रखी जाती हैं, जिनमें गेहूँ, जुवार, धान, दाल , धनिया एवं एक कोठी में घी एवं एक में तेल से भरे बर्तन रखे रहते हैं। सास अपने हाथ से बहू का हाथ पकड़ कर कोठी में डलवाती है। फिर पूछती है, 'भरयो कि रीतो'अर्थात् कोठी भरी है या खाली है। बहू हर कोठी को भरयो कहती है। पश्चात् तेल-घी की कटोरियों में अंगुठियाँ रहती हैं जिसे 'राँझण-काँजण' की मूँदी कहते हैं। अँगूठी सास अपनी बहू को पहनाती है। यह परम्परा एक स्वस्थ गृहस्थी, पारिवारिक समृद्धि का प्रतीक है कि सास अपनी बहू को घर की सम्पूर्ण जानकारी देती है। बहू के हाथ में सास लाल चूड़ा पहनाती है। तत्पश्यात् सास, बहू को गोद में बिठाकर उसके पैर में चुटकी दबाती है। चुटकी चाँदी की बिछिया का परिचायक होता है। यहाँ निमाड़ की उदार परम्परा एक बार फिर दिखती है कि सास स्वयं, बहू के पैर को स्पर्श करती है, यहाँ कोई दुविधा या भेद नहीं है कि बहू के पैर को छूना मान-अपमान है। इस रस्म को 'चूड़ा-चुटकी' कहते हैं।

बहू को'चूड़ा-चुटकी' पहनाकर सास उसकी बलैया लेती है। बहू सास के चरणस्पर्श करती है। निमाड़ में मुँह दिखाई जैसी परम्परा नहीं है। जब बहू सास के चरण स्पर्श करती है तब सास चाँदी या ताँबे का सिक्का बहू के पल्लू में बाँधती है और उसकी कमर में पल्लू खोंस देती है। निमाड़ में विवाह के अवसर पर हल्दी लगने के बाद से ही दुलहन पल्ला कमर में नहीं खोसती है। सास ही उसका पल्लू खोसती है। पल्लू में, कड़ में सिक्का सास के द्वारा खोस देना एक प्रतीकात्मक संदेश है कि सास ने बड़ी सहजता से मातृत्व भाव से बहू को अपने अधिकार हस्तांतरित कर दिए और उत्तरदायित्व के साथ मर्यादा की सीख दी।

बहू घर में आयगी। झुम्मक लाड़ी आयेगी। तब सास सहर्ष कितनी सारी रीतियाँ पूर्ण करती है। बहू के सामीप्य, सान्निध्य, अपनत्व, वात्सल्य भाव उमड़ पड़ता है और याद हो आता है गोदी में खेलते बेटे की बहू को देखने की ललक।

मैं सब कुछ सोचते जा रही थी, तभी गाड़ी रूकी, घर आ गया। मुझे उन माँ का चेहरा और शब्द बार-बार दिखाई-सुनाई दे रहे थे कि 'आई.टी. ने सब अधिकार छीन लिए'।

13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्सटेंशन
बावडिया कला, भोपाल- 462039
मोबाइल- 09819549984, 09424440377

बुंदेलखंड का लोक

दया दीक्षित

लोक तथा लोक साहित्य में वह सब कुछ विद्यमान है, जो मनुष्य के जीवन से संबंधित है। ज्ञान, विज्ञान, धर्म, संस्कृति, सभ्यता, आचार, विचार, शिक्षा, चिकित्सा, प्रकृति, पर्यावरण तथा मनुष्य जीवन को स्वरूप व प्रगति उन्मुख बनाने के कारक कारण अपने विशिष्ट एवं परिवर्तित रूप में लोक व उसके साहित्य में विद्यमान हैं, और हों भी क्यों न लोक से ही तो उसका साहित्य निकलता व निर्मित होता है! भारत के हृदय प्रदेश के अन्तर्गत आने वाले मध्यप्रांत या मध्यप्रदेश तथा उत्तरप्रदेश के विस्तृत भू-भाग में अवस्थित विंध्यपर्वत शृंखलाओं से आच्छादित विशिष्टताओं का पुजीभूत स्थल बुंदेलखण्ड अपने समृद्ध लोक वैशिष्टताओं के कारण सहज ही सुधीजनों के आकर्षण का केन्द्र रहा है! बुंदेलखण्ड का प्राचीन धर्म जैजाक भुक्ति है। बुंदेली यहाँ की प्रथम व प्रमुख बोली है। बुंदेलखण्ड अपनी खनिज वन संपदा तथा भौगोलिक व सांस्कृतिक वैशिष्टय के कारण विश्वविख्यात है।

यहाँ के लोकजीवन में सहज विश्वास व आस्था का स्थान सर्वोपरि है। बुंदेलों वाले इस भू-भाग को बुंदेलखण्ड कहना पूर्णतया उपयुक्त है। बुन्देला काशी के एक वंश की एक शाखा है। विध्यावासिनी देवी की आराधना के साथ ही अन्य किंवदंतियों ने गहरवार राजवंश की इस शाखा को विंध्येल, बिन्देल, बोलन्द, बुंदेल जैसे रूपों में विवेचित किया है। ध्वनि के दृष्टिकोण से बुंदेला पद 'बुंद' के साथ 'एल' प्रत्यय के योग से विकसित चंदेल, बघेल, सहेल, जैसी रूप रचनाएँ हैं। बुंदेलखण्ड वह भूभाग है जहाँ बुंदेलों की शासन व्यवस्था रही है। वर्तमान समय में बुंदेलखण्ड के अन्तर्गत उत्तरप्रदेश के सात तथा मध्यप्रदेश के सत्रह जिले आते हैं। बुंदेलखंड का अस्तित्व भौगोलिक दृष्टि से चालीस करोड़ वर्ष से भी पुराना केम्बियन युग का है। अतिप्राचीन होने के कारण यहाँ का लोक जीवन लोक समाज की अत्यंत समृद्ध तथा बहुआयामी विशेषताओं से संपन्न है। इस लोक जीवन में आदिमानवकालीन सभ्यता से लेकर अर्वाचीन डिजिटल युग की उपलब्धियाँ, लाभ-हानि, अपने बुलंद कलेवर से विराजमान है और क्यों न हो, निश्छल निष्कलुष लोक समाज सज्जन व सीधा-साधा तो है किन्तु प्रत्युत्पन्नमति व सहज प्रवाह के क्षेत्र में नागर समाज के कान भी काटने में समर्थ है! बुंदलेखण्ड के लोक पक्ष तथा सांस्कृतिक पक्ष को पूर्णतः समझने के लिये कुछ बिन्दुओं का परिदर्शन आवश्यक होगा।

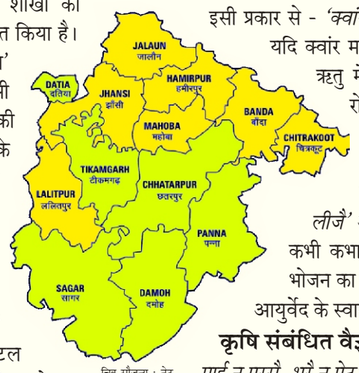

चित्र सौजन्य : नेट

पारस्परिक सहयोग का प्रतीक बुंदेली समाज - बुंदेलखण्ड के लोक जीवन तथा समाज की एक अति महत्त्वपूर्ण विशेषता है पारस्परिक सहयोग व सहकारिता की भावना। जन्म से लेकर मृत्यु तथा मृत्युपर्यंत कार्यों में 'बुलौआ' दिया जाता है। यह बुलौवा स्वजनों तथा पुरा पड़ोस वालों को इसलिए दिया जाता है कि सभी लोग एकत्र व संगठित होकर संबंधित कारज को सम्पन्न करने में अपना योगदान करें! इस योगदान में समाज के प्रत्येक वर्ण की सहभागिता दृष्टव्य है! नाउ, धींवर, बढ़ई, लुहार, धोबी, हरिजन आदि वर्णों का सहयोग समाज के अन्य वर्णों के लोग अपने विभिन्न कारजों में, संस्कारों में लेते है। यह सहकारिता व अन्योयाश्रितता बुंदेली समाज को वसुधैव कुटुम्बकम् की विराट भावना से आपूरित करती है! अन्त्येष्टि से लेकर विवाह के लिए मंडपाच्छादन हेतु 'देही' की लकड़ी व पत्ते काटने तक के लिये 'बुलौआ' लगता है। आर्थिक सहयोग इस बुलौआ का ऐसा सशक्त आर्थिक पक्ष है जो आर्थिक दृष्टि से भी 'कारज वाले घर' की मदद करके उसे आर्थिक संबल व सुरक्षा प्रदान करता है। ब्याह में भींकन (भीख) को बुलौवा ऐसा ही रिवाज है।

ऋषि प्रणीत वैज्ञानिक संस्कृति का संवाहक - महर्षि दुर्वासा, च्यवन, अत्रि, अगस्त्य तथा आयुर्वेदाचार्य, महर्षि चरक, 'सुश्रुत' प्रभृति वैदिक ऋषि मुनियों की कर्मस्थली बुंदेलखण्ड की संस्कृति विज्ञान सम्मत है! वर्षों तक अपने आश्रमों में अनुसंधान करने वाले इन ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन की समग्रता को प्रेरित प्रभावित संचालित करने वाले विधि-विधानों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आविष्कृत किया था। यही कारण है कि बुंदेली संस्कृति अपने साथ एक सशक्त वैज्ञानिक पक्ष को लेकर चलती है। तुकांत कहावतों लोकोक्तियों के माध्यम से खान-पान की सजगता से लेकर अन्याय लोकाचारों को उपदिष्ट किया गया है। स्वस्थ्य संबंधी कुछ बुंदेली कहावतें देखें, जो निरंतर अद्यतन लोक मानस में व्याप्त है-

जीखों मारन चाहिये, बिन सूली बिन घाव
तीखों सिक्छा दीजिये, घुंइया पूड़ी खाव

अर्थात जिसको बिना किसी शस्त्र से मारना हो, उसे यह शिक्षा देनी चाहिये कि घुइयां और पूड़ी का सेवन करे। ये दोनों अत्यंत कब्जकारी व्यंजनों की श्रेणी में आते हैं। स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहने वाले इनके सेवन से बचते हैं।

इसी प्रकार से - *'क्वांर करेला, कातिक दही, मरहै न तौ परे ही सही'।* यदि क्वांर महीने में करेले का सेवन और कार्तिक जैसी शीत ऋतु में दही का सेवन करने वाला न भी मरे तो भी रोगग्रस्त होकर बिस्तर तो पकड़ ही लेगा! आशय यह कि उक्त महीनों में उक्त वस्तुएँ खाने का निषेध है! एक अन्य कहावत की सीख देखें- *'सावन ब्यारी जब तक कीजे, भादों बाकौ नांव न लीजै'* अर्थात वर्षा ऋतु के सावन महीने में रात्रि भोजन कभी कभार करना चाहिए किन्तु भाद्रपद मास में तो रात्रि भोजन का नाम तक न लेना चाहिये। उपर्युक्त कहावतें पूर्णतः आयुर्वेद के स्वास्थ्य संबंधी वैज्ञानिक निर्देशों की परिचायक हैं!

कृषि संबंधित वैज्ञानिक कहावतें - *''मघा न बरसें भरे न खेत, माई न परसै, भरै न पेट''*

(मघान्त में जब तक पानी नहीं बरसता, तब तक खेत उसी तरह नहीं भरते जैसे माता द्वारा जब तक भोजन न परोसा जाय, तब तक पेट नहीं भरता।)'

''जो कऊं बरसै हांती, गैऊं लग है छाती'' (यदि हस्त नक्षत्र में बरसात हो जाय, तो गेहूं की फसल छाती तक उन्नत हो जाती है)

सामाजिक लोकाचार की बानगी - *''भीख, दायजो (दहेज) नारधन चोरी जुआ अगात*
एसे धन खों परहरौ (छोड़ दो) जे नौईं ठहरात''

अन्यान्य परंपराएँ व मान्यताएँ - जिस प्रकार से दक्षिण भारत विशेषतः तमिलनाडु (चेन्नई) में घर के बाहर रंगोली या चौक पूरने की परंपरा है, उसी प्रकार से बुंदेलखंड में आदिकाल से ही 'उरैन डारने' की परंपरा है। गाय के गोबर से घर के बाहरी द्वार की देहरी पर चौकोर रूप में गोबर लीपा जाता है, इसे 'उरैन डारना'' कहते हैं। वैज्ञानिक मान्यतानुसार गोबर की लिपाई और चूने की पुताई से असंख्य रोगाणुओं, कीटाणुओं का नाश होता है। उरैन डारने से पहले देहरी की चूने से पुताई की जाती है। त्योहार, पर्व व शुभ एवं मंगल कार्यों में तो 'उरैन डारना' अपरिहार्य होता है।

वर्षा ऋतु में अपेक्षाकृत अन्य ऋतुओं के पाचक अग्निमंद रहती है, इस

समय तला हुआ व गरिष्ठ भोजन नुकसानदायक होता है। जबकि उबला भोजन करना लाभदायक होता है। बुंदेलखण्ड में वर्षाऋतु के सुरेखा क्षेत्र में 'कोरी' खाने का रिवाज है। ---- अर्थात उबला हुआ गेहूँ, स्वादानुसार नमक या गुड़ डालकर खाया जाता है।

इसी प्रकार से 'आसाढ़ी अठवारी तथा इंछा नौमी ऐसी तिथियाँ हैं जिनमें घर के बार प्रकृति के सानिध्य में भोजन बनाने खाने का रिवाज है। 'आसाढ़ी आठवारी की तिथि आषाढ़पूर्णिमा है इसे 'गुरूपूनें' भी कहा जाता है, बुंदेली समाज गुरूपूने को अपने आध्यात्मिक धार्मिक गुरू का पूजन करता है। इंछा नौमी यानि कार्तिक शुक्लपक्ष की 'अक्षयनवमी' बुंदेली समाज की मान्यता है कि इंछा नौमी को आँवला खाने तथा आँवले के वृक्ष के नीचे भोजन करने से सालभर में जाने अंजाने की हुई जीव हिंसा से मुक्ति मिलती है। आटे की छिपकली तथा अन्यान्य जीवजंतुओं का आकार बनाकर आंवला के वृक्ष के नीचे इस मान्यता से चढ़ाए जाते हैं कि सालभर तक इनसे रक्षा होगी!

लोक देवता एवं लोकपर्व - बुंदेला कुंवर वीर हरदौल, कारस देव, रक्कसबाबा तथा दूलाबाबा, महामाई, खांजा बब्बा प्रभृति विभूतियाँ ऐसे बुंदेली लोक देवी-देवता हैं, जिन्हें प्रत्येक शुभ कार्य खासकर विवाह संस्कार में अवश्यमेव मनाया (पूजा) जाता है! इनके सुमिरन के बिना शुभकार्य नहीं होते!

अन्य लोकाचार रीति रिवाज - प्रायः धार्मिक कृत्यों तथा होली दीवाली आदि पर नाइनें घर-घर (अपनी अपनी जजमानी) जाकर घर की कुँवारी तथा सुहागिन स्त्रियों को पैरों में महावर लगाती है, विवाहित स्त्रियों के पैरों में महावर से पहले हल्दी लगाने का रिवाज है! पर्वों, त्यौहारों के बाद घर की स्त्रियों की मालिश भी ये नाइनें करती हैं! त्योहार से पहले ढिंग देकर घर के कमरों को गोबर से लीपती हैं या घर की स्त्रियों की सहायता करती है! ऐसे प्रत्येक कार्य पर नाइनों को नकद धन के साथ खाघ वस्तुएं वस्त्रादि तथा 'आखौती' (गेहूँ, चना आटा, पिसिया, चावल आदि) भी दी जाती है।

बरा बरसात यानि ज्येष्ठ कृष्ण अमास्या को बुंदेलखंड की सुहागिन स्त्रियों द्वारा वटवृक्ष की पूजा की जाती है। प्रसाद के रूप बेसन तथा गुड़ मिश्रित आटा के 'बरगदा' बनाए जाते हैं। यह मूलतः सुहागिन स्त्रियों की व्रतोपासना होती है, इसमें वे तब तक निर्जल व निराहार रहती हैं, जब तक बरगद की पूजा न कर लें। पूजनोपरांत बरगद की कोरी घेंटी निगलकर जल पीती हैं।

अक्षयतृतीया! वैशाख माह की शुक्ल पक्ष की तृतीया बुंदेलखण्ड के लोक समाज में 'अक्ती' है। इसमें कुँवारी लड़कियाँ अपने गुड्डे गुड़िया (पुतरा पुतरिया) का ब्याह करती है। यह ब्याह वटवृक्ष की डालों के 'फेरों' से संपन्न होता है। भीगी हुई चने की दाल 'देओल' परस्पर बाँटे (वितरित) जाते हैं।

प्रमुख त्योहार पर्व - वैसे तो धर्मप्राण हमारे देश में वर्षभर उत्सवों पर्वों का माहौल रहता है, किन्तु बुंदेलखंड के लोकजीवन के पर्वों का उल्लास आल्हाद देखते ही बनता है। नवसंवत्सर के पहले दिन यानि वासंतिक नवरात्र की परमा (प्रतिपदा) को नए वस्त्रों को धारण करके पकवान आदि बनाए खाए जाते हैं। माना जाता है कि वर्ष के पहले दिन को पर्वमय मनाने से पूरे सालभर पर्व का वातावरण रहेगा। गणगौर यानि चैत्र शुक्लपक्ष तृतीया। यह सुहागिन स्त्रियों का त्योहार है इसमें गौरा का पूजन होता है तथा उन्हें आटा के आभूषण चढ़ाए जाते हैं। प्रसाद में गनगौरा (गेहूं के आटे में गुड़ मिलाकर) बनते हैं, पुरुषों को यह प्रसाद नहीं दिया जाता है। 'जवारे' यह वासंती नवरात का अनुष्ठान है।

इसमें दुर्गाजी के सम्मुख एक पात्र में मिट्टी में जो डालकर बोए जाते हैं। नवें दिन इन जवारों को सिर पर रखकर शोभायात्रा निकालकर सिराने जाते हैं। शीतला आठें को बासेरी आठें भी कहते हैं इसमें बासा भोज भी चढ़ाया जाता है। आसामाई, हरायतें, हर जोती, साउन तीज, नागपांचे, भुजरियाँ, राखी, हरछठ, कन्हैया आठें, बाबू की दौज, तीज़ा, रिग पाँचे, गनेश चौथ, मौराई छठ, सन्तान सातें, महालक्ष्मी, सुआटा, नौरता दुर्गा आठें, अनंत चौदस आदि त्योहारों से बुंदेलखण्ड का लोकजीवन अपनी उत्सवधर्मिता का विशिष्ट परिचय देता है यह विशिष्टता कुछ खास परम्पराओं के कारण आती है। जैसे दशौरा (दशहरा) का पर्व बुंदेलखंड में भाईचारे सामनजस्य का पर्व है। कई कई दिनों से घरों की सफाई पुताई होने लगती है। विविध व्यंजन बनाए जाते हैं। दशहरा की प्रातः नाइन धींवर (ढीमर) के बच्चे एक कटोरे में पानी में मछलियाँ लेकर घरों में जाते हैं, लोग मछली दर्शन करके कटोरे में पैसे डालते हैं। इसी प्रकार नीलकंठ को देखना शुभ माना जाता है। सायंकाल रावण दहन के पश्चात लोक समाज में एक-दूसरे के घर जाकर दसैरा मिलने का रिवाज है। आबाल वृद्ध नरनारी परस्पर भेंट के उपरांत लोगें लाइची पान खाते हैं। दसैरा मिलन लगभग एक सप्ताह तक चलता है। इसी प्रकार दीपावली का त्योहार धूमधाम से मनाने के दूसरे दिन 'मोनिंया' निकलते हैं। इसमें पुरुषों का एक समूह कमर में मोरपंख तथा घुंघरू बाँध कर गाँव नगर का फेरा करते हुए नाचता गाता प्रतिष्ठित जनों के घर के सामने रूक कर नृत्य करता है। कार्तिक माह का व्रत करने वाली कत्कारिनें कहलाती हैं। इसका पूरा विधि विधान आस्था उत्पन्न करने वाला होता है। मकर संक्रांति बुंदेलखण्ड में संकरांत है! यह तीन दिवसीय पर्व होता है संकरांत से पहलो वाले दिन तिलैयां में तेल से बनें पकवान बनाए खाए जाते हैं। संकरांत को खिचड़ी व तिल के लड्डू बनते हैं। संकरांत के दूसरे दिन भरभरांत होती है, इसमें 'गड़ियां घुल्ला' भरे जाते हैं। एक जेवली में मिष्ठान बाँध भर 'कठारी' भरी जाती है जो बसंतपंचमी पर खुलती है। बसंत पंचमी को पीत वस्त्र धारण करके सरस्वती पूजन होता है। इसी प्रकार दिवारी (पांच दिवसीय दीवाली) करवाचौथ, देवठान आदि त्योहार मनाए जाते हैं। स्त्रियाँ अपने स्वजनों की मंगलकामनाएँ लिये सुहागिलें हुरैया संकटा आदि का आयोजन करती हैं, इसमें केवल सुहागिनें स्त्रियां ही प्रतिभोग करती हैं।

बुंदेलखण्ड के मेले - बुंदेली समाज में मेलों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नवरात्रि के जवारो के लोग पेंड़ भरकर (साक्षात दण्डवत की मुद्रा में मंदिरों) तक जाते हैं। अक्ती मेला व अमावस पर चित्रकूट मेला, आदि अत्यंत लोकप्रिय मेले हैं।

बुंदेली लोक का खान-पान -उत्सवों व विशेष पर्वों पर 'ममूंदी रोटी' बनाने की प्रथा है, इसमें चना की दाल, भात, कढ़ी पापर, गोरस, पुलाब आदि बनाए जाते हैं। परोसते समय घी व गुड़ (शकर) भी डाला जाता है। सतुआ, महुआ की डुबरी, बिरचुन, उसैले बेर (उबले हुए बेर), आम, नींबू, आँवला, मिर्चा आदि का अथानों (अचार), लुचई (पूड़ी) गाड़े फरा, थोथा, पछयावर, रसयावर, लटा, मुरका, गकरियाँ, भाजी का मूर्ख जरीं, गुलगुल माड़े, गदा, महेरी, तेलू, लप्सी, खींचड़ा, गंठा के आलू आदि बुंदेलो लोगों के प्रिय भोजनों में सम्मिलित हैं। यहाँ त्योहारों पर अरहर की दाल के स्थान पर चनें की दाल बनाना शुभ माना जाता है।

<u>लोकाचार</u> :- कुछ शगुन शुभ मानें जाते हैं यथा यात्रा में मुर्दा दिखना, भरी बाल्टी या कलश, बछड़े को

दूध पिलाती गैया। कुछ घटनाओं को 'असगुन' माना जाता है- जाते समय छींक होना, रीते बर्तन भांडे दिखना, बिल्ली द्वारा रास्ता काट देना। कुछ टोटके प्रचलित हैं। शिशु की नजर उतारने के लिये राई नोंन या पानी से भरे पात्र का प्रयोग, नीम के झाकरे से नजर उतारना, ज्वर या पीलिया को किसी ओझा द्वारा एतवार या बुधवार को 'फूंक डालना' या झाड़ना। नया वस्त्र धारण करने के लिये बुद्धवार, शुक्रवार बृहस्पतीवार शुभ दिन समझे जाते हैं। शनिवार को तेल चमड़ा या लोहा नहीं खरीदते हैं। घर में गंगाजल अवश्य रखते हैं। एक घर की बेटी पूरे गाँव समाज की बेटी तथा घर का दामाद पूरे गाँव समाज का दामाद माना जाता है। बेटी के घर पानी तक नहीं पीया जाता है। इसी प्रकार के अनेक लोकाचार बुंदेली लोक में प्रचलित है।

<u>मनोरंजन</u> :- लोकनाट्य, नौटंकी, खेल-चपेटा या गुट्टा, चंदा पौआ, चौपर, किस्सा कहानी, गोट-पड़ा, जूज, तीतरबाजी, छुआ छुओअत्त, खो-खो, कंचा, पुतरापुतरिया, हूल गदागदगूल, बटेरबाजी, सुआ, हुइयां, कुत्ता पालना, दंगल, आतिशबाजी, बुंदेली लोगों के मनोरंजन के साधन हैं। गीतों लोकगीतों का अपना महत्व है। ढोलक मंजीरा प्रमुख साधन है।

<u>प्रमुख रीतियाँ</u> :- दाम्पत्य जीवन की शुरूआत फूलचौक से होती है। दंपत्ति की प्रथम संयोग रात्रि के अवसर पर चौक पूरकर, नारियल तोड़कर हवन करके साह्चर्य का विधान होता है। ''आगन्ना सादें'' जैसे रीतियाँ गर्भिणी के लिये होती है। शिशु जन्म को बुंदेली लोकजीवन में 'भऔ' कहा जाता है। शिशु जन्म के तीसरे दिन सोर उठाने की रीति है। तीन सोर होती है। दसवें दस्टौन तथा पूर्व में छठे दिन छठी होती है। कुँआपूजन, गसवारौ असनान, छितरिया उठाना आदि रीति-रिवाज भी शिशु जन्म से संबंधित है। इसी प्रकार से विवाह के पश्चात वधू को विदाई के लिये चौथी चलाऔ, दुसरतौ आदि होते हैं।

नई बहू के द्वारा द्वारे को भांति-भांति से लीपना, रंगोली चौक पूरना, दीवारों पर चित्रांकन आदि का रिवाज होता है।

बुंदेली लोक का संपूर्ण वैशिष्टय एक आलेख में समेट पाना असंभव है तथापि उपर्युक्त विवरण बुंदेलखंड के लोक की एक मनोरम झलक प्रस्तुत करने का अकिंचन प्रयास है।

एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी, 128/387 वाईवन ब्लॉक किदवई नगर कानपुर (उ.प्र.) मो.9415537644

आप क्या सोचते हैं

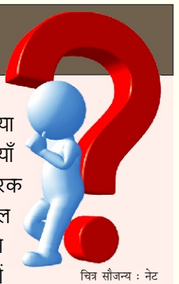

चित्र सौजन्य : नेट

पिछले कुछ समय से सोश्यल मीडिया के विभिन्न मंचों पर कमोबेश प्रत्येक विषय/समस्या आदि पर सत्य-असत्य, भ्रामक जानकारियाँ प्रस्तुत की जा रही है। साहित्य जैसी साधना परक विधा भी इससे अछूती नहीं रही है। सोश्यल मीडिया के कई प्लेटफार्म पर फुटकर साहित्य से लेकर गंभीर साहित्य तक कई वेब पत्रिकाओं में प्रकाशित/प्रसारित किया जा रहा है जिसकी विश्वसनीयता को लेकर कई साहित्य प्रेमियों में शंकाएं उठना स्वाभाविक है। ''सोश्यल मीडिया पर साहित्य का भविष्य'' जैसे कुछ प्रश्नों पर देश के विभिन्न शहरों के रचनाकारों/प्रबुद्धजनों से उनके विचार सादर आमंत्रित हैं। अनुरोध है कि हमारे प्रतिनिधि इस बाबत शीघ्र ही उनसे संपर्क करेंगे, कृपया अपने विचार/अभिमत आपके फोटो परिचय सहित अधिकतम २०० शब्दों में उपलब्ध कराने का कष्ट करें जिन्हें समावर्तन के आगामी किसी अंक में प्रकाशित किया जायेगा। पाठकों से भी आग्रह है कि वे भी इस विषय में अपने विचारों से हमें अवगत करें। आप सब इस बहस हेतु सादर आमंत्रित हैं।

समावर्तन हिन्दी मासिक द्वारा आयोजित 'बहस'

''सोश्यल मीडिया और साहित्य सृजन'' विषय पर
सर्जकों से पूछे जाने वाले प्रश्न

* सोश्यल मीडिया पर इन दिनों साहित्य की कई विधाओं का सृजन देखा-पढ़ा जा रहा है। क्या आपने इसे देखा-पढ़ा या इसमें भागीदारी की है?
* क्या साहित्य जैसे साधनापरक सृजन के लिए यह माध्यम उचित मंच है?
* सोश्यल मीडिया पर जो साहित्य आ रहा है उसे आप किस श्रेणी में और क्यों रखते हैं अर्थात
  1- श्रेष्ठ, 2- चलताऊ, 3- निकृष्ट ?
* यद्यपि वर्चुअल पत्रिका 'समावर्तन' में हमने पूरा ध्यान रखा है तथापि क्या आपको भी लगता है कि सोश्यल मीडिया पर आ रहे अधिकांश साहित्य में वरिष्ठ रचनाकारों की रचनाओं या उनके अंशों अथवा भावों की छबि दिखाई देती है? इस बाबत आप क्या सोचते हैं।
* क्या आप मानते हैं कि आगे जाकर इस माध्यम में भी श्रेष्ठ सृजन सामने आयेगा ?

कृपया उपरोक्त प्रश्नों पर अपने विचार/अभिमत देने का कष्ट करें।

- श्रीराम दवे, संपादक-समावर्तन
मो.94259-15010
e-mail : samavartan145@gmail.com
samavartan@yahoo.com

कविताएँ

रमेश दवे, आलोचक, कथाकार, नाटककार के साथ वरिष्ठ कवि भी हैं। समावर्तन के संस्थापक आदरणीय प्रभातकुमार भट्टाचार्य के अनुरोध पर उनकी ये कविताएँ प्रस्तुत हैं। रमेश दवे समावर्तन के अभिमुख लिख रहे हैं। समावर्तन के जन्म से ही बिना किसी ब्रेक या विश्राम के। उनके कवि रूप से पाठक कम ही परिचित हैं। इसलिए अबकी बार रमेश दवे को कवि के रूप में पढ़िये

- संपादक

स्मृति-वर्षा

बरसती जब स्मृतियाँ
खिल उठते, अथवा मुरझा जाते
प्राणों के वन उपवन
मान्यताएँ कितनी जड़
कहते सभी,
बादल करते वर्षा
नहीं कहता कोई
करता समुद्र वर्षा
स्मृतियाँ बह रही अनवरत
बरस रही अनवरत
बह रही नदियों की तरह
स्मृतियाँ अनुग्रह
जीवन के प्रति

शब्द और जीवन

न श्लोक न मंत्र
न सूक्त न छंद
आत्मा के महाकाव्य का
मात्र एक शब्द
जीवन के व्याकरण का
मात्र एक कारक
संधि- जीवन-मृत्यु की
समास द्वन्द्व का,
शब्द- नहीं कुछ अक्षरों का योग
शब्द, प्राण का स्पंदन
शब्द, प्रार्थना सृष्टि की
शब्द, ध्वनि अंतरिक्ष की
न योग न प्रयोग
शब्द, जीवन जीवन अनुग्रह
शब्द के प्रति!

प्रस्तर-सभ्यता

धरोहरों
खण्डहरों
अतीत के स्मृतिगारों में
रचते रहे
इतिहास का इतिहास
प्रस्तर-पत्र पर
लौह-यंत्र से
लिखा था पूर्वजों ने,
समय के टीलों के नीचे
दबा दिया गया गहरे बहुत गहरे
आदि जीवन
खोजी जा रहीं प्रस्तर-पट्टिकाएँ
पढ़े जा रहे की लाक्षर
की जा रही गणना
कालक्रम की
सभ्यता की तय की गई आयु
मनुष्य का नूतन जीवनशास्त्र
प्रत्यक्ष हो रहा
पुराना प्रस्तरों के वक्ष पर,
लिखो लिखो एकग्रंथ
लिखो-लिखो अपना आत्म-तंत्र
लिखो सभ्यता की जन्मभूमि
प्रस्तर शिलाएँ थीं
हैं मनुष्य का हो जाना प्रस्तर
प्रमाण है इसका!

यहाँ

यहाँ
विपात्र हैं सुपात्र हैं
कुपात्र हैं नहीं है तो केवल पात्र
भरा जा सके जिन्हें
प्राणों के जल से अक्षत करुणा से
अदम्य विश्वास से
आकांक्षाओं की निर्मलता से!
यहाँ सत्कर्म है
दुष्कर्म है
नहीं है तो केवल कर्म
किया जा सके जिसे
चेतना के बल से
वेदना की व्याकुलता से
यहाँ तने हुए तन हैं
जन ही जन हैं
निर्धन हैं
नहीं है तो केवल मन
जिसमें समूची सृष्टि
धड़कती हो
कोमलता बनाकर!

मैं और वे

उनके पास है
एक पूरा शब्दकोश
मेरे पास सिर्फ एक शब्द
कविता!
उनके पास है
अनेक वाक्य से बनी
एक कहानी
मेरे पास है संवेदन!
उनके पास है भाषा का
एक संपूर्ण व्याकरण
मेरे पास मेरी अपनी बोली
उनके और मेरे बीच
फर्क है सिर्फ इतना
वे मैं नहीं
और मैं वे नहीं!

संवाद-पृथ्वी-आकाश

कहा पृथिवी ने
मुझे होना है आकाश
क्यों?
मैं मनुष्यों का
भार ढोते ढोते
तड़क उठी हूँ
मेरी देह घावों से पट गई
छटपटा रही दर्द से
मुझे आकाश होना है!
आकाश ने कहा
मुझे पृथिवी होना है
क्यों ?
मुझे खेत चाहिए
वन चाहिए
पर्वत, नदी, समुद्र चाहिए
मैं शून्य बना
कब तक जियूँ ?
पृथिवी ने कहा
तुम तुम रहो मैं मैं रहूँ
महत्वाकांक्षाएँ दिशा हीन होने लगतीं
मन में पैदा होते दुःस्वप्न
पृथ्वी के आकाश होने के
आकाश के पृथ्वी होने के!

उसके पास

क्या था पास उसके
थी भावना प्रेम की तरह
था भाव-बंध, संयम की तरह
था विवेक, संतुलन की तरह
थीं स्मृतियाँ, समय की तरह
था स्वतंत्र वह
भूमि के भ्रमण की तरह
धारण किया था उसने
आकाश, मस्तक पर
पृथिवी अपने वक्ष पर
समुद्र, नदियाँ और जल स्रोत
अपने नयनों में
पक्षियों का कलरव-संगीत
अपनी वाणी में
समूची दुनिया का हिंसक विष
अपने कंठ में
उसके पास था
उसका आत्म निर्मित अमृत
बहता था निरंतर
देह पर उसकी
स्वेद की तरह।

होना मनुष्य का

मनुष्य का मनुष्य होना
होता नहीं वैसा जैसे
वृक्ष का वृक्ष होना
नदी का नदी होना
समुद्र का समुद्र होना
पर्वत का पर्वत होना,
मनुष्य का मनुष्य होना
क्या होता है?
फसलों से लहराता खेत होना-
खेत के लिए खोदे गए
कुए का जल होना
संघर्ष के शिखर पर बैठ
पृथ्वी पर स्वेद का झरना बहना
मनुष्य का मनुष्य होना
होता है एक संपूर्ण सृष्टि
जिसमें
वृक्ष, नदी, समुद्र, पर्वत
सब प्रकृति के साथ
हो जाते मनुष्य-मय!

अर्थ मनुष्य होने का

तुम मनुष्य होने का
शब्द जीते हो
या अर्थ!
तुम मनुष्य होने का
सत्य जीते हो
या असत्य?
तुम मनुष्य होने का
विचार जीते हो
या व्यवहार?
तुम मनुष्य होने के लिए
हथियार होते हो
या युद्ध
या रोगाणुओं के संक्रमण?
पृथिवी
क्या है तुम्हारे लिए?
शोध प्रतिशोध
साम्राज्यवादी भूख
या शस्त्र-बल के प्रयोग की
मरुभूमि? क्या है
मनुष्य होने का अर्थ तुम्हारे लिए?
मनुष्य बने रहना
या हो जाना अमनुष्य ?

सहयाद्रि परिसर, भदभदा, भोपाल (म.प्र.)
मो.94065-23071, 94076733348

सूर्य प्रकाश मिश्र के दो गीत

एक मुट्ठी ओस

कम पड़ेगा बादलों का गाँव सारा
एक मुट्ठी ओस लेकर क्या करेंगे

प्राण प्यासे हैं हमारे कोख से ही
जी रहे सदियों पुराना घाव लेकर
खो गया सूरज कहीं पर वादियों में
जिसे आना था नया बदलाव लेकर

हवा, पानी की वसीयत हो चुकी है
हम महज अफसोस लेकर क्या करेंगे

दाम क्या होगा पसीने की फसल का
नये युग में बहस लम्बी चल रही है
थक गये हैं देखकर सारी कवायद
झुक गये सीनों में धूनी जल रही है

याद है सारी नसीहत, हर सुभाषित
फिर नया उद्घोष लेकर क्या करेंगे

कलम करके हमें जो पौधे लगे हैं
वो नये परिवेश में ही ढल गये हैं
उन्हें भी इस बात से मतलब नहीं है
पेड़ के पत्ते पुराने गल गये हैं

हमें अपनों ने भी जी भरके ठगा है
गैर के गुण दोष लेकर क्या करेंगे

चल सुरसतिया

चल सुरसतिया गाँव छोड़ दें
बचा खुचा अपनापन लेकर
बिखरा हुआ तनाव छोड़ दें
बन्द हो गया गुड़ का बंटना
हामिद चाचा के कोल्हुवाड़े
जो सुख दुख पूछा करते थे
मुंशी काका स्वर्ग सिधारे

पुश्तैनी रिश्तों की थाती
बदला हुआ स्वभाव छोड़ दें

हुए पुरनिया बाबू साहब
उनकी नहीं चला करती है।
काम नहीं मिलता खेती में
भले छूट जाती परती है

दूभर हुआ पेट का भरना
बोझिल हुआ लगाव छोड़ दें

नहीं रह गया हक गरीब का
पंचायत की बंसवारी में
बन्द हुआ हथफेर गाँव में
ऊँच नीच दुख बीमारी में

हवा हो गई टुकड़े-टुकड़े
जहर भरा अलगाव छोड़ दें

तीज और त्योहार सभी के
रंग हो गये अपने-अपने
किस्मत फूटी पगडंडी की
लगी अभागी दूब पनपने

सारे अपने गैर हो गये
फैला हुआ दुराव छोड़ दें

बी 23/42/ए के बसन्त कटरा (गाँधी चौक) खोजवा,
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-221001 मो.9839888743

कहानी

दो ध्रुवों के बीच की आस

गरिमा संजय दुबे

''जो शहर या गांव नदी किनारे होते हैं ना वो नदियां किनारों पर ही नहीं होती बल्कि उन गांवों शहरों के हर घर में बहती रहती है, *''त्वदीय पाद पंकजम नमामि देवी नर्मदे''*,कहते वे अपनी विदेश से लौटी नातिन को आज पहली प्राथमिकता में नर्मदा दर्शन के लिए ले जा रहे थे। ''क्या नानू, ऐसे कैसे हर घर में नदी हो सकती है, नल हो,कुआँ हो नदी कैसे रह सकती है'' नव्या बोली। विदेशी धरती पर पली बढ़ी लड़की लेकिन गणित न लेकर भूगोल और इतिहास चुना और जब तब नदी पहाड़ गड्ढे, पत्थरों को छानने निकल पड़ती है। उसकी जिज्ञासा का कोई अंत नहीं,सब जानना है सब कुछ- इतिहास पुराण,और आजकल तो मानों विदेशों में वैदिक ग्रंथों पर शोध का जूनून सवार है। भौतिकतावाद, चमक दमक से घबराया एक पूरा समाज अब इस सनातनी परम्परा में सूत्र खोज रहा है, तो भारतीय होने का लाभ भी मिला और बचपन के संस्कृत के ज्ञान का भी तो भारत से जुड़े हर शोध में वह शामिल रहती ही है। उसी के चलते और कुछ अपनी ही जड़ों को जानने का भाव खींच लाया एक बार फिर वहीं जहां नाल गड़ी थी।

इस बार दस साल बाद अपने नाना के पास महेश्वर आयी थी,तो सोचा इसी नदी पर एक रिपोर्ट बना लूँ। यूँ तो बचपन मे हमेशा आती लेकिन तब नदी में नहाने और उसके पानी में घंटो बिताने का एक मात्र आकर्षण ही यहां खींच लाता। बच्चों में तो पानी को लेकर भीगने का आकर्षण ही प्रबल होता है। अब बड़ी हुई तो नदियां केवल पानी नहीं रही इस धरती के पर्यावरण का एक हिस्सा बन गई उसके लिए और एक वैज्ञानिक सोच से दुनिया की हर नदी पर ध्यान जाता। सो आज इसी नर्मदा का विश्लेषण ।

सुंदर से महल को पार करते हुए,माहेश्वरी साड़ी बुनते बुनकरों के घरों से आती खट पट,घर्र चर्र की आवाज सुनते वे नीचे उतरने लगे - झांक कर देखा तो एक एक धागा कुशलता से,हाथ और पैरों के संयोजन से आकर ले रहा था। नानाजी के मुख से नर्मदा स्तुति जारी थी, सूरज उगने को था - रात को ही जिद कर रही थी आने की, लेकिन नानाजी ने यह कहकर रोक दिया, ''नदी की निद्रा में बाधा नहीं डालनी चाहिए, ब्रह्ममुहूर्त में चलेंगे, बाल नद देखने,तुम्हे बड़े सुंदर फोटो भी मिल जाएंगे''। ''जय नर्मदा मैया पंडित जी, बिटिया को मैया दिखाने लाये हो'', छोटे मंदिर के पुजारी ने घंटी बजाते बजाते पूछा - वे राज राजेश्वर पहुंच गए थे - सुबह का वक्त मंदिर से उठने वाली अगरबत्ती की महक, दिए की लौ और घंट ध्वनी ने मानों नव्या के मन में ऊर्जा का संचार कर दिया हो ।

बरसों चर्च के कोरेल सुनने के अभ्यस्त कानों में वैदिक मंत्र के उच्चारण ने अजीब सा भाव भर दिया,

जैसे कोई सोई हुई चेतना के तार छेड़ रहा हो। क्यों ऐसा होता है कि कहीं होने पर अपने खो जाने का अहसास होता हो, और खोते हुए ही जैसे अपने को पा लेने का आभास। उस समय में बहते से लगता है किसी टाइम मशीन में बैठ कहीं पीछे बहुत पीछे दौड़ पड़ा हो मन। अकसर ऐसा होता जहाँ जाना हो तो वहां के इतिहास की जानकारी लेकर पहुंचती। कई जगह मन को रूखे सूखे स्पंदन घेर लेते,लेकिन फिर यह तो अपना देश है- अपनी मिट्टी जहां पांव रखते ही ऐसा लगता जैसे मिट्टी पैर पकड़ कर कहती हो ''याद हो या भूल गई'' - सरसराते हुए अहसास मिट्टी के स्पर्श से ही सीधे सिर तक पहुंच मन को नहीं चेतना को झकझोर देते। जाने कैसे लगा शायद यही रास्ता तो नहीं जिससे होकर कभी आदि शंकराचार्य ने नर्मदा के तट जो छुआ होगा द्य कौन जाने इसी राह से मंडन मिश्र भी अपनी प्रभात संध्या गाते यहाँ से गुजरे हों।'' पैरों में अजीब सा कंपन हो गया मानों वहीं पैर पड़ गया जहां कभी पवित्र चरण पड़े थे। प्रसाद लो बिटिया ''पंडित जी के बोलने से जैसे नींद से जागी हो नव्या, एक हाथ खुद ब खुद सिर पर चला गया और तिलक करवा दूसरा हाथ पसार उसने प्रसाद ले लिया।

मंदिर वहाँ भी हैं, लेकिन अनुशासन का इतना आग्रह की नियम कैद में पूजा एक यंत्रचालित प्रक्रिया बन जाती। ऐसा बंधन रहित जुड़ना शायद अपनी मिट्टी में ही हो पाता है। वहां से आगे बढ़ वे सीढ़ियां उतरने लगे। दुनिया इतनी जल्दी आज भी जाग जाती है,उसे तो रात भर काम करने और सूरज चढ़ने तक सोने की आदत है। नानाजी ने कई बार कहा भी ''उल्लू की प्रजाति की संतानें हो गयी हैं अब तो, सूरज का दर्शन नहीं करते तभी तो थके थके रहते हो''। वो हंस पड़ी, अब बस पहुंचने वाले ही थे कि पहली सीढ़ी पर पांव धरते ही नजर सामने बहती नदी पर पड़ी,जी धक्क से रह गया द्य पूरे शरीर में एक झुरझुरी सी दौड़ पड़ी,रोमांच से आंखों में आंसू आ गए। ऐसा तो उसे किसी नदी के पास पहुंच कर नहीं लगा। क्या यह केवल नदी है, या माँ है,जैसा कि नानाजी कहते हैं द्य जिसकी गोद में ऐसा अदभुत् अनुभव हुआ। ढेर सारी सीढ़ियों के नीचे बने सुंदर घाट और सामने बहती नर्मदा - सूरज की हल्की सी आमद दिखाई दे रही थी पानी पर लाल रंग उभरने लगा मानो किरणे जलतरंग बजा रही हो। नदी के प्रवाह में गुंजायमान था एक नाद, केवल कलकल नहीं,जो केवल और केवल केवल भारत की नदियों में गूंजता है,या हमारे भीतर का भाव कभी कभी बाहरी आपाधापी से शांत हो हमें अपने चैतन्य होने का आभास देता है,पहचानों पहचानों कौन हो तुम इस सृष्टि का एक धागा जो सबसे जुड़ा है । एमर्सन की चेतना से जुड़ कर मन बोल पड़ा, *''एन्ड आई बेहोल्ड वन्स मोर, माय ओल्ड फैमिलियर हॉन्ट्स, द सेम ब्लू वंडर देट माय इन्फेंट आईज''*

किसी सम्मोहन में बंधी वह चली जा रही थी, ''बालिका नर्मदा, सुबह यह बालिका होती है, दोपहर में पूर्ण यौवना, और सांझ को प्रौढ़ा'',नानाजी बताते जा रहे थे। सचमुच बच्चों सी अठखेलियां, किलकारी मारती लगी नदी। नींद से उठकर बच्चा जैसी अंगड़ाई लेता है वैसे ही हर लहर में एक अंगड़ाई, एक स्मित समेटे वह बह रही थी द्य बच्चे के लालिमा युक्त देहयष्टि सी नद, और नव्या बही चली जा रही थी उसके इस नैसर्गिक बहाव में।

घाट पर दुकान लगाने वाले पहुंचने लगे थे, तभी बच्चों का झुंड दौड़ता हुआ नदी में छलांग लगा चुका था। ''हुर्रर्रर्र छपाक'' की आवाज के साथ नव्या की तंद्रा टूटी, तो झट से अपने कैमरे की आंख उन बच्चों पर टिका दी पानी में छलांग मारते, हँसते खिलखिलाते लंगोट बाँधे बच्चे। उसे टेम्स का किनारा याद आया, आस पास बेहद साफ सुथरा, लंबी लंबी रेलिंग से बंधे किनारे, साफ बहती नदी देख कर अच्छा तो लगता है लेकिन नदी को छू कहा पाता है कोई,देख भर ही तो पाता है। जैसे नदी को म्यूजियम में कैद कर दिया हो - जैसे अति अभिजात्यता के नियमों से बंधी कोई युवती जिसकी हर हरकत ,अदा बड़ी मेहनत से घंटो पार्लर में मशक्कत कर तराशी गई हो और वो बेचारी अपने आडम्बर से त्रस्त अपनी नैसर्गीक मुस्कान ही खो बैठी हो। स्पेंसर बोल उठे थे न "Sweet Thames, run softly, till I end my song. " ऐसे ही सधे कदमों से चलती है टेम्स।

और यहां यह अल्हड़ किशोरी सी नर्मदा,उन्मुक्त,हो अपने पूरे नैसर्गीक वैभव और सौन्दर्य से खिलखिलाती है और उसके साथ ही खिलखिलाता है उसके आस पास का वातावरण। वहां है न हर घर में स्विमिंग पूल नहाने के लिए नदी के पानी को बस देखिए,देखते ही हैं उसकी आत्मा को छू भी नहीं पाते। अभिजात्य नदी और उससे अधिक अभिजात्य लोग। बड़ी सतर्कता से एक एक हरकत करते रोबोट हो जैसे। वह मचल पड़ी और अपना बैग किनारे पर दौड़ लगा कर लगा दी छलांग। ''अर्रर्रर क्या कर रही है बिटिया तैरना आता भी है'', भय में भूल गए कि हाल ही में स्विमिंग चैंपियनशिप जीत कर आई है उनकी नातिन, और वो नदी में से ही उनके भय ग्रस्त चेहरे को देख खिलखिला दी - न जाने क्यों आंसू निकल पड़े खुशी के थे या विषाद के, या दोनों के। बरसो से नदी छुई नहीं थी, बस देखी भर थी, बताईये किस स्विमिंग पूल में आपको नदी में नहाने का सुख मिला - नहीं कभी नहीं नकली नकली ही रहेगा। महंगे स्विमिंग सूट, वॉरपटूफ सनस्क्रीन, सन ग्लासेस कैप पहन क्लोरीन से गंधाते पानी मे क्या यह स्फूर्ति मिली जो इस जल में है। तैरते तैरते सोचने लगी ''जिन्हें नदी की आत्मा को छूने का हक मिला था उन्होंने उसे कैसा गंदला दिया, और जो छू सकते थे उन्होंने उस आत्मा को स्वच्छता के नाम कैद कर दिया। नदियों को छूना उसकी आत्मा को महसूस करना हर इंसान का हक है, उसे इससे वंचित नहीं किया जा सकता, यही होगा न प्रकृति से जुड़ने का तरीका,तभी स्नान, अर्ध्य बने थे लेकिन बढ़ते लालच का शिकार नदियों के साथ इंसान की मासूम चाहते भी हुई''। नानाजी घाट पर तेजी से उसके साथ चल रहे थे ''अरे संभाल कर,उधर गहरा है'', उन बच्चों के साथ वह भी बच्ची बन पानी से खेलने लगी,नानाजी वहीं घाट पर बैठ उसके अंदर की नदी को अंगड़ाई लेते देखते रहे। तभी बच्चे ने कहा ''अरे दीदी उधर खो है वहां मत जाओ पैर फंस जाते हैं,नर्मदा मैया फिर अपने पास ही रख लेती है''।

चेहरे पर वात्सल्य भरी मुस्कान फैल गई और उसने अपने तैरने की दिशा बदल दी, मन तो किया कि घुस कर देख आये जरा इस जल के नीचे और चुपके से पूछ ले कैसे पाती हो यह ऊर्जा। नानाजी ने बचपन में एक कविता सुनाई थी गुरूदेव की, दो लाइन याद रह गई।

''पेटे में झकाझक बालू कीचड़ का न नाम,
काँस फूले एक पार उजले जैसे धाम''।

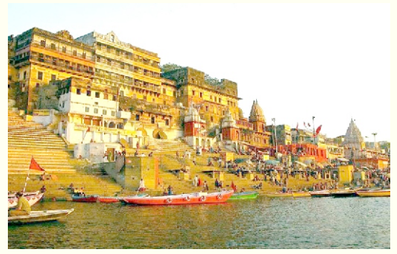

उस घाम की शुरूवात हो चुकी थी, अनायास अंजुरी भर उगते सूरज को अर्ध्य दे देखा, नानाजी ने भी स्नान कर अर्ध्य दिया और घाट पर बैठे हैं, वह घाट की और पलट गई, ''कपड़े लाई नहीं अभी भीगी बैठी रहो ,हमें तो अभ्यास है'', नानाजी ने उलाहना दिया। ''कोई बात नहीं नानाजी सूख जाएंगे'', घाट पर चल रही हवा ने उसके बदन में झुरझुरी सी पैदा कर दी। शरीर तो सूख ही जाना था लेकिन मन, मन न जाने कब से सूखा था जो आज रह रह कर भीग जाना चाह रहा था। वह बैठी रही और बोली ''नानाजी घाट के उस पार चलते हैं आज का पूरा दिन नदी के साथ, चलिए''। चलो घाट से ही चना चबेना लिया और नाव में बैठ चल पड़े । घाट का कोलाहल धीरे धीरे दूर होता जा रहा था और अब नदी की कल कल और चप्पू की ध्वनि सुनाई दे रही थी। वो और नदी बाकी सब जैसे ब्लर हो गया। इस सौन्दर्य को देखने के लिए किसी बाहरी कैमरे की जरूरत नहीं बस अनुभव किया जा सकता है।

कहीं कहीं गंदगी देख मन व्यथित हुआ - कितना आनंद है इस उन्मुक्तता में किन्तु नदी की स्वच्छता का ध्यान क्यों नहीं - टेम्स के किनारे ध्यान दिया तो अति कर बांध दिया - यहां छोड़ दिया तो लोगों ने नदी की आत्मा को मार दिया - नदी कब स्वतंत्र और स्वच्छ होगी ? नदी को छूना हमारा अधिकार है तो नदी की आत्मा को मुक्त और निर्मल रखना क्या हमारा कर्तव्य नहीं ? अचानक एक तेज लहर ने नाव से टकरा कर अपनी बूंदों से उसे एक बार फिर तरबतर कर दिया मानों कह रही हो ''हाँ हाँ तूने मेरे मन की बात समझ ली,यही यही तो चाहती हूं मैं'', निर्मल उन्मुक्त हो बहना'' - चेहरे पर फैल गए पानी को उसने नहीं पौछा और देखती रही नदी को। किनारा आ गया था,हरे भरे पेड़ों और खेत खलिहान वाला,शांत किनारा यहाँ से घाट पूरे नजर आते। जैसी जिज्ञासु प्रवृत्ति रही है उसकी जब जहां जाती पूरी तैयारी के साथ जाती,तो आने के पहले नर्मदा से जुड़ा हर साहित्य चाट डाला था। उन्हीं में से एक को पढ़कर नानाजी से पूछा था ''ये कौन हैं'',तो उन्होंने कहा था बिटिया पूर्वजन्म के कोई ऋषी ही होते हैं जिन्हें प्रकृति अपने रहस्य उजागर कर देती है। ऐसे ही संत हैं वेगड़ दादा, उनसे मिलने का मन बना कर आई थी कि पता चला वे परम चेतना में विलीन हो गए। नानाजी ने कहा, ''तुमने अपने पत्र में वेगड़ दादा से मिलने की बात कही थी, अब वे तो समा गए इसी माई की गोद में, लेकिन तुम उनसे मिलने जाती न तो वे कहते, ''मुझसे क्या मिलना,खुद नर्मदा से मिलो'',और देखो तुम नदी से मिलने ही आ सकी''। घाट पर पहुंच कर जब देखा नव्या ने तो उनकी पुस्तक याद हो आई ''नर्मदा सौंदर्य की नदी है''। लगा सच ही तो कहा था, जब एक टुकड़ा भर हिस्सा देख उसे सौंदर्य के सारे प्रतिमान याद आ रहें हैं,शब्द नहीं सूझ रहे इसका वर्णन करने को तो पूर्ण सौंदर्य को अपने चेतना के स्तर पर जी लेने वाले को क्यों कर प्रेम न हो जाये इस साक्षात सौंदर्य विग्रह से''। *''नानू आई वांट टू लीव हीयर फॉर रेस्ट ऑफ माय लाइफ, हाऊ मेसमेराइजिंग ब्यूटी इट हेस, ग्रेट, ''वह बुदबुदाई। नानाजी बोले -''यस, दोस आर नेटीवस ऑफ अ रिवर साइड नेवर वांट टू लीव इट, बिकॉज अ रिवर ऑलवेज फ्लोज इनसाइड'' उसने नानाजी की तरफ देखा '' सर्प्राइज ना'', वे ठहाका मारकर हँस पड़े, ''इफ यु कैन लर्न संस्कृत, वाह्य आई कांट लर्न इंग्लिश''*, वह खिलखिला उठी।

नदी के किनारों के खेतों में किसानो का काम शुरू हो चुका था। बैल,गाय,मजदूर स्त्रीयाँ, और उनके सम्मिलित खिलखिलाते स्वर। हरी भरी फसलों में नर्मदा के पानी की मिठास और सौंदर्य दोनो दमक रहे थे। एक किसान ने पूछा ''राम राम दादा आज अल्यान्ग कसा,''नानाजी ने जवाब दिया,''पोरई आएल छै,ओकें नर्मदा दिखावणे लायोज,''।

वही किसान थोड़ी देर में अपनी झोपड़ी के बाहर भुट्टे सेंक कर दो गिलास में गरम चाय ला उन्हें दे गया ।

दादा ''आज यांज खाणों खाजो, दाल बाफला बणाई रइज म्हारी बैरो'' , बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये अपने निमंत्रण को अपना अधिकार मान वह पलट गया। ''नानाजी ये जो नदी है उसको अपने भारत में कितना गंदा कर देते हैं, नदियों में नहाना गंदगी फेंकना बंद कर देना चहिये, दूर से देखो लंदन में तो नदी को ऐसे छू भी नहीं सकते'', सूरज की बढ़ती रोशनी में सोने की नदी को चांदी की धारा में तब्दील होते देख नव्या बोली ।

नदी में नहाकर जिस ऊर्जा से वह भर उठी थी और टेम्स का डिजाइनर फ्रेम उसे दुःखी कर गया था द्य उसके लिए उत्तर नहीं सूझने पर कि क्या सहीं है द्य फ्रेम में जकड़ी साफ सुथरी टेम्स या अल्हड़,मुक्त किन्तु गन्दलाती नर्मदा तो सोचा विद्वान नानू से ही उत्तर पालूं।

नानू कुछ देर चुप रहे और बोले, ''माँ की गोद देखने की चीज नहीं होती बिटिया, उसके आँचल की गर्मी और ममता तो उसमें समा जाने पर ही मिलती है'' । ''लेकिन इसमें उसके गंदा होने का भय भी तो होता है''- वह फिर बोली ।''बच्चे की सु सु पोटी से मां की गोद गंदी हुई है कभी भला, उसमें इतना सामर्थ्य तो होता है कि वह उससे पार पा निर्मल बनी रह सके। माँ कोई मॉडल नहीं होती सजी धजी कांच के उस पार, नपे तुले अंग प्रत्यंग में ढली, गहने जेवरों से लदी, मेकअप की परतों में जिसे केवल देखा जा सके, न छुआ जा सके न उसमें कोई ममत्व हो न प्रेम, माँ तो थोड़ी उबड़ खाबड़, कहीं पतली, कहीं थुलथुली, अपनी नैसर्गीक ममता और सौंदर्य लुटाती अपने बच्चों की चिंता में अपने सौंदर्य को बिसारती ही सुहाती है।''

नव्या एकटक नानाजी की तरफ देखती रही।

वे आगे बोले -''और नर्मदा ममतामयी माँ जो अपने बच्चों के पालन पोषण में अपना पूरा सौंदर्य बिसारती रही है लेकिन उसका अपने को यूं बिसारना ही उसका सबसे बड़ा सौंदर्य और यश बन गया''।

''लेकिन नानाजी ..''.....वह बोलने वाली ही थी कि नानाजी ने हाथ के इशारे से उसे चुप करते हुए कहा- ''उदार माँ की संतानें सदा उतनी ही उदार हो जरूरी नहीं,नालायक संतानों ने इसके सदिर्य को धूमिल कर दिया , माँ का आँचल मैला कर दिया, कभी कभी सुनना बिटिया यदि सुन सको तो उल्लास,उत्सव ही नहीं लहरों में सिसकियां भी सुनाई देती है''। कहते कहते वे उदास हो गए। दोनो चुप हो गए, मौन में लहरे बोल रही थी, क्या बोल रही थी कौन जाने ? तभी किसान अपनी झोपड़ी से उन्हें बुलाने चला आया, भूख तो लगी ही थी मना करने का प्रश्न नहीं - वे दोनों उठकर चल दिये, खेत से तोड़ी ताजी हरी मिर्ची जिसे नमक के साथ तल दिया गया था, ताजे लसन की लालमिर्च की चटनी, टमाटर प्याज ककड़ी का सलाद, और दाल बाफले ऐसी कुशलता से थोड़ी ही देर में सारी व्यवस्था जैसे उस किसान पत्नी ने जुटाई देख हैरान रह गईद्य रात को पहरा देने की झोपड़ी में थोड़े से सामान में ऐसा स्वादिष्ट भोजन की उंगलियां चाटती रह गई नव्या - नाप तौल कर खाने वाली फिगर कॉन्शियस नव्या तेज मिर्ची के खाने से लाल हुई नाक सुड़काती जा रही थी और खाना खाती जा रही थी - पेट भर गया पर मन और और मांग रहा था द्य ज्यादा खा लेने पर नींद की खुमारी होने लगी। वहीं किनारे पर दरी डाल सो गई - नानाजी भी दूसरे किसानों से बतिया रहे थे। एक घंटे बाद उठी तो दोपहर हो चली थी - नानाजी एक बार फिर भीग लेती हूँ नदी में'', नानाजी ने टोका नहीं, ''अभी नदी पूर्ण यौवना है, दोपहर है,इस समय उसके रति विलास को भंग न करो, यह उसका निज समय है,उसका एकांत, वैसे भी यौवन कोई बंधन नहीं मानता और खलल डालने पर उग्र हो जाता है, उफनता यौवन अनर्थ कर देता है बिटिया इसलिए अभी नहीं ।नदी की निजता का सम्मान करो''। किसान बोला ''इना धड़धड़ा टेम पे जावण वालो वापस नई आवतो'', कहानी चाहे जो हो,अंधविश्वास ही सहीं लेकिन नदी की निजता का ऐसा सम्मान करने वाली संस्कृति कैसे नदियों की शत्रु बन गई ?प्रश्न मन में कुलबुलाने लगा ।

उसने नदी को गौर से देखा सच तो कह रहे थे नानू लहरों में सुबह वाली अल्हड़ता नहीं, इन लहरों की अंगड़ाईयों में यौवन की मदमाती चाल और ऊर्जा का अतिरेक दिखाई दे रहा था जो सौंदर्य का चरम था। उसने सहम कर पैर पीछे कर लिए। धीरे धीरे सांझ उतरने लगी थी - नदी चांदी से फिर सोना होने लगी कई कई कोनों से तपता सोना। कहीं कहीं चांदी की सफेदी जैसे प्रौढ़ हो चले व्यक्ति के बाल कान के पास से चमकने लगते हैं कुछ कुछ वैसे ही - शाम का धुंधलका, सूरज के आराम का समय और नदी के भी - नदी की लहरों में एक प्रौढ़ा की गरिमा थी - *''सो ग्रेसफुल रिवर''*,वह बुदबुदाई-संध्या आरती का समय होने से पहले ही वे इस किनारे आ लगे ''धड़धड़े समय पर नदी के अंदर नहीं होते बिटिया '',नानाजी ने कहा। तो पूछ बैठी ''धड़धड़ा मतलब'', जवाब आया'' दिन में संक्रांति के समय में, केवल एक समय शुभ माना जाता है,जब रात विदा ले रही होती है और भोर का आगमन,तब नदी का स्पर्श लिया जा सकता है। दोपहर को त्याज्य और सांझ,दिया बत्ती का समय,गोधूलि बेला में पूजन का विधान है,चलो नर्मदा आरती का समय है''।

अदभुद दृश्य बड़े बड़े दियों में असंख्य रौशनी की ज्वालायें निकल पड़ी - गीले कपड़े को हाथ पर लपेटे,धोती जनेऊ धारी पंडितों ने वैदिक मंत्रोउच्चर के साथ आरती प्रारम्भ की - घंट घड़ियाल शंख और मनुज के समवेत स्वर ने रोमांच भर दिया। नदी की लहरों में आरती के दियों की ज्वाला का प्रतिबिम्ब नजर आ रहा था - ढलता सूरज, उगता चांद और असंख्य तारों के प्रतिबिम्ब ने मानो नदी को भी सितारों भरी चुनर ओढ़ा दी थी। फ्रेम वाली नदियों के किनारे अट्टालिकाओं की रौशनी जगमगाती है या जगमगाते हैं आतिशबाजियों के प्रतिबिम्ब। वह सोचने लगी ''नदियों को ऐसे ही बहते रहना चाहिए, निर्द्वन्द,नैसर्गीक और जिनमे जीवंत प्रतिबिम्ब हो, प्रकृति के नकली बंधन और नकली रोशनियाँ नहीं। नदियों को उन्मुक्त बहने दो उन्हें फ्रेम में नही जकड़ना है,न उन्हें म्यूजियम की चीज बनाना है । उसमें तो घटने दो जीवन, बचपन, यौवन और बुढ़ापा - सच कहते हैं नानाजी हर घर मे एक नदी होती है - हर घर में क्यों हम सबमें एक नदी बहती है,उसे बहते रहना होगा, बहती रहना माँ अपने इसी रूप के साथ'', रात गहराने लगी थी । चांद की शीतलता और दमक नदी की शीतलता से मिलकर द्विगुणित हो गई थी - किनारे धीरे धीरे सिमट रहे थे, बत्तियां सो गई थीं। अब नर्मदा है और यह विराट प्रकृति का रंगमंच है, जहां न जाने कैसे कैसे कौतुक होते होंगें कौन जाने ? नदी की निद्रा का समय कोई ठहरता नहीं किनारे पर - हवाओं में गूंज रहा था नाद और नीरवता में दूर दूर तक महक थी नदी की। पलट पलट कर देखती रही नव्या जैसे नदी से पूछ रही हो कि ''बहती रहोगी न हमेशा'',और वह जैसे बोल रही हो कि ''फ्रेम में जकड़ना नहीं है, न ही मैला होना है, इनके बीच का कोई रास्ता निकाल सको तो पाते रहोगे बहती नदी बाहर भी और भीतर भी। दो ध्रूवों के बीच की यह आस लिए नव्या चल पड़ी और उसी आस के साथ नदी ने अपनी राह ली। स

18 बी, वंदना नगर एक्सटेंशन
इन्दौर (म.प्र.) मो.9009046734

समावर्तन की वार्षिक सदस्यता हेतु

- समावर्तन की वार्षिक सदस्यता ग्रहण करने हेतु रूपये 1500/- नियत है जो मनिआर्डर से अथवा चेक से भेजे जा सकते हैं। चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखना होगा। चेक और मनिआर्डर डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य, 'अक्षय-माधवी' 129, दशहरा मैदान, उज्जैन 456010 के पते पर भेजना होगा।
- समावर्तन की वार्षिक सदस्यता का शुल्क डिजिटल माध्यम से भी भुगतान किया जा सकता है। जिसके लिए बैंक डिटेल्स निम्नानुसार है। **बैंक का नाम -** आयडीबीआय, **ब्रांच का नाम -** फ्रीगंज ब्रांच, उज्जैन, **खाता क्रमांक -** 0088102000031620, **खातेदार का नाम -** समावर्तन
  आयएफएससी नं.- आयबीकेएल 0000088, एमआयसीआर-456259002
- डिजिटल एवं चेक/मनिआर्डर से भुगतान करने पर तदनुसार पत्र द्वारा सूचित करने का कष्ट करें।

संपादक, समावर्तन, उज्जैन - संपर्क - 94259-15010

मृणाल आशुतोष की लघुकथाएँ

समस्तीपुर (बिहार) के मृणाल आशुतोष की लघुकथाएँ उस उक्ति को चरितार्थ करती हैं जहाँ ये कहा जाता है कि ''आधुनिकता परम्पराओं की ज़मीन पर बोनसाई सी पनपती है।'' हम आधुनिकता का चोला जरूर पहने हुए हैं। लेकिन मन और आत्मा पारिवारिक मूल्यों में बंधे हुए हैं। 'बछड़ू' नामक लघुकथा कुछ ऐसी भावनाओं से लिप्त है। विमल और अनिता के बीच बातचीत का विषय शुरू होता है। गनेशिया द्वारा अपने बछड़े को बेचना और जबसे गाय को उसका बछड़ा नहीं दिया है वह एक पल को भी चैन से खूंटे की जगह नहीं खड़ी है। विमल गनेशिया की गरीबी का हवाला देकर अनिता को समझाने का प्रयास करते हैं। जिस पर अनिता कहती है हमारे बेटे सौरभ को भी जर्मनी गये पाँच साल हो गए हैं। शादी से पहले प्रत्येक दिन फोन करता था। और अब तो छह: महीने हो गए। विमल ने अनिता की बात को काटते हुए कहा उसका इस बात से क्या मतलब ? अनीता का इतना ही कहना था कि हमने भी तो बीस लाख और एक गाड़ी में अपने बछड़ू को बेंच दिया। बात पारम्परिक मूल्यों से शुरू हुई है तो ''पुत्रहीन'' लघुकथा उस मिथक का एक उत्तम उदाहरण है। जब महाभारत में द्यूत-क्रीड़ा में पराजित होकर पाण्डव वनवास को चले जाते हैं और कुन्ती अपने पुत्रों को याद कर १३ वर्ष पूर्ण होने का इन्तजार कर रही थी। एक दिन गान्धारी ने कुन्ती से मिलने की इच्छा जताई और कुन्तमी को अपने पास बुलवा लिया। कुन्ती की बातों में उदासी को समझते हुए वह पूछती है कि तुम्हारी आवाज़ में उदासी का क्या कारण है। तब कुन्ती कहती है कि पुत्र-वियोग का दर्द आप नहीं समझेंगी क्योंकि आपके सौ पुत्र आपके पास है किन्तु मेरा एक भी पुत्र मेरे निकट नहीं है। इस बात पर गान्धारी प्रति उत्तर देते हुए कहती है। सौ नहीं केवल एक पुत्र विकर्ण। क्योंकि जिस पुत्र में जब तक पौरुष न हो उसका होना न होना एक समान ही है। कुन्ती गान्धारी की पीड़ा को समझते हुए इतना ही कहती है। यदि आप एक ही पुत्र की माँ हो तो मैं...मैं तो पुत्रहीन ही हुई न क्योंकि मेरे तो पाँचो पुत्र पौरुषत्व से विहीन है। अन्याय का प्रतिकार करते समय वे मौन थे।

'विद्या' नामक लघुकथा शिक्षा व्यवस्था पर ज़ोरदार व्यंग्य है। कक्षा में शिक्षक महोदय संस्कृत का एक श्लोक पढ़ा रहे हैं। विद्या ददाति विनयं....और तत्पश्चात उसका अर्थ छात्रों से पूछते है। छात्रों को अर्थ ना आने पर वे नालायक, गधे आदि उपमाओं से बुलाते हुए छड़ी चमकाते हैं। इस श्लोक के साथ 'विनय' शब्द की व्याख्या को तलाशते बच्चे पुन: श्लोक याद करने लग जाते हैं। शिक्षा के व्यवसायीकरण और विकृति का ऐसा जीवन्त उदाहरण देखना अब हमारे लिए सामान्य बात हो गई है। शिक्षा का दान महज औपचारिकता बनकर रह गया है।

'मुखाग्नि' नामक लघुकथा में स्त्री के अधिकार /सम्मान को बनाए रखने पर पुरज़ोर बल दिया गया है। बड़े भाई का फोन आते ही दोनों भाई अपने घरों से दूर अपने पिता के अन्तिम दर्शन करने को श्मशान पहुँचते हैं। वहाँ अपनी बहन को देखकर आश्चर्य में पड़ जाते हैं। जब मुखाग्नि देने का वक्त आता है। तब छोटा भाई अनुपम भय्या को रोकते हुए कहता है। हम दोनों भाई तो पैसा भेजकर अपना कर्तव्य पूरा करते रहें। किन्तु असली बेटा तो बहन है जो अपना परिवार छोड़कर दिनरात पापा की सेवा करती रही। इसलिए मुखाग्नि बहन को ही देने दीजिए। एक लम्बे विरोध के बाद मुखाग्नि बेटी ने ही दी।

'संतान' लघुकथा में एक किसान जो एक पिता भी है प्रकृति से जुआ खेलना उसकी प्राथमिकता बनी हुई है और यही प्राथमिकता वह एक पिता के रूप में भी निभा रहा है। रामप्रसाद और उसकी पत्नी सुखिया हर दिन ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि पानी बरसे और ज़ोर से बरसे। ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुन भी ली। पर ईश्वर की कृपा भी ऐसे समय बरसी जब रामप्रसाद का बच्चा तीन दिनों से बुखार में तप रहा है। सुखिया बच्चे को डॉक्टर को दिखा कर लौट रही थी कि टेम्पो वाला उसे एक घर से पहले ही उतार देता है। रामप्रसाद सुखिया को आता देख उसके हाथ से बच्चा लेकर अपना कुर्ता उतार कर बच्चे को लपेट कर घर की और दौड़ लगा देता है क्योंकि बारिश तेज़ हो गई है। अपनी विवशता पर रोते हुए वह फिर भगवान से गुहार लगाता है। हे भगवान पानी रोक दे, तभी उसकी नज़र अपने खेतों पर पड़ी सूखी दरारों वाली धरती पर पड़ी और इस बार वह बादलों की ओर देखकर चीखा बरसो और बरसों!

मृणाल आशुतोष की लघुकथाएँ यों तो यथार्थ के धरातल पर उपजी लघुकथाएँ है किन्तु इनमें व्यंग्य एक अंतर्धारा की तरह मौजूद है जो इस लघुकथाओं को पठनीय तो बनाता ही है पाठक की याददाश्त में जमा भी करता जाता है। स

- वाणी दवे शर्मा
मो.99260-05000

बछड़ू

'क्या हुआ? कल से देख रहा हूँ। बार-बार छत पर जाती हो।' विमल अनिता से पूछ बैठे।

'नहीं, ऐसा कुछ कहाँ है ?'

'कोई हमसे ज्यादा स्मार्ट आदमी आ गया है क्या, उधर?'

'बिना सोचे समझे उजूल फ़िजूल मत बोला करो। नहीं तो अच्छा नहीं होगा। कहे देती हूँ।'

'अरे हम तो मज़ाक कर रहे थे। रानी साहिबा तो बुरा मान गयीं। क्या हुआ, बताओ ना!'

'नहीं छोड़ो, जाने दो। तुम नहीं समझोगे।'

'अच्छा! ऐसी कौन सी चीज़ है जो तुम समझती हो और हम नहीं समझ सकते।'

'बात मत बढ़ाओ। छोड़ दो कुछ देर के लिए अकेला हमको।'

'अब तुमको मेरी सौगंध है, बताना ही पड़ेगा।'

'तुमने सौगंध क्यों दे दिया?'

'बताओ न। मेरी जी घबरा रहा है अब।'

'गनेशिया ने अपना बछड़ू बेच दिया।'

'लो, इसमें परेशान होने की क्या बात है? बछड़ू को कब तक पाले बेचारा? बैल बनाकर रखना तो था नहीं।'

'नहीं दिखा न तुम्हें! गाय का दर्द नहीं दिखा न! जब से बछड़ू खुट्टा पर से गया है, गाय दो मिनट के लिये भी नहीं बैठी है। उसकी आँखों में देखोगे तो हिम्मत जवाब दे देगी।'

'वह तो होता ही है। क्या किया जा सकता है?'

'अपने सौरभ को भी जर्मनी गये हुए पाँच साल हो गए। शादी से पहले प्रत्येक दिन फोन करता था। शादी के बाद हफ्ता, महीना होते होते आज छह महीना हो गया, उसका फोन आये हुए।'

'उसका, इस बात से क्या मतलब है?'

'हमने भी तो बीस लाख और एक गाड़ी में अपने बछड़ू को...'

पुत्रहीन

द्यूत - क्रीड़ा में पराजित होकर पाण्डव वनवास चले गये थे। कुन्ती पुत्र-वियोग में तड़पती हुई तेरह वर्ष पूरा होने की प्रतीक्षा कर रही थी। एक-एक दिन पहाड़ साबित हो रहा था। आँखें सावन की तरह बरसती रहती थीं।

एक दिन दासी की आवाज़ ने उन्हें चौंका दिया, 'महारानी की जय हो! महारानी गान्धारी ने आपको याद किया है। द्वार पर सारथी आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।'

बिना एक भी पल गँवाये कुन्ती रथ पर सवार हो गान्धारी के पास पहुँची।

'प्रणाम दीदी'

आयुष्मती भवः आओ बहन, आओ! क्या हुआ! आवाज़ में कुछ

उदासी सी है!'

'पुत्र-वियोग का दर्द दीदी...आप नहीं समझ पाएँगी। आपके तो सभी सौ के सौ पुत्र साथ हैं!'

'सौ पुत्र!' उनकी पीड़ा बोल पड़ी, 'सौ नहीं। कुन्ती, केवल एक पुत्र! विकर्ण!'

'केवल एक पुत्र! दीदी, आप ऐसा क्यों कह रही हैं?'

'पुत्र में जब तक पौरुष न हो तो उसका होना न होना एक समान ही है न! और पौरुष तो उसमें है न जो अन्याय का प्रतिकार कर सके।'

'क्या हुआ? कुन्ती, तुम चप क्यों हो गयी?'

'यदि आप केवल एक पुत्र की माँ हैं तो मैं...मैं तो पुत्रहीन ही हुई न! क्योंकि मेरे तो पाँचों ही पुत्र...'

अब कुन्ती की आँखों से बहते नीर ने गान्धारी की आँखों को भी भिगो दिया था।

विद्या

कक्षा में शिक्षक नहीं थे। बच्चे उनके न होने का फायदा उठाते हुए शोर मचा रहे थे। अचानक शिक्षक के आने की आवाज सुन सब चुपचाप अपनी-अपनी जगह पर बैठ गये।

शिक्षक ने कक्षा शुरू की, 'बच्चो! कल जो पाठ पढ़ा था। वह सबको समझ आया था न!'

'जी सर।' सब बच्चों ने जोर से आवाज लगायी।

'ठीक है, रवि! तुम वह श्लोक सुनाओ।'

'विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।'

'समीर, अब तुम इसका अर्थ बताओ।'

'विद्या विनय...'

'ठीक!'

'विद्या विनय देती है और...और!'

'अरे नालायक! कल ही तो बताया था।'

'सर, विद्या विनय देती है और...और उससे धन...!'

'ला रे रवि, छड़ी ला। इस गधे को एक श्लोक का अर्थ तक याद नहीं हुआ। उल्लू का पट्ठा, पक्का फेल होगा इस बार।'

बच्चे अपनी कॉपियों में सर द्वारा लिखवाया गया श्लोक का अर्थ पढ़रहे थे, 'विद्या विनय देती है...।'

मुखाग्नि

सवेरे सवेरे फोन की आवाज़ ट्रिंग-ट्रिंग सुन अनुपम के मुँह से गाली निकलने ही वाली थी कि देखा भईया का फोन है। भईया भी न समय भी नहीं देखते हैं और फोन कर देते हैं, बड़बड़ाते हुये फोन साइलेंट कर दिया। दोबारा फोन आते देख उसने उठा लिया, 'हेलो भईया।'

'क्या हुआ भईया। हेलो। कुछ बोल क्यों नहीं रहे हैं?'

'कुछ नहीं! तुम फ्लाइट पकड़ कर जल्दी से घर पहुँचो'

'पर हुआ क्या? क्या हुआ पापा को?

'अंतिम दर्शन के लिये बुला रहे हैं। हम भी ट्रेन पकड़ने जा रहे हैं।'

'नहीं। पापा हमको छोड़कर नहीं जा सकते। कब हुआ ई सब?'

'एक घण्टा पहले। छोटका चाचा कहे हैं कि वह सब व्यवस्था बात करके रखेंगे।'

दोनों भाई थोड़ी देर के आगे पीछे पहुँचे तो चौक पर ही एगो भाय प्रतीक्षा कर रहा था। बैग वहीं पटक रोते कलपते और एक दूसरे को दिलासा देते श्मशान की ओर भागे।

शमशान में बड़ी बहिन को देखकर दोनों भाई आश्चर्य में पड़ गए। छोटका चाचा कहने लगे, 'बहुत मना किए पर मानी ही नहीं। ज़िद पर बैठ गयी कि अंतिम समय तक साथ रहेंगे।'

पीछे से लाला कक्का जोर से बोले, 'सूर्यास्त होने ही वाला है। जल्दी से मुखाग्नि वाला काम शुरू करो।'

एक आदमी ने मुखाग्नि भईया के हाथ में दे दिया और बड़े बुजुर्ग मंत्र पढ़ने लगे।

भईया मुखाग्नि लगाने ही वाले थे कि अनुपम ने कहा, 'रुक जाइये भईया' 'क्यों? सब अचरज से अनुपम की ओर देखने लगे।'

हम दोनों भाई तो केवल पैसा भेजकर अपना कर्तव्य पूरा करते रहे। असली बेटा तो बहिन है जो अपना घर परिवार छोड़कर दिन रात पापा की सेवा करती रही। इसी को मुखाग्नि देने दीजिये।'

लाल कक्का जिनको बेटा न था, 'सही कह रहा है ई अनुपम। इसी को मुखाग्नि देने दो।'

कुछ विरोध की आवाज़ भी उठीं पर वह असली बेटे के कर्तव्य तले दबकर रह गयीं।

संतान

बादल गरजने के साथ ही दिल की धड़कन तेज हो गयी। रामप्रसाद ने पत्नी की ओर देखा और पत्नी ने आशा भरी नज़रों के साथ आकाश की ओर। कोई और दिन होता तो भगवान से मनाती कि जमकर बरसो और खूब बरसो पर अभी...

ब्रह्म बाबा से लेकर छठी मैया तक, सबसे बारिश रोकने का गुहार लगा रही थी। तीन दिन से बुखार में तप रहा था एकलौता बेटा! डॉक्टर को उसे दिखाकर अस्पताल से लौट रही थी रमसखिया। घर से एक कोस पहले ही उतार देता है टेम्पो। रास्ता है ही इतना अच्छा कि टेम्पो क्या रिक्शा वाला भी उधर नहीं जाना चाहता। पचास रूपये दे दो, तब भी नहीं।

मृणाल आशुतोष

जन्म : एरौत (महाकवि श्री आरसी प्रसाद सिंह की पुण्य भूमि) समस्तीपुर (बिहार)।

शिक्षा : एम.बी.ए. (मार्केटिंग) एमडी यूनिवर्सिटी रोहतक, एम.ए. (इतिहास) इग्नू यूनिवर्सिटी।

प्रसारण-प्रकाशन : दरभंगा रेडियो स्टेशन, बोल हरियाणा और बोलता साहित्य से लघुकथा और कविता का प्रसारण।

प्रतिष्ठित लघुकथाकार श्री योगराज प्रभाकर के सम्पादन में लघुकथा कलश महाविशेषांक के तीनों अंक, विश्व हिन्दी सम्मेलन 2018, मॉरिशस में विमोचित आधुनिक साहित्य महाविशेषांक, किस्सा कोताह, प्रभात खबर, हिन्दुस्तान सहित अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं व समाचार पत्रों में लघुकथा, कविता और समीक्षा का प्रकाशन।

सम्प्रति : किस्सा कोताह (हिन्दी) पत्रिका और समय संकेत (मैथिली भाषा, द्वारा सूचना एवं प्रसारण विभाग, भारत सरकार) के सम्पादन कार्य में सहयोग।

संपर्क : द्वारा श्री तृप्तिनारायण झा
ग्राम पोस्ट, एरौत, व्हाया-रोसड़ा जिला- समस्तीपुर (बिहार) पिन-848210
मोबाइल : 91-8010814932, 9811324545
ईमेलः

घर की चिंता भी खाये जा रही थी। पता नहीं, कैसे होगी चारों बहन! हीरा और मोती भी मुँह उठाये बाट जोह रही होगी।

'ला बौआ तो मुझे दे! और तेज़ चल वरना पक्का भीग जायेंगे।'

'भगवान एकाध घण्टे पानी रोक नहीं सकते क्या? अगर मेरे लाल को कुछ हो गया तो क्या करूंगी?'

तेज़ बूँदों का टपकना शुरू हो गया था। रामप्रसाद ने फटाक से कुर्ता खोलकर बेटे को लपेट लिया और दौड़ लगा दी।

अब बारिश के छींटे और तेज़ हो गये। बच्चा रोने लगा। वह भगवान का नाम लेकर चीखा, 'हे भगवान! पानी रोक दो।'

तभी उसे दरार वाली सूखी खेतें दिख गयीं जिनमें धान की फसल अपनी मौत का इंतज़ार करती हुई नज़र आ रही थी।

एक पल को वह ठिठका। और...अबकी वह और ज़ोर से चीखा, 'बरसो। और बरसो। और खूब बरसो। बरसते रहो।'

॥ श्रद्धांजली ॥

प्रख्यात कलाविद्, पद्मविभूषण से सम्मानित तथा राज्यसभा की पूर्व मनोनीत सदस्य डॉ. कपिला वात्स्यायन जी के निधन पर विनम्र श्रद्धांजली।

स्व.कपिला वात्स्यायन

अंग्रेजी के प्राध्यापक हिन्दी मालवी तथा अंग्रेजी के कवि लेखक तथा समावर्तन के लिए अनुवाद सहयोगी प्रो.नवीन डबराल के निधन पर विनम्र श्रद्धांजली।

स्व.नवीन डबराल

समावर्तन परिवार :- उज्जैन * सूरत * अहमदाबाद * मुम्बई * भोपाल * इन्दौर * गुना * नईदिल्ली * कोलकाता

हँसी के पीछे का दर्द

सूर्यकांत नागर

प्रेम जनमेजय एक श्रेष्ठ व्यंग्यकार होने के अतिरिक्त विधा के उन्नयन हेतु सतत सक्रिय और समर्पित व्यक्तित्व भी हैं। व्यंग्य के क्षेत्र में पिछली आधी सदी में जो बड़े व्यंग्यकार हुए हैं, उनमें एक नाम प्रेम जनमेलय का है। 'राजधानी में गँवार' से प्रारंभ कर 'भ्रष्टाचार के सैनिक' तक उनके पन्द्रह व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। व्यंग्य-विधा से जुड़ी डेढ़दर्जन से अधिक कृतियाँ इनसे इतर हैं। गत बारह वर्षों से वे 'व्यंग्य-यात्रा' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका का संपादन-प्रकाशन कर रहे हैं। इसी क्रम में अब उनका ताजा व्यंग्य संग्रह 'हँसों हँसो यार हँसो' हमारे सामने है जिसमें उनके चालीस विचारपरक व्यंग्य-निबंध संग्रहित हैं। इनसे गुज़रते हुए युगीन यथार्थ के प्रति उनके ज़ज्बे को सहज ही रेखांकित किया जा सकता है। विसंगत समाज की शायद ही कोई सच्चाई हो जो उनकी क़लम की नोक से अछूती रही हो इस एहसास के साथ कि समय की माँग, उसकी ज़रूरतें और लेखकीय सोच ही विधा की दिशा तय करते हैं। दरअसल संग्रह की रचनाएँ विरोधाभासी स्थितियों के प्रति एक संवेदनशील व्यक्ति की प्रक्रियाएँ हैं जिन्हें वे दूसरों के साथ बाँटना चाहते हैं। वस्तुतः यह लेखक की लोक मांगलिक चेतना है। रचनाकार में लोक मंगल का भाव जितना तीव्र होता है, सत्य को पकड़ने की उसकी क्षमता भी उतनी ही तीव्र होती है। संग्रह में समाज, राजनीति, भाषा, साहित्य, प्रदूषण, साम्प्रदायिकता, वर्ग-वैषम्य, बाज़ारवाद और मानवीय मूल्यों को लेकर विशद चर्चा की गई है। एक अच्छा इंसान ही एक अच्छा लेखक होता है। इस कथन को कृपया प्रेम के संदर्भ में महज औपचारिक न माना जाए। वे सही अर्थ में सच्चे, ईमानदार, सभ्य, सौम्य, दर्पण और ईर्ष्या द्वैष से मुक्त व्यक्ति हैं और इसीलिए उनकी रचनात्मकता उतनी ही सच्ची और पारदर्शी है।

संग्रह की प्रथम रचना 'हँसो हँसो यार हँसो' समय के एक बड़े सच को उद्घाटित करती है। क्या आज हालत ऐसे हैं कि कोई विवेकशील व्यक्ति मुक्त, निश्छल और प्रफुल्ल हँसी हँस सकता है! कभी हँसता भी है तो वह खुशी या मनोरंजन की हँसी नहीं होती। उपहास की हँसी होती है। व्यंग्य से पैदा गुदगुदाहट की भाषा का अलग व्याकरण होता है। आँख के कुछ अंधे एक होते हैं। जो हक़ीकत से बेखबर हो, स्वार्थवश बेकार की बातों पर हँसते हैं। फूहड़ कॉमेडी पर हँसते हैं। सच्चाई तो यह है कि परिस्थितियों ने मनुष्य से उसकी हँसी छीन ली है। वह लुटा-पिटा व्यवस्था के अंधे गलियारों में भटक रहा है। हँसी के पीछे का दर्द कोई नहीं जानता। कबीर खड़ा बाज़ार में को पढ़ते हुए लगता है भारतीय एकात्म के प्रतीक कबीर, लेखक के अन्तर्मन में बहुत गहरे तक रचा-बसा है। यह स्वाभाविक है क्योंकि कबीर से बड़ा व्यंग्यकार और समाजसुधारक कौन हो सकता है। समतामूलक समाज रचना में कबीर का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए कई रचनाओं में प्रेमजी ने कबीर को उद्धृत किया है - चाहे वह भ्रष्टाचार के सैनिक हो, कबीर क्यों भला उदास हो, प्रजातंत्र का कृपा काल हो, संशय की बातें हो, या गुरु चरणों में तीसरा हो, पढ़े-लिखे का कचरा हो या हँसों, हँसो या हँसो हो! सवाल यह है कि कबीर बीच बाज़ार खड़ा क्यों है! नई पीढ़ी को न इसका अंदाजा है न आभास। क्या आज किसी की खैरियत के लिए कोई बाजार में खड़ा हो सकता है। सब अपनी-अपनी खेर में लगे हैं। बाजार की परिभाषा बदल गई है। नई पीढ़ी बाजार की चमक-दमक और माल-संस्कृति में खोई हुई है। सड़क पर खड़े हो सर्वजन हिताय की बात कौन करता है। अब कबीर हिन्दू-मुसलमान को अगल-बगल में लिए एक साथ खड़ा दिखाई नहीं देता।

आज राजनीति ले-दे की हो गई है। लोग स्वार्थवश एक-दूसरे से जुड़ते हैं। गॉड फादर बनाकर और चरण चूमे बगैर नैया पार नहीं होती। प्रभु की कृपा में ही भक्त का कल्याण निहित है। अब भक्त और प्रभु दोनों की एक एक-दूसरे की आवश्यकता है, हाँ दोनों की ज़रूरत और टाइमिंग अलग-अलग हो सकती है। कुछ ऐसा ही भाव व्यंग्य-रचना 'प्रभु! तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है मैं व्यक्त किया गया है।

'स्वर्ग में शौचालय' के बहाने देश-विदेश में हिन्दी की दशा-दिशा, उसकी शुद्धता-अशुद्धता और भारतीय मानसिकता पर चुटकी ली गई है। वैसे लेखक ने हिन्दी को लेकर अपनी चिंता 'हिदी के परम भक्त' और सरकारी हिन्दी की ऋतु आई

हँसो हँसो यार हँसो (व्यंग्य-संग्रह)
लेखक : प्रेम जनमेजय
अमन प्रकाशन, कानपुर
मूल्य : 195 रूपये

सखि।' निबंधों में व्यक्त की है। हिन्दी दिवस के अवसर पर सरकारी दफ्तरों में जैसी औपचारिकता निभाई होती है, उसका कच्चा चिट्ठा खोला गया है। हिन्दी दिवस गुज़रा और फिर वही ढाक के तीन पात, गोवर्धन पूजा की भाँति हर वर्ष हिन्दी दिवस के नाम पर डिबेट, निबंध प्रतियोगिता, भाषणबाजी आदि करवा ली जाती है और उसकी रिपोर्ट अखबारी कटिंग और फोटो के साथ केन्द्रीय कार्यालय को भेज कर्तव्य की इतिश्री मान ली जाती है। दरअसल हिन्दी के प्रति जैसा लगाव, समर्पण और निष्ठा होनी चाहिए, उसका नितांत अभाव दिखाई देता है। युवा वर्ग को हिन्दी आंदोलन से कुछ लेना-देना नहीं है। उसका पूरा ध्यान अपने कॅरियर पर है। विदेशों में जाकर अच्छे पैकेज वाली नौकरी पाने में। इसीलिए टाई संस्कृति के साथ अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ता नज़र आता है। एप्रिल फूल बनाने की संस्कृति पर तंज कसा गया है। आए पहाड़ के नीचे रचना में। लाखों की सैलरी और पेंशन पाने वाले प्रोफेसरों की तुलना में एक सामान्य मास्टर की क्षीण आर्थिक स्थिति का जिक्र है व्यंग्य निबंध मास्टरजी आप झूठे हैं में शिक्षा और शिक्षण की वर्तमान दशा पर टिप्पणी में कहा गया कि कुछ कर्तव्य-च्यूत कोचिंग प्रेमी अध्यापक भी होते हैं जो निजी लाभ के लिए शिक्षा-दान के पवित्र काम को कलंकित कर रहे हैं। व्यंग्यकार उन शिक्षण संस्थाओं की पोल खोलने में भी नहीं चूके। जो मास्टरों को कम वेतन देकर अधिक राशि पर हस्ताक्षर कर उनका शोषण करते हैं। राजनीति जीवन के हर अंग का हिस्सा बन चुकी है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। नाम, यश, पद, विदेश-यात्रा, राज्यसभा की सदस्यता आदि पाने के लिए राजनीतिक जोड़-तोड़ जरूरी है। इसके तहत साहित्य का मंदिर बनाओ और खुद उसके पंडे पुजारी बन बैठो। मंदिर में विराजमान जगदीश्वर को जो चढ़ावा आएगा वह सब आपकी तिजौरी में ही जाएगा। (साहित्य का मंदिर)!

कुछ पाना है तो खिलाड़ी बनना होगा। खुद खिलाड़ी बने बगैर कुछ प्राप्त न होगा। मूक दर्शक बने रहने से कुछ नहीं होगा। खिलाड़ी की जितनी पूछ-परख होती है उतनी कोच, एम्पायर या दीर्घा में बैठे दर्शक की नहीं होती। फुटबाल बनने से बेहतर है 'फिटबाल' बनना। हर खेल में फिट हो जाने की कूवत पैदा करना। कमजोर और अभाव-ग्रस्त कि क्या औकात कि वह कोई घोटाला करे। छोटा-मोटा कर भी ले तो इसकी क्या गारंटी कि पिटेगा नहीं। वह लक्जरी कार में घूमने वाला साधन-संपन्न व्यक्ति तो है नहीं कि गड़बड़-घोटाला करने के बाद भी विदेश में रह मौज-मस्ती करे। समर्थ के सौ गुनाह माफ है, मुसीबत तो जन-साधारण की है। दो पाटों के बीच पिसता तो बेचारा गरीब ही है। समरथ को घोटाला नहीं दोष गोसाई! संग्रह के कुछ अन्य उल्लेखनीय आलेख हैं- पढ़े लिखों का कचरा, मेरे पदपति मेरे विशाल, प्रदूषण प्रभु की जय, रूदालियाँ, धोखेबाज मौसम की जय हो! प्रेम जनमेजय किसी प्रमाद या उन्मादवश नहीं लिखते। लिखना उनके लिए सामाजिक प्रतिबद्धता है। सुसंगत समाज-निर्माण में बाधक तत्वों को समाप्त करने की दिशा में उठाया गया कदम। एक किस्म की विचार-यात्रा। वे प्रतिरोध के रचनाकार हैं। युगीन यथार्थ से जूझने का उनका ज़ज्बा स्पष्ट है। इसीलिए भ्रष्टाचार के शिष्टाचार में तब्दील होती संस्कृति पर वे प्रहार करते हैं। व्यापक जीवनानुभव और चिंतन की झलक उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है। सादगी में भी गहराई है। वहां भाषा का आडम्बर नहीं है। प्रेम कथानक की सहायता से सम्प्रेषण को आसान बनाते हैं। रचनाओं की खसूसीयत यह कि वे अराजक नहीं है। एक खास किस्म की खलिश वहाँ नज़र आती है।

81, बैराठी कॉलोनी नं.2 इन्दौर -452014 (म.प्र.)
मो.98938-10050

समावर्तन मासिक का 150वाँ अंक केरल में लोकार्पित

उज्जैन। पिछले तेरह वर्षों से वरिष्ठ साहित्यकार तथा रंगकर्मी **डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य** द्वारा संस्थापित-सम्पादन समन्वित एवं अनवरत प्रकाशित साहित्यिक-सांस्कृतिक तथा सरोकार संवाहक मासिक पत्रिका **'समावर्तन'** के 150वें अंक का लोकार्पण मलयालम के महाकवि तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता श्री अक्कितम के करकमलों से उन्हीं के निवास कुमारनल्लूर (जिला पालक्काड-केरल) में 19 सितम्बर 2020 को हुआ।

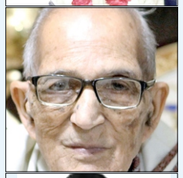

कार्यक्रम का आरंभ समावर्तन के सम्पादक **श्रीराम दवे** (उज्जैन) द्वारा ऑनलाइन उपस्थिति के माध्यम से दिये गये स्वागत वक्तव्य से हुआ। उन्होंने कहा कि समावर्तन का यह 150वाँ ऐतिहासिक अंक मलयालम और हिन्दी के बीच एक सेतु बनाने का विनम्र प्रयास है। ज्ञात हो कि इस अंक में **श्री अक्कितम** और ख्यात अनुवादक **डॉ.आरसु** के व्यक्तित्व-कृतित्व पर केन्द्रित **'एकाग्र'** और **'सरोकार'** स्तंभ संयोजित किये गये हैं। कार्यक्रम में ऑनलाइन विशेष उपस्थिति विख्यात संस्कृतज्ञ कवि **डॉ.सत्यव्रत शास्त्री** (नईदिल्ली) की रही। उन्होंने श्री अक्कितम की कविता और उनके श्रेष्ठ लेखन की प्रशंसा करते हुए कहा कि उन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन को जोड़ने का प्रयास किया है। इस अवसर पर भाषा समन्वय वेदी के अध्यक्ष **डॉ.आरसु (आर.सुरेन्द्रन)** ने कहा कि आमतौर पर अनुवाद एक कृतघ्न काम है किन्तु समावर्तन ने इस कार्य को कृतज्ञ काम बनाया है, क्योंकि अनुवाद चेतना विकास का क्षण है तथा संवेदना के परिमार्जन का पावन मुहूर्त है। समावर्तन का अंगीकार मलयालम कविता को मिलने का अंगीकार है।

समावर्तन के प्रतिनिधि के रूप में मल्लापुरम-केरल की विदुषी व्याख्याता **डॉ.श्रीजा प्रमोद** ने कार्यक्रम का संचालन करते हुए समावर्तन परिवार की ओर से कविवर श्री अक्कितम का शाल-श्रीफल से सम्मान किया। इस अवसर पर डॉ.एम.के.प्रीता तथा कवि की सुपुत्री ने अक्कितम की चुनी हुई कविताओं का सस्वर आलाप किया। अंत में कवि श्री अक्कितम ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए समावर्तन के प्रति आभार व्यक्त किया तथा डॉ.आरसु को भागवत का मलयालम अनुवाद भेंट किया। कार्यक्रम में केरल के साहित्यप्रेमी, पत्रकार तथा मीडियाकर्मी उपस्थित थे।

कृतज्ञता ज्ञापन

प्रियवर,/श्रद्धेय,

आज समावर्तन का 151वाँ अंक प्रस्तुत करते हुए आपकी बहुत याद आ रही है और इस याद के साथ जुड़ी आपके प्रति मेरी असीम कृतज्ञता भी शिद्दत के साथ बार-बार कह रही है कि समावर्तन मासिक का अबाध निरन्तर प्रकाशन आपके ही सक्रिय अथवा आशीर्वादी सहयोग के फलस्वरूप संभव हुआ है। बहुत-बहुत आभार। मैं नतमस्तक हूँ। हमने समावर्तन के **सहायक सम्पादक श्री हरदीप दायले** को यह जिम्मेदारी सौंपी थी कि पिछले 12 वर्षों में जिन विभूतियों को विभिन्न स्तंभों के अन्तर्गत प्रकाशित किया गया है उनके नामों की सूची तैयार करें। उसका श्रम सार्थक हुआ जब समावर्तन के **सम्पादक श्री श्रीराम दवे ने मार्च 2020** के अंक में इन नामों को संकलित कर तथा और जो भी सामग्री निरन्तर प्रकाशित होती रही है उनका संपूर्ण लेखा-जोखा अपने विस्तृत आलेख **''समावर्तन के बारह वर्ष : एक गौरवमयी अविराम यात्रा''** प्रस्तुत कर इस महत्त्वपूर्ण धरोहरधर्मी दस्तावेज को रेकार्ड किया। इतना ही नहीं इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आलेख को सार्थक फोटोग्राफ्स से सजाया **वरिष्ठ कम्प्यूटर ऑपरेटर श्री विवेक शर्मा ने।** समावर्तन परिवार की इस अन्तरंग तिकड़ी को मेरा अनवरत शुभाशीष।

(प्रभातकुमार भट्टाचार्य)
संस्थापक : सम्पादन समन्वयक समावर्तन

(डॉ.भट्टाचार्य द्वारा यह कृतज्ञता ज्ञापन उन सभी सर्जकों के प्रति है जिनके कृतित्व/व्यक्तित्व पर समावर्तन के अंकों में - एकाग्र, रंगशीर्ष, सरोकार, आदि स्तम्भ समायोजित किये गये हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित किए गए बहुचर्चित और बहुपठित उपन्यास 'जलतरंग' के लेखक संतोष चौबे हिन्दी साहित्य के आधुनिक पर्यावरण में एक कवि, कथाकार, उपन्यासकार, अनुवादक, सम्पादक, समीक्षक और संस्कृतिकर्मी - इन तमाम आयामों के साथ आते हैं और अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका, एक जरूरी हस्तक्षेप की उपस्थिति हम सबके बीच दर्ज कराते हैं। 'जलतरंग' संगीत और समाज के द्वंद्व पर एक नया विचार-विमर्श और जन-संवाद का माध्यम बनकर सामने आया है। इस उपन्यास पर बहस और चर्चा का एक लम्बा सिलसिला चला है जिसमें देश के विभिन्न मूर्धन्य साहित्यकारों और कलाकारों ने समय-समय पर बेहद महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए। इस बार हम हिन्दी कथा साहित्य के सुपरिचित रचनाकार श्री राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी द्वारा उपन्यास की गई समीक्षा आपके समक्ष प्रस्तुत करते हैं जो उपन्यास के मूल विमर्श को स्पष्ट करती है।

जलतरंग को स्वर, संगीत और जीवन की कहानी का नाम देते हुए श्री राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी जी कहते हैं कि ''जलतरंग पढ़रहा हूँ। स्वर की कहानी, संगीत की कहानी, जीवन और प्रकृति और जुगलबंदी की कहानी और राग की कहानी। जीवन के रस की अविराम खोज की कहानी है। वह मनुष्य-जीवन का अलाप है, तान है। वह ख्याल है और ध्रुपद है, वह रसिया तथा मल्हार है। वह सितार है, वह पखावज है, वह वीणा और बाँसुरी है। किन्तु मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि जलतरंग नाम के उपन्यास की यह कथा राग हमीर और केदार को खोजते-खोजते मुझे मनुष्य जीवन के एक ऐसे मोड़ पर खड़ा कर देगी, जहाँ केवल शोर ही शोर है। ट्रैफिक का शोर, पानी चढ़ाने वाली मोटर का शोर, कचर-कचर की आवाजें, मोटरसाइकिलों की धड़-धड़, चीखते हुए हॉर्न, सड़कों पर रातदिन चलने वाला अखण्ड हंगामा, लाउडस्पीकरों और डीजे बैंड का हजारों किलोवाट की कर्कशता, जागरणों के नाम पर चलने वाला हाहाकार, ढोल वालों की बीट्स, हथौड़ों की टन्न-टन्न आदि आदि। देवाशीष की जिन्दगी में संगीत के मूल राग और रस की खोज अस्थिर हो जाती है, विचलित हो जाती है तथा मानव अधिकार आयोग के सामने अपील करती है। कहती है कि मनुष्य 50 से 60 डेसीबल तक की आवाज को सहन कर सकता है किन्तु आज ट्रैफिक 80 डेसीबल, रेलगाड़ी 110 डेसीबल, फैक्टरी 130 डेसीबल तक जा पहुंचे हैं। मनुष्य दिमागी-रूप से बीमार हो रहा है, चिड़चिड़ा हो रहा है, बहरा हो रहा है। ध्वनिप्रदूषण-ऐक्ट है किन्तु उसकी ओर देख कौन रहा है ?

इस शोर को जंगली भी कैसे कहें? यह जंगल का नहीं यह तो शहरों का शोर है। जमाना स्मार्ट है, स्मार्ट सिटी की बात कर रहा है किन्तु कौन सोच रहा है कि मनुष्य-जीवन की सही दशा और दिशा क्या है?

जलतरंग ने जीवन के संगीत के बरक्स ध्वनिप्रदूषण की समस्या को बड़ी गहरा से उठाया है। जलतरंग पढ़ते हुए लगता है कि हम अपने ही शहर के सामाजिक राजनैतिक जीवन के सामने खड़े हैं और सब कुछ हमारी आँखों के सामने घटित हो रहा है और हम असहाय से यह सब देख रहे हैं। रिहायशी-कॉलोनी है, उसमें सीनियर सिटीजन्स के लिए पार्क बना है किन्तु सत्तारूढ़-दल के नेता ने उस पर कब्जा कर लिया है, मंदिर बनवा लिया, बरातघर बनवा लिया, दिनरात की चीखपुकार, ढोल-बाजे, आतिशबाजी, हवा में उड़ते जूठे गिलास, कागज की प्लेट, प्लास्टिक के चम्मच और जूठन का साम्राज्य, आवारा कुत्ते, गाय और सूअर। विपक्षी-दल के दूसरे नेता ने एक बहुमंजिले मकान को कॉलेज बना लिया है। क्या विश्वविद्यालय ने कॉलेजों को संबद्धता देने के कुछ नियम नहीं बनाए होंगे 'पर नियमों को कौन पूछता है' इन छोटे-छोटे कमरों में क्लास कैसे लग सकती है ? पर कॉलेज चल रहा है, लड़के-लड़कियों की जोड़ियाँ, हाहा हूहू, युवतियों के आगे से कट मारना आदि यही सब! देवाशीष कानून के इस उल्लंघन के खिलाफ खड़ा होता है। पुलिस, विश्वविद्यालय-प्रशासन, मीडिया, अदालत, मानव-अधिकार-आयोग और न जाने कहाँ-कहाँ झक मारता है। लेकिन या तो सबकी सेटिंग है या विवशता। एक लम्बा संघर्ष और अन्त में देवाशीष पर गुण्डे प्रहार करते हैं। झन्नाटेदार झापड़ देवाशीष के गाल पर पड़ा और चश्मा दूर जा गिरा। लातें, जूते, चप्पल देवाशीष के अंगप्रत्यंग पर पड़े, किसी ने एक राड उसके सिर पर मारी और वह निश्चेष्ट हो गया।

कथाकार ने एक अन्त दिखाया कि देवाशीष अस्पताल ले जाया गया और मर गया। दूसरे उपसंहार में दिखाया कि उसने कॉलोनी से दस किलोमीटर दूर एक संगीत विद्यालय खोल लिया है। क्या करता बेचारा? संगीत की तीन धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं। एक को राजदरबार में प्रश्रय मिला था, इन्द्र के दरबार से लेकर विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त, हर्षवर्धन, बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन, देवगिरि के यादव-नरेश, अलाउद्दीन खिलजी, मेवाड़ के राणाकुंभा, मुगल दरबार, रीवा के राजा रामचन्द, गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह, ग्वालियर-दरबार के मानसिंह तोमर और मुहम्मदशाह रंगीले तक गोपालनायक, अमीर खुसरो, बैजू बावरा, बख्शू, तानसेन, अदारंग, सदारंग दरबार के ही गायक तो हैं। दरबारों में रागमालाओं का विकास हुआ, जलतरंग ने रागमालाओं के संदर्भ में संगीत और चित्रकला के सम्बन्ध की चर्चा की, कहा कि रीतिकालीन नायिकाभेद को संगीत पर भी आरोपित किया गया।

जबकि दूसरी धारा को आप अध्यात्म और भक्ति की धारा कह सकते हैं। सामगान तो प्रकृति-पूजा का गान है। गीतगोविन्द के गायक जयदेव, पदावली के गायक विद्यापति, मध्यकालीन भक्ति-आंदोलन की वह धारा, जो स्वामी हरिदास, कुंभनदास, परमानंददास, सूरदास, गोविन्दस्वामी आदि के स्वरों में स्फुरित हुई।

तीसरी धारा लोकजीवन में बहती रही है। जलतरंग ने राग आसावरी, बिहाग, मल्हार, काफी, मालकोस, बिलाबल, रामकली, भीमपलासी, दरबारी, कालिंगड़ा, मारूबिहाग, भेरव, भैरवी, तोड़ी, गूजरी तोड़ी आदि के स्रोत को भी खोजने का प्रयास किया और संकेत किया कि कितने ही रागों का स्रोत तो लोकसंगीत ही है। लोकसंगीत की चर्चा में जलतरंग ने मथुरा और होलीपुरा की फांगों के प्रसंग दिए हैं।

लेकिन इन तीन धाराओं में भिन्न-भिन्न युगों में संगीत की वे धाराएँ भी अंतर्भुक्त होती रहीं, जो अन्य देशों से आने वाले जनसमूहों और जातियों, पराओं के साथ भारत में आती रहीं, जैसे रानी-संगीत। पश्चिमी-संगीत की धाराएँ आज भी यहाँ आ रही हैं और यहाँ के संगीत में अन्तर्भुक्त हो रही हैं।

जलतरंग ने इस अन्तभुक्त को गहराई से रेखांकित किया है! अमीर खुसरो एक बहुत महत्वपूर्ण उदाहरण है। जलतरंग में तुंबुरू नाम के संत की वीणा से लेकर सितार तक की चर्चा करते हुए अमीरखानी, रजाखानी, मसीतखानी गत की जो चर्चा की है, वह अन्तर्भुक्ति की ही कहानी है। जलतरंग ने रस और भाव के सम्बन्ध में गंभीर विचार किया है। नाद, श्रुति, स्वर, राग, ताल और वाद्यों के विकास पर विस्तृत प्रकाश डाला है और ध्रुपद-धमार ख्याल-तराना टप्पा-ठुमरी आदि रचनाओं को सही आशयों में परिभाषित किया है। जलतरंग ने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, दत्तिल और कोहल, नारद के संगीत मकरन्द, मातंग मुनि की बृहद्देसी, शारंगदेव का संगीत रत्नाकर, मानकुतूहल आदि अनेक ग्रंथों और उनके ग्रंथकारों के प्रसंग भी दिए हैं।''

अंत में, राजीव रंजन जी का निष्कर्ष है कि संगीत के अध्येताओं के लिए जलतरंग बहुत रोचक और उद्बोधक रचना है!

आज के लिए बस इतना ही। अगले माह आपसे फिर मिलते हैं, इसी जगह और इसी समय। नमस्कार। स

मुकेश वर्मा

मोबाइलः 94250-14166

श्री नरेन्द्रभाई मोदी
प्रधानमंत्री, भारत

सत्यमेव जयते
गुजरात सरकार

श्री विजयभाई रूपाणी
मुख्यमंत्री, गुजरात राज्य

गुजरात सरकार द्वारा गंगा स्वरूपा बहनों को आर्थिक सहायता

लाभार्थी के लिए इस योजना से प्रतिमाह रू. 1250/- की आजीवन सहायता

पात्रता विवरण

- 18 वर्ष से अधिक उम्र की निराधार विधवा
- आवेदक के परिवार की वार्षिक आय रू. 1,20,000/- (ग्रामीण क्षेत्र) और रू.1,50,000/- (शहरी क्षेत्र) से अधिक नहीं होना चाहिए

"गंगा स्वरूपा बहनों को आर्थिक सहायता हेतु राज्य सरकार कटिबद्ध"
- श्री नीतिनभाई पटेल,
उप मुख्यमंत्री, गुजरात

अधिक जानकारी हेतु अपने जिले के महिला एवं बाल अधिकारी/संबंधित विभाग से संपर्क करें

महिला एवं बाल विकास विभाग
गुजरात सरकार

महिला विंग
महिला एवं बाल विकास
कमिश्नर कार्यालय गांधीनगर

ATTRACTIONS »
5 STATIONS WITH INFOTAINMENT

COME VISIT CHILDREN Nutrition Park

Tickets Available!
Adults: Rs 200 per person
Children from 3-12 years: Rs 125
Free for Children Below the Age of 3

STATUE OF UNITY
CHILDREN NUTRITION PARK
Kevadia, Gujarat

GEC
Gujarat Ecology Commission
Government of Gujarat

ACTION PACKED ACTIVITIES

- Electric Train
- Mirror Maze
- Nutrihunt
- Game Zone
- Mystic Tunnel
- AR/VR Theatre

Tickets Can be Purchased From the Counter at Ekta Junction!